(९) समधिगतं मया भवत्प्रहितं प्रबलप्रमाणपूर्णं पत्रम्, यदर्थं धन्यवादततिं वितरामि तत्रभवद्भ्यो भवद्भ्यः। (श्रीधर्मदेवः-सिद्धान्तालङ्कारः 'सार्वदेशिकसम्पादकः, देहली)।

(१०) पं. दीनानाथस्य विशालशास्त्रज्ञानस्य न केवलं वयं प्रशंसामेव कुर्मः, प्रत्युत पण्डितवर्यं दिष्ट्या धन्यवादैश्च सम्मानयामः। प्रार्थयामहे च यत्-पण्डितप्रकाण्डस्य अनन्यसदृशं संस्कृतज्ञानं शास्त्रज्ञानं च वैदिकधर्माय भारतवर्षाय च लाभकरं स्यात्। (कुलभूषणः 'श्री'सम्पादकः, श्रीनगर (कश्मीर)

(११) अस्मद्विधाने यदि संशयः, तर्हि चास्मन्नेवाङ्के प्रकटिते विद्वदग्रेसराणां सकलशास्त्रसागरालोडनचतुराणां श्रीदीनानाथ-शास्त्रिणां, प्रतिवादिमुखमर्दनक्षमः, सकलसंशयविच्छेदकः, प्रमाणपरिबृंहितः, प्रबलयुक्ति-पराहतदुराक्षेपः, सरसतरो लेखोऽनु-वाच्यतां सादरं मननगोचरीकरणीयश्च, येन दुराग्रहमूलका दुरालापा विलीयेरन् (गलगली श्रीरामाचार्यः वुर्ली श्रीनिवासाचार्यः 'मधुरवाणी-सम्पादकौ. बेलगांव।)

(१२) ···सम्प्रति श्रीमन्तो हि केवलं तादृशा धुरन्धरलेखकाः सन्ति, येषां साम्यं न कोपि विद्वान् कर्तुं शक्नोति, किं बहूक्त्या–इत्यहो लेखकमूर्धन्यस्य धन्यतेति। (बालकृष्णभट्टशास्त्री साहित्या-चार्यः प्रधानाध्यापकः संस्कृतमहाविद्यालयः, गुप्तकाशी (गढ़वाल)

(१३) 'संस्कृतपत्त्रेषु भावत्कलेखभारतीलेखनप्रौढिं दर्शं दर्शं नितरां तुष्यामि। श्री पं. कालूरामशास्त्रिभिः श्री पं. गङ्गाविष्णु-शास्त्रिभिश्च श्रीमत्कग्रन्थविषयक उदन्तः श्रावितः। साम्प्रतम् एकस्मिन् पत्रे मुद्रितः कियांश्चित् तदंशोपि समवलोकितः। प्रश-स्यतमोऽयं भवदीयः प्रयत्नोऽतितराम्' (माधवाचार्यः शास्त्री महोपदेशकः, कौल-करनाल)।

(१४) सूर्यभगवान् लोकसे सुदूरवर्ती हैं, परन्तु व्यापक-

प्रकाशसे सबके समीप ही हैं। एवं आपसे यद्यपि साक्षात् परिचय तो नहीं है, तथापि संस्कृतपत्रिकाओंमें आपके कई शास्त्रीय लेख देखने-सुननेमें आते रहते हैं, इस रीतिसे आपसे परिचिति मानते हैं। (मेधाकर-शास्त्री चतुर्वेदी, राजकुमार कालेज, रायपुर सी.पी.)

(१५) वर्तमान समयमें जब कि पाखण्डवादका ही प्राधान्य है, और प्रत्यक्ष प्रमाण ही प्रमाण है, तब युक्तिवादसे ही प्रतिवादिमुखभञ्जन आवश्यक है। आपके लेखोंमें युक्तिवाद रहते हुए शास्त्रीय-प्रमाण भी रहते हैं ; अतः विशेष-उपयोगी हैं। आपके लेखोंसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है (नन्दकिशोर; प्रधानाध्यापकः, दरबार-संस्कृतविद्यालय, लक्ष्मणबाग, रीवां स्टेट)।

एतदादिक अयाचित-सम्मतियां बहुत अधिक आई हुई हैं, स्थानाभाववश सब प्रकाशित नहीं ही जा सकीं। 'आलोक' ग्रन्थ-मालाको स्वयं खरीदकर तथा दूसरोंसे खरीदवाकर सनातनधर्मके प्रचार तथा सातवें सुमनके विकासमें सहयोग दें।

निवेदक :—

नारायणशर्मा 'राजीव' सारस्वत

शास्त्री, प्रभाकर (बी०ए०)

[प्रकाशक]

२. जगद्गुरुशङ्कराचार्य शारदापीठ अनन्तश्री-अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ स्वामीजी महाराज, द्वारका २३२)। ३. स्वर्गीय पं. रेवाशङ्करजी शास्त्री पुरोहित, बम्बई २००)। ४. पं. ब्रह्मदत्तजी शर्मा, कादेड़ा ३२२)। ५. पं. यशोदानन्दनजी शास्त्री जयतल, गाजियाबाद ४०)। ६. पं. हरिप्रसादजी शास्त्री ओ. टी., पठानकोट १२५), शेष ७५)। ७. पं. रामेश्वरजी शास्त्री, जायल, मूंडवा, १५२)। ८. भक्त रामशरणदास-जी, पिलखुआ ३२)। ९. श्री. छोटेलालजी कानोडिया, कलकत्ता ५०)। १०. स्वा. पुरुषोत्तमदासजी वैष्णव, जयपुर २५)। ११. श्रीफकीरचन्द्र-जी, देहली ३०)। १२. पं. भवानीशङ्करजी शास्त्री, जयपुर ६१)। १३. पं. देवेन्द्रकिशोरजी आयुर्वेदाचार्य, गाजियाबाद २५)। १४. पं. श्यामसुन्दरजी शास्त्री, सिवानी २५)। १५. स्व.पं. दुर्गादत्तजी त्रिपाठी, काशी २५)। १६. स्वा. गंगेश्वरानन्दजी महाराज उदासीन, मण्डलेश्वर वृन्दावन ११)। १७. पं. बालमुकुन्दजी दैवज्ञ, बम्बई २५)। १८. जगद्गुरुशङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्री-स्वा. कृष्णबोधाश्रम-जी महाराज, बदरिकाश्रम २००)। १९. दण्डिस्वामी-श्री १०८ भूमानन्द-तीर्थजी महाराज, हरद्वार २००)। २०. 'पण्डित-भूषण' स्वा. श्रीरामदासजी उदासीन आयुर्वेदाचार्य, देहली १०१)। २१. से. श्रीझाँगीरामजी छबीलदासजी, बम्बई २५२)। २२. सेठ कुम्भनदास किशनदासजी बम्बई ५१)। २३. सेठ भगवानदासजी डी. गान्धी, बम्बई ५१)। २४. स्वामीश्री १०८ वासुदेवानन्दजी शास्त्री वेदान्ताचार्य महा-राज, शिमला १०१)। २५. पं. पूर्णानन्दजी शास्त्री, देहली २०) २६. दानवीर पं. कृष्णचन्द्रजी शर्मा देहली २०१)। २७. सेठ गोपीलालजी काबरा, मारवाड़ मूंडवा १०१)। २८. गो. व्रजनाथजी शर्मा सारस्वत रायबहादुर, आगरा २५), शेष ७५)। २९. श्री. देसराज हंसराजजी मुंजाल, आगरा, २५)। ३०. सेठ हरनारायणगोपालदासजी, बम्बई ५१)। ३१. पं. लोकनाथ-श्यामकिशोरजीशर्मा, सूरिनेम (दक्षिण अमे-

रिका) १००)। ३२. स्वामी श्री १००८ वैष्णवाचार्यजीमहाराज श्री-दरवार पिण्डोरीधाम १०१)। ३३. मलिक नारायणदास-जगन्नाथजी C/o मलिक मघवद्दत्तजी, देहली १०२)। ३४. जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य—अनन्तश्री—स्वामी—अनिरुद्धाचार्य-वेङ्कटाचार्यजी महाराज, चान्दोद [illegible]०)। ३५. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-अनन्तश्री-स्वामी आप्रकाशानन्दजी महाराज, हरद्वार १०१)। ३६. सेठ जयदयालजी गोयन्दका, ('कल्याण' सञ्चालक), वांकुड़ा (पश्चिम वंगाल) १००)। ३७. पं. घमण्डीलालजी शर्मा वी ए. (आनर्स), देहली १००) ३८. सेठ राधाकृष्णजी कपूर, मेरठ १०१)। ३९. गुप्तमहोदय C/o मलिक मघवद्दत्तजी, देहली १०१)।

सनातनधर्ममें हिन्दुजातिमें ईंटोंका खर्च देने-दिलवाने वाले बहुत हैं। यह भी ठीक है, पर यह 'कर्म' है। यज्ञ करने वाले भी बहुत हैं, यह भी 'कर्म' है। 'कर्म'के साथ 'ज्ञान'का सामञ्जस्य भी अपेक्षित होता है। तभी उस जातिको सफलता प्राप्त होती है। उल्लिखित महोदयोंने साहाय्यार्थ उक्त-द्रव्यराशि देकर 'ज्ञान'यज्ञमें आहुति दी है, इस प्रकार अन्य-महोदयोंको भी इस ज्ञानयज्ञमें संरक्षक वा सहायक वनकर अपनी शुद्ध-कमाईका अंश देकर 'आलोक'-ग्रन्थमालाके अग्रिम-पुष्पोंके प्रकाशनमें सहयोग देना चाहिए।

निवेदक—

दीनानाथशर्मा शास्त्री सारस्वत

प्रि. संस्कृत-महाविद्यालय,

दरीवा कलां दिल्ली–६;

[प्रणेता]

जन्माष्टमी
सं० २०१६

ग्रन्थकारके विषयमें

–विद्वानोंके हार्दिक भाव–

(१) सनातनधर्मके आधुनिक नवजीवन-दानमें बद्धपरिकर सारस्वतोंमें आपको जो सम्मान प्राप्त है, या यों कहिये–माता सरस्वतीकी मूर्त-उपासना आपके द्वारा जिस प्रकार हुई है, उससे कम से कम सारा संस्कृत-समाज तो चिरपरिचित ही है। आपकी विशुद्ध-सनातनधार्मिक विचार-धारा किन्हीं लोगोंको न मान्य हो, फिर भी उसका मुझे हार्दिक अभिमान है।··

(गोविन्दशास्त्री बैजापुरकर सहसम्पादक 'सन्मार्ग' काशी।)

(२) भवतां दिगन्तविश्रान्तातुलकीर्ति मधुरवाणी, सूर्योदय, संस्कृत-पत्र द्वारा अप्रतिमविद्वत्तां च विलोक्य परवशीक्रियते जनः। ···(एस. एस. शास्त्री द्विवेदी पवेन्ज, हलीज्ञड़ी, दक्षिण कनाड़ा।

(३) श्रीमतां सनातनधर्मसिद्धान्तरहस्यग्रन्थप्रकाशनाभिरुचिः सर्वथा साधीयसी। भाविनी धार्मिक-हिन्दुसन्ततिस्तत्रभवतामुपकृतिमिमां शिरसा धारयिष्यतीत्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः।··· (श्रीहरिहरानन्द करपात्रस्वामी धर्मनगर नगवा, काशी।)

(४)···आपके लेख मुझे बड़े अच्छे लगते हैं और तत्काल छपने योग्य होते हैं? (श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, 'वैदिकधर्म', सम्पादक; पारडी (सूरत)।

(५) भारतप्रसिद्ध, सद्गुणालङ्कृत, आधुनिक-अशास्त्रीय-मत मर्दनकारी, शास्त्राज्ञाके परमप्रदर्शक, सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थज्ञ, विद्यानिधि सारस्वत जी···आपकी अद्भुत गवेषणापूर्ण लेखनीकी चमत्कृतिका 'सिद्धान्त, कल्याण', आदि पत्रों द्वारा सम्यक् अवलोकन

करते हुए हृदयको यथार्थ शान्ति प्राप्तिका सुप्रतीक प्राप्त होता है। ···(मनमोहन पुरी, मु. निवाउर पो. साईंखेड़ा, जि. होशङ्गाबाद, सी. पी.)।

(६) समयाभावकी विकट-परिस्थितिमें होते हुए भी कई-कई अंकों तक धारावाही रूपसे संस्कृत-हिन्दी पत्रोंमें लेख लिखना स्तुत्य, श्लाघनीय, सराहनीय है। इस महान् परिश्रमसे पता चलता है कि-श्रीमान्का सनातनधर्म-प्रेम 'निदहि आप सराहैं मीना'के अनुसार जितना मीनको जल प्यारा नहीं है, उससे अधिक प्यारा होनेके कारण सराहनीय है। ···साधारण लोगोंकी कौन कहे, अधिकांश विद्वान् भी धर्मकी ओरसे उदासीन ही हैं। बड़े-बड़े व्याकरणाचार्यों, साहित्याचार्योंसे मैं मिला। एकदम उन्हें सनातनधर्मके प्रचारसे भी क्या, चर्चासे भी उदासीन पाया। ···वर्तमान समयमें श्रीमान्को छोड़कर अन्य विद्वान्, पत्रोंमें सनातनधर्म-सम्बन्धी लेख लिखनेसे उदासीन हैं-इससे सनातनधर्मका ठोस प्रचार नहीं हो पाता···।···आपके लेखोंसे श्रीमान्का शास्त्रोंके जबर्दस्त अध्ययनका तथा पृथक् परिश्रम करनेका पता चलता है।···(इन्दुशेखरसिंह राठौर, अध्यक्ष वीहटवीरम-जि. सीतापुर)

(७) आप पत्रोंमें कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं, इससे प्रसन्नता होती है। आपके लेखोंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि--आप का स्वाध्याय उच्चकोटिका है। आप व्याकरणके एक महान् पण्डित जान पड़ते हैं।···(शिवपूजनसिंह [आर्यसमाजके प्रसिद्ध लेखक] दयानन्द वैदिक-शोधस्थान कानपुर)

(८) आपके लेख अत्यन्त गवेषणापूर्ण एवं हमारी दृष्टिमें महत्त्वपूर्ण हैं। हम यत्न करेंगे कि-वे यथाशीघ्र छप सकें (महेशचन्द्र स. सम्पादक 'वैदिकधर्म', किल्ला पारडी)

'श्रीसनातनधर्मालोक'-परिचय।

(प्रथम-संस्करण से)

हमने 'श्री सनातनधर्मालोक' नामक दससहस्र पृष्ठ के महाग्रन्थका जोकि सनातनधर्मका, महाभारत सिद्ध होगा, संस्कृत तथा हिन्दीमें निर्माण किया हुआ है। उसका प्रकाशन धार्मिक-जनताकेलिए कितना लाभप्रद प्रमाणित होगा यह उसकी विषय-सूचीसे प्रतीत होगा। हम इस ग्रन्थमालाका प्रकाशन करने जा रहे हैं, तदर्थ बहुत व्यय होगा। संरक्षकोंकेलिए एक सहस्र रुपया रखा गया है। सम्मान्य सहायकोंकेलिए पांच सौ रुपया, मान्य सहायकोंके लिए २५०) रु० तथा साधारण सहायकोंका एक सौ रुपया रखा गया है। इसके प्रकाशन से भारतधर्मकी रक्षा होगी। सज्जनोंको शीघ्र ही सहायता भिजवानी चाहिये। उसकी विषयसूची दी जाती है, पाठकगण अवधान दें। जो विषय इसमें समान हैं, उनमें पूर्वसे नवीनता होगी, यह जान लेना चाहिये। इसमें श्री १००८ श्री स्वामी करपात्री जी महाराजकी स्वहस्त-लिखित सम्मतिकी प्रतिलिपि देकर उक्त ग्रन्थकी हिन्दीमें विषयसूची दी जावेगी।

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज की सम्मति

'श्रीहरिः ।—श्रीपण्डित, दीनानाथजी शास्त्री समय-समयपर संस्कृत, हिन्दीके विभिन्न पत्रोंमें धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक विषयोंपर सुन्दर, तर्कपूर्ण, शास्त्रीय लेख लिखते रहते हैं। शास्त्रों एवं धार्मिक नियमोंके सम्बन्धमें होने वाली विभिन्न शंकाओंका भी बड़ा सुन्दर समाधान करते रहते हैं। विपक्षियों में अनेकों लेखकों द्वारा नवीन-नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन होता ही रहता है। आस्तिक-पक्ष इस ओरसे उदासीन-सा रहता है। स्थायी साहित्यका प्रचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। शास्त्रीजीने विस्तृत अनेकों ही ग्रन्थोंका निर्माण किया है। उनका प्रकाशन ग्रन्थमालाके रूपमें होने जारहा है, जो अत्यावश्यक है। **आस्तिक वैभवसम्पन्न आचार्यों, महन्तों, धनवानों को इस ओर शीघ्र ही सहायता पहुँचानेका उपक्रम करना चाहिए। —[श्री] करपात्र-स्वामी''।**

अब सज्जनगण उक्त महाग्रन्थकी विषयसूची देखें। इसके बीस उद्योत हैं, साढ़े तीन सौके लगभग किरण हैं।

विषय-सूची

तर्क और प्रमाणमें मान्यतर कौन है ?

द्वितीय उद्योत—२८ वेदादिमें ब्राह्मणकी श्रेष्ठता। २९ वर्ण-व्यवस्था जन्मसे ही है। ३० गुणकर्मसे वर्ण-व्यवस्थामें हानि। ३१ कर्मसे वर्णव्यवस्था का प्रतिवाद। ३२ वर्णव्यवस्थाविषयमें अन्यमतनिरास। ३३ वर्णविमर्श। ३४ वर्णव्यवस्थागतभ्रान्तिनिरास। ३५ क्या गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था चल सकती है ? ३६ मृतकश्राद्धसिद्धि। ३७ मृतकश्राद्धगतभ्रान्तिनिराकरण ३८ वैवस्वतयम और यमदूतोंकी वैदिकता। ३९ परलोककी सिद्धि। ४० स्वर्ग, नरक आदि लोकविशेषों की सिद्धि और यज्ञका उद्देश्य स्वर्गादिको प्राप्ति। ४१ स्वर्गमें गन्धर्व और अप्सराओंको सत्ता।

तृतीय उद्योत—४२ मूर्तिपूजनमें पूर्वपक्षी और उत्तरपक्षीका संवाद। ४३ मूर्तिपूजा-मीमांसा (परापूजा-स्तोत्र पर विचार) ४४ मूर्तिपूजन-विमर्श। ४५ स्वामी दयानन्दजी और शिवरात्रिका मूषक। ४६ पशुबलि-विवेचन। ४७ परमात्माकी साकारताकी सिद्धि। ४८ परमात्माका अवतारनिरूपण। ४९ द्वैतवाद एवं अद्वैतवाद में सामंजस्य। ५० विविध वाद।

चतुर्थ उद्योत—५१ गणपतिपूजनकी सिद्धि। ५२ ग्रहोंका प्रभाव और उनका पूजन। ५३ क्या नक्षत्रादि विचार कल्पित है ? ५४ फलित ज्योतिष पर विचार। ५५ राहु-द्वारा सूर्यग्रहण। ५६ पृथिवी की स्थिरता और सूर्य की गति। ५७ सूर्यग्रहण और देवपूजादिविषयमें वेदादिशास्त्रों का मत। ५८ ग्रहण-विज्ञान और उसका अशौचविज्ञान। ५९ 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। ६० सूर्य आत्मा।

पंचम उद्योत—६१ स्त्रियोंको-सन्ध्या, उपनयन, वेदादिके अधिकार एवं अनधिकार पर विचार। ६२ स्त्रियोंका वेदादि-अधिकारविषय निरास। ६३ प्राचीन साहित्यमें स्त्रियोंका स्थान। ६४ स्त्रियोंका वेदानधिकार विमर्श। ६५ स्त्रियोंके वेदानधिकारविषयमें आक्षेप-परिहार। ६६ स्त्रियोंके वेद-उपनयनविषयमें नवीन-प्रमाणोंकी समीक्षा। ६७ नारियों के उपनयनाधिकार पर विचार। ६८ नारियोंके उपनयनाधिकार पर आक्षेप-परिहार। ६९ स्त्रियोंके उपनयन-वेदादिविषय में भ्रांति-निवारण। ७० स्त्री-शूद्रोंके वेदादिके अनधिकार विषयमें पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष। ७१ पूर्वका परिशिष्ट। ७२ 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी।'

षष्ठ उद्योत—७३ स्त्रियोंकी आवरण (पर्दा)-प्रथामें वेदादि शास्त्रों का मत। ७४ स्त्रियोंके प्राचीनतानुसरणसे ही शान्ति। ७५ स्वयंवरमें क्षत्रियों

से भिन्न वर्णोंका अधिकार नहीं। ७६ पुराण-इतिहास में स्वयंवरके सम्बन्धमें सम्मति है या विमति? ७७ बाल्यविवाहपर विचार। ७८ युवति-विवाहके दुष्परिणामकी कथा। ७९ श्रीसीता-रामके विवाहकी अवस्था।

सप्तम उद्योत—८० विवाहवयोविचार। ८१ कन्या-विवाहपर विमर्श। ८२-८३ कन्या-विवाह-वयपर विवेचना। (१) (२)। ८४-८५-८६-८७ कन्याविवाह-वयोविवेक (क) (ख) (ग) (घ)। ८८ कन्याविवाह-वयोनिर्णय।

अष्टम उद्योत—८९ विधवाविवाहकी युक्तता वा अयुक्ततापर विमर्श। ९० पति एक और स्त्रियां बहुत। ९१ विधवाविवाहकी हानियां। ९२ विवाहविच्छेद की हानियां। ९३ कन्याओंके दायाद्य करनेमें हानियां ९४ विधवाविवाहविषयक-युक्तिविवेक। ९५ नियोग और और मैथुन (एक दृष्टि कोण) ९६ विधवा-विवाह, नियोगादिविषयक प्रमाणोंकी समीक्षा। ९७ नियोग और मैथुन (दूसरा दृष्टिकोण) ९८ स्वामी दयानन्दजीके नियोगका समीक्षण। ९९ श्रीपराशर और मत्स्यगन्धाका समागम। १०० दमयन्ती आदियोंके पुनर्विवाहपर विचार। १०१

द्रौपदीके पञ्चपतित्वपर विचार। १०२ द्रौपदी-पंच-पतित्वविषयक आक्षेपोंका परिहार, १०३ द्रौपदीके पञ्चपतित्वकी आवृत्ति, १०४ 'पंचकन्याचरित्र' समीक्षा।

नवम उद्योत—१०५ त्रिकालमें सन्ध्याकी वैदिकता, १०६ गायत्रीमन्त्रकी महत्ताका रहस्य, १०७ चन्दनादि का अनुलेपन, १०८ देवपूजा प्राचीन है। १०९ सनातनधर्ममें यज्ञका स्थान तथा प्रयोजन, ११० क्या विद्वान् मनुष्यही देव हैं? १११ देवताओंकी मनुष्योंसे भिन्नतामें वेदादिप्रमाणोंका उपन्यास, ११२ क्या वेदमें देवताओंके नाम परमात्माका अर्थ रखते हैं? ११३ देवतावादके विषयमें श्रीसातवलेकरके मतकी आलोचना, ११४ मरुतोंके देवत्वका विचार, ११५ देवताओंकी अमानुषिकशक्ति और देवस्वरूप-निरूपण, ११६ इन्द्र देवराज और स्वर्गलोकके शासक, ११७ देवताओंके भेद और दिशाएं, ११८ देवताओं की उत्पत्ति, ११९ देवताओंके पौराणिक नाम वेदमें, १२० देवताओंकी पत्नियां, १२१ देवासुर-युद्ध, १२२ आसुरी माया, १२३ मायावियों के साथ माया करनेमें वैदिकता, १२४ भूतप्रेतपिशाच आदियोंकी वेद एवं आयुर्वेदमें सत्ता।

दशम उद्योत—१२५ 'नमस्ते' का युक्तायुक्तत्व-विचार, १२६ नमस्ते अथवा हठवाद, १२७ 'नमस्ते-विधान' का प्रतिविधान, १२८ क्या नमस्ते एक पद है? (नमस्ते-प्रदीपकी समीक्षा), १२९ 'नमस्ते व्याख्या' का निरीक्षण, १३० 'नमस्ते-प्रचार' समीक्षा, १३१ हिन्दुशब्दकी प्राचीनता एवं वैदिकता, १३२ हिन्दुओंका आदिनिवासस्थान भारतवर्ष, १३३ क्या ऐतेरय महिदास शूद्र थे? १३४ क्या ऐलूषकवष शूद्र थे? १३५ क्या पौराणिक सूत प्रतिलोम-सङ्कर थे? १३६ क्या कक्षीवान् और जानश्रुति शूद्र थे? १३७ क्या शबरी शूद्रा थी? १३८ क्या वाल्मीकि चाण्डाल थे? १३९ क्या प्रह्लाद ऐतिहासिक व्यक्ति न था? १४० 'पोप' शब्दकी समीक्षा, १४१ ऋषित्वविचार, १४२ मुक्तिमें अपुनरावृत्तिकी सिद्धि, १४३ पाप और उसके फलका दूर होना, १४४ वेद हमारे शत्रुओंका शत्रु, १४५ आत्मा कर्म में भी परतन्त्र, १४६ कर्म-रहस्य, १४७ मानवीय साम्यवाद? १४८ चातुर्वर्ण्य की अनादि-सिद्धता, १४९ शूद्रादि अनार्य, १५० अस्पृश्योद्धार-मीमांसा, १५१ वरशापप्रदानमें उपपत्ति।

एकादश उद्योत—१५२ हिदुओंकी संख्यामें ह्रास क्यों? १५३ क्षण तक जलना अच्छा; देर तक धुआं अच्छा नहीं; १५४ आज समर्थतामें भी अशान्तिका साम्राज्य क्यों? १५५ स्वराज्यशब्दकी परिभाषा, १५६ क्या हम अस्पृश्योंके विरोधी हैं? १५७ जनता की अन्ध-परम्परा, १५८ भारतदुर्गके भङ्गका प्रसंग, १५९ धर्मदुर्गत्राणार्थ हमारे पूर्वजोंकी दूरदर्शिता, १६० साम्यवादविषयक-संवाद, १६१ चांडाल-आदियों की अस्पृश्यतामें प्रमाण और उपपत्तियां, १६२ अन्त्यजोंके देवमन्दिरमें अप्रवेश और अस्पृश्यतापर विचार, १६३ स्पृश्य एवं अस्पृश्यका संवाद १६४ अस्पृश्योद्धारका आदर्श, १६५ अस्पृश्योद्धारके प्रकार का विचार, १६६ साम्यवादके प्रमाणोंकी परीक्षा, १६७ साम्यवाद और अन्त्यजोंके देवमन्दिरप्रवेशकी प्रत्यालोचना, १६८ अन्त्यजोंके देवमन्दिरप्रवेशपर विचार, १६९ 'भारतीय धर्मशास्त्र'की समीक्षा, १७० अस्पृश्यता-विज्ञान।

द्वादश उद्योत—१७१ रामायणविषयक-आक्षेप का परिहार। १७२ क्या रामायण महाभारतसे अर्वाचीन है? १७३ क्या उत्तरकाण्ड रामायणका अङ्ग नहीं है? १७४ क्या आदिम चार सर्ग रामायणके अङ्ग नहीं हैं? १७५ उत्तरकाण्डके रामायणके अङ्गत्व में उपपत्तियां। १७६ मूलरामायण और उत्तरकाण्ड

के विरोधका परिहार। १७७ आद्य **चार सर्ग और** उत्तरकाण्डमें विरोधका परिहार। १७८ **पहिलेके चार** सर्गके विषयमें विरोधपरिहार। १७९ **अरण्यकाण्ड** और उत्तराकांडका विरोध परिहार। १८० **उत्तरकांड-**विषयक आक्षेपों का परिहार। १८१ **आदिम छः** काण्डोंके आक्षेपोंका परिहार। १८२ क्या **रामायण** बुद्धकालमें हुई ? १८३ वाल्मीकिरामायणका **रामाव-**तारसे पूर्वनिर्माण कैसे ? १८४ सीताकी उत्पत्ति **पर** विमर्श १८५ क्या हनुमानादि मनुष्य थे ? १८६ **पशु-**पक्षियोंके भाषणकी सिद्धि।

त्रयोदश उद्योत—१८७ क्या महाभारतके एक लाख श्लोक नहीं और कर्ता एक नहीं ? १८८ पुराणों का कर्ता एक है। १८९ व्यास एक हैं या दो ? १९० पौराणिक वस्तुओंकी गवेषणा। १९१ कल्प और सृष्टि-संवत्सर। १९२ कलियुगके अन्तकी समीक्षा १९३ पुराणोंका लाभ और पुराणोंको विषयसूची। १९४ पुराणोंका संक्षिप्त परिचय। १९५ प्रत्येक पुराणमें भिन्न-भिन्न देवताके बड़े होनेका समाधान १९६ पुराणोंमें अतिशयोक्ति वेदानुकूल। १९७ पुराणमें परस्पर विरोध और पुनरुक्तिका समाधान। १९८ देवतावादके विषयमें वेद और पुराणोंकी एक-वाक्यता। १९९ पौराणिक इतिहासोंकी वेदमें भी

सत्ता। २०० पुराणनाम वेदादि साहित्यमें। २०१ पुराण और ब्राह्मणका भेद।

चतुर्दश उद्योत—२०२ वैदिकता और पौराणि-कताका रहस्य। २०३ पौराणिक अश्लीलतापर विचार। २०४ वेदोंमें भी पुराणसदृशता। २०५ पुराणोंका महत्त्व और उनमें विविध भाषाएं और विविध भाव। २०६ पौराणिक चरित्रोंका पर्यालोचन २०७ शिवलिङ्गपूजनविषयक विमर्श। २०८ पौराणिक-समन्वय। २०९ 'पुराणपरिचय' का परिचय। २१० पुराणविषयक त्रिविध-आक्षेपों का परिहार। २११ पर्वतों के पंख और उनका काटना वैदिक। २१२ पुरा-णोंक्त दीर्घायुष्य में वेद की साक्षी। २१३ पौराणिक दीर्घायुष्यता की परीक्षा। २१४ अमरताकी सिद्धि। २१५ अकालमृत्युका सम्भव। २१६ मृतकका जीवित होना। २१७ सिर काटनेपर भी जीवित रहना। २१८ गौओंका वैदिक, पौराणिक और व्यावहारिक महत्त्व २१९ स्वप्नफलकी समूलकता। २२० व्रत आदिकी शास्त्रीयता और वैज्ञानिक महत्ता। २२१ शकुन एवं अपशकुनकी समूलकता। २२२ कुश का उपयोग शास्त्रीय। २२३ तीर्थोंकी वैदिकता और उनकी पवित्रता। २२४ भगवान् नन्दनन्दन और उनके चरित्र

की आलोचना। २२५ श्रीराधाविषयक आक्षेपका परिहार। २२६ क्या भागवतके श्रीकृष्ण अन्य हैं और महाभारतके अन्य? २२७ 'कर्मण्यकर्म यः पश्येद् अकर्मणि च कर्म यः'। २२८ श्रीरामववतार। २२६ यज्ञमें पश्वालम्भकी वैदिकता। २३० मद्य और उसकी व्यवस्था। २३१ द्यूत और उसकी व्यवस्था।

पंचदश उद्योत—२३२ असम्भवशब्द कूपमण्डूकोंके कोषमें २३३ प्रकृतिके नियम सामान्यशास्त्र। २३४ स्त्रीका पुरुष बन जाना और पुरुषका स्त्री बन जाना। २३५ अगस्त्य ऋषिके समुद्रपानमें उपपत्ति। २३६ नेत्र आदि के द्वारा जलाने में उपपत्ति। २३७ स्थूल-मैथुन के बिना भी सन्तान। २३८ विष्णुकर्णमलोद्भूतत्व आदि पर विचार। २३६ सृष्टिकी विलक्षण उत्पत्तियाँ। २४० बहुत सन्तानके सम्भवकी मीमांसा। २४१ रक्तबीज के रक्तसे असुरोंकी उत्पत्ति। २४२ नारद आदिका आकाशमें जाना और उससे उतरना। २४३ आकाशमें आकाश-गंगा आदिकी स्थिति। २४४ एकसे अधिक मुखोंका सम्भव। २४५ हनुमानका सूर्यको पकड़ना। २४६ समुद्रमें पत्थरोंका तैरना। २४७ क्या कुम्भकर्णकी निद्रा असम्भव है? २४८ बूढ़ेको जवानी देना। २४६

मरे हुएका संजीवन। २५० पुरुषोंका दीर्घ आकार २५१ दीर्घजीवनमें उपपत्ति। २५२ अन्तर्धानसिद्धिमें प्रमाण एवं उपपत्ति। २५३ सूर्यका ढक देना और अस्त्रका वापिस आना, २५४-२५५ बिना देखे भी युद्ध आदिका वृत्तज्ञान और भविष्यत्का ज्ञान, २५६ युद्धमें गीता सुना सकनी सम्भव है, २५७ शिवडमरूसे चौदह सूत्र, २५८ आग्नेय, वायव्य, सम्मोहन आदि अस्त्र। २५६ गोवर्धनपर्वतके उठानेपर विचार, २६० समुद्रमन्थनका सम्भव। २६१ देवताओं आदिकी बहु-शरीर तथा दूसरोंके शरीर बना लेनेमें शक्ति, २६२ प्रह्लाद आदिका चरित्र सम्भव।

षोडश उद्योत—२६३ वादियोंकी नीति-रीतिका दिग्दर्शन, २६४ 'संस्कारविधि' में सनातनधर्म [प्रस्तावना, १ गर्भाधानसमीक्षा, २ पुंसवन-समीक्षा, ३ सीमन्तोन्नयन-स०, ४ जातकर्म-स०, ५ नामकरणस०, ६ निष्क्रमण-स०, ७ अन्नप्राशन-स०, ८ चूड़ाकर्म-स०, ६ कर्णवेध-स०, १० उपनयन-स०, ११ वेदारम्भ-स०, १२ समावर्तन-स०, ६ कर्णवेध-स०, १० उपनयन-स०, ११ वेदारम्भ-स०, १२ समावर्तन-स०, १३ विवाह-स० १४ गृहाश्रम-स०, १५ वानप्रस्थाश्रम-स०, १६ संन्यास-स० १७ अन्त्येष्टि-स०]। २६५

सत्यार्थप्रकाशके कई अंशोंकी आलोचना, २६६ स्वामी दयानन्दजी और आर्यसमाज। २६७ आर्यसमाजियों से उल्लंघित स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्त, २६८ शुद्धि-विमर्श, २६९ असवर्णाविवाहकी सदोषता, २७० समुद्र-यात्रा-प्रायश्चित्तविचार।

सप्तदश उद्योत—२७१ सङ्कलित सनातनधर्मके नियमोंका वेदशास्त्रादिमें मूल [१ अपनी संहिता (शाखा) का अध्ययन, २ शस्त्रलाभ, ३ सुवर्णधारण का माहात्म्य, ४ सरस्वतीदेवी का वर्णन, ५ बालकके ऊर्ध्वदन्तोंका दुष्फल, ६ दिग्बलि, ७ दिग्रक्षाकवच, ८ युगनाम, ९ ऋतु और मास १० ब्राह्मणों को दान, ११, यज्ञका दक्षिणासे सम्बन्ध, १२ दक्षिणादान-माहात्म्य, १३ युद्धमें मरने पर स्वर्ग; १४ मरनेके बाद पुरुषकी दशा, १५ धनान्नदानकी प्रशंसा १६ यजमान-वर्धन, १७ अभिचारादिका वर्णन और मन्त्र-शक्ति, १८ स्त्रियोंके भूषण १९ श्रद्धाका महत्त्व। २० दीक्षा-ग्रहण, २१ तान्त्रिक-शब्द, २२ इन्द्रजाल-वर्णन, २३ शयनकी दिशा, २४ नामग्रहणका माहा-त्म्य, २५ चर्म-स्थिति, २६ पुत्र में पक्षपात २७ सात वस्तुएं, २८ आकाशयान-जल-नौका मूल, २९ सुदर्शन-चक्रका मूल, ३० सगोत्रविवाहका निषेध।

३१ आततायीका वध, ३२ मनुका पिता होना, ३३ रात्रिकी स्तुति, ३४ त्रुटिकी प्रार्थना, ३५ खरवाहन, ३६ सत्यासत्यका विवेक, ३७ आचमन फल, ३८ प्रेतका पिपीलिका से उपहत होनेपर दोष ३९ अङ्गस्पर्श, ४० वेदमें विविध-जातियां, ४१ अनुस्तरणी का मूल, ४२ मन्देहदैत्य, ४३ इन्द्रका वज्र, ४४ आयुर्वेद, ४५ मृतकको सुवर्ण पहराना और स्नान कराना ४६ मलमासका मूल ४७ मूषकवाहन, ४८ सूर्यके घोड़े, ४९ जाया-अर्धाङ्ग, ५० पत्नीके वस्त्रको पहिरने का निषेध। ५१ पातिव्रत्य, ५२ पाणिग्रहणमें स्त्रीके अंगूठे आदिका ग्रहण, ५३ अन्नदोष, ५४ ओंकार-जपकी महिमा, ५५ अश्वके प्रतिग्रहका निषेध, ५६ भोजन-नियम, ५७ वेदकी शाखाएं, ५८ प्रकीर्ण सनातनधर्म की बातोंका मूल]

२७२ सनातनधर्मके सिद्धान्तोंकी वैज्ञानिकता [१ सवर्ण विवाह-विधि, २ असवर्णतामें तथा निकट-सम्बन्धमें विवाहका निषेध, ३ जपपाठ, ४ ग्रहणमें भोजनादिका निषेध, ५ उत्तरमें सिर करके सोनेका निषेध, ६ घरमें तुलसीका पूजन, ७ पीपलका पूजन, ८ शङ्खध्वनि, ९ काष्ठ-पादुका पहनना, १० कुशोंका आसन, ११ रेशमी आसन, मृग और व्याघ्रके चर्म

१२ कमण्डलु, १३ रातमें निद्राके समय सिरकी ओर जल रखना, १४ वस्त्रसे विना छाने गायका दूध न पीना, १५ पृथ्वीमें लात मारना पापजनक, १६ शिशुओंके गलेमें रक्षा आदिका पहिराना, १७ कुओंपर घृत का दीपक जलाना, १८ भोजनसे पूर्व ग्रास रखना, अग्निमें डालना और काकबलि]

२७३ सनातनधर्मके मन्तव्यों की रहस्यपूर्णता [१ ब्राह्ममुहूर्तमें उठना, २ प्रातः भूमिका वन्दन, उस पर उठते ही पांव न रखना, ३ हस्तदर्शन, ४ प्रातः ब्राह्मणका दर्शन अशुभ क्यों? ५ मलत्यागकर मिट्टीसे हस्तशुद्धि, ६ दन्तधावन ७ तैलनियम, ८ स्नान, ९ काठके खडाऊं पहिनना, १० रेशमी आसन, कुशासन, मृग वा व्याघ्रके चर्मका आसन, ११ - मूर्ति-पूजा, १२ तिलक, १३ भस्मधारण, १४ मार्जन, १५ अभिषेक, १६ शिखा-बन्धन, १७ सन्ध्योपासना, १८ प्राणायाम, १९ सूर्योपस्थान, २० जप, २१ जपपाठः, २२ मालाकी मणियां १०८ क्यों? २३ मन्त्र और सिद्धियाँ, २४ जपन १०८ वार क्यों? २५ परि-क्रमा, २६ तुलसी-पूजन, २७ तुलसी-पत्रके चबानेका निषेध, २८ देवमन्दिर-गमन, २९ पंचगव्य, गोमय, गोमूत्र, ३० गोमूत्रमें गंगानिवास, ३१ गोवरमें लक्ष्मीका

निवास ३२ श्रावणी, ३३ विजय-दशमी, ३४ दीपावली, ३५ होली, ३६ अपने नामके छिपानेका रहस्य, ३७ उपवास, ३८ दृष्टिदोष, ३९ भोजनकी शुद्धि, ४० बाजारके अन्नकों खानेका निषेध, ४१ घृतपक्वकी शुद्धता, ४२ स्पृश्यास्पृश्यता, ४३ व्रतोपवास, ४४ तीर्थ ४५ परलोक]

२७४ आचारोंमें वैज्ञानिक चमत्कार [१ ब्राह्म-मुहूर्तमें शय्यात्याग, २ प्रातः मलमूत्र-त्याग, ३ मलमूत्र-त्यागके नियम ४ गण्डूष (कुल्ला) करना, ५ मुंह धोना, ६ प्रातः-स्नानका फल, ७ सन्ध्याके लिए प्रातः पुष्प चुनना ८ स्नानके बाद चन्दन लगाना, ९ पूर्व दिशाकी ओर मुख करके भो.न करना, १० भोजनके समय मौन, ११ भोजनके समय अथवा अन्य समय रेशमी वस्त्र पहिननेकी महिमा, १२ भोजनके समय नैवेद्य १३ भोजनकी विशुद्धि, १४ शूद्रादिके भोजनका निषेध १५ समान वर्ण वालोंकी पक्तिमें भोजन, १६ पंक्तिके भोजन समाप्त हो जानेपर इकट्ठा उठना, १७ भोजनमें दृष्टिदोष, १८ सिर बन्द करके वा जूता पहिर कर भोजन करनेका निषेध, १९ भोजन के बादके नियम, २० गायका दूध। २१ काली गायकी विशेषता २२ विशेष-विशेष तिथियोंमें उपवास। २३

शयनके समय विशेष दिशाका विचार]

२७५ शङ्खध्वनिका विज्ञान। २७६ चरणामृतका वैज्ञानिक महत्त्व। २७७ आयुर्वेदिक दृष्टिसे भी गंगा जलकी महत्ता। २७८ वृक्षोंमें चेतनता। २७९ तुलसी-गुण-गौरव। २८० सोलह संस्कारोंका रहस्य। २८१ शिखाको रहस्य। २८२ उपनयन रहस्य। २८३ लांग बांधना। २८४ मेखला कौपीन आदिओंका रहस्य। २८५ मृगचर्मासनका रहस्य, २८६ वैवाहिक रीति-विशेष रहस्य, २८७ श्रीकृष्ण जन्माष्टमीव्रत पूर्ण वैज्ञानिक २८८ विजयदशमीका महत्त्व। २८९ दीपावली विज्ञान। २९० होलिका-विज्ञान। २९१ एकादशी-व्रत विज्ञान। २९२ ओङ्कार-महत्त्व, २९३ मौन-महत्त्व।

अष्टादश उद्योत—२९४ विविध प्रश्नोंके उत्तर, २९५ श्रीसम्पूर्णानन्दजी के आक्षेपोंका परिहार। २९६ शनैश्चरमन्त्रविषयक-विचार, २९७ क्या गणपति अवैदिक देव हैं? २९८ श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा क्या धर्मके नाम से अधर्म है? २९९ देवचरित्रचर्चा। ३०० श्रीसम्पूर्णानन्दजीके अवशिष्ट आक्षेपोंका परिहार, ३०१ वार-क्रम-रहस्य, ३०२ आर्य-समाजिक विवाहका रहस्यभेद, ३०३ महाब्राह्मणोंकी अव्यवहार्यताकी विवेचना, ३०४ उपनिषद्के विषयमें डुइसन

साहिबकी भ्राँति, ३०५ दर्शनोंमें सनातनधर्म, ३०६ भगवद्गीतामें सनातनधर्म, ३०७ भगवद्गीतामें वेद-खंडनका रहस्य, ३०८ क्या गीतामें केवल कर्मकाण्ड है? ३०९-३१० गीताप्रोक्त यज्ञविषयमें विमर्श (१) (२)।

एकोनविंश उद्योत—३११ आयुर्वेदमें आतुर-कवच, ३१२ आयुर्वेदमें सनातनधर्म (सुश्रुत-सूत्र-स्थानमें) ३१३ आ० सना० (सुश्रुत-निदानस्थानमें) ३१४ आयु० सना० (सुश्रुत शारीर-स्थानमें). ३१५ आयु० में सनातनधर्म (सुश्रुत-चिकित्सा-स्थानमें) ३१६ आयु० में सना० (सुश्रुत-कल्पस्थानमें) ३१७ आयुर्वेदमें सनातन धर्म (सुश्रुतसंहिता-उत्तर तन्त्रमें), ३१८ श्रीआयुर्वेद (चरक-सूत्रस्थान) में सनातन धर्म, ३१९ आयु० (चरक-निदानस्थानमें), ३२० आयु० में सनातन धर्म (चरक-विमानस्थानमें), ३२१ आयु० में सना० (चरक-शारीरस्थानमें) ३२२ आयु० में सना० (चरक-इन्द्रियस्थानमें) ३२३ आयु० में स०ध० (चरक-चिकित्सास्थानमें), ३२४ आयु० में स० ध० (चरक-कल्पस्थानमें), ३२५ आयुर्वेदमें सनातनधर्म (चरक-संहिता-सिद्धिस्थानमें)।

विंश उद्योत—३२६ वैज्ञानिकसंसारके अद्भुत

आविष्कार। ३२७ प्राचीनता श्रेष्ठ है वा अर्वाचीनता? ३२८ संन्यास-आश्रमकी प्राचीनता वा शास्त्रीयता। ३२९ 'देवृकामा' विषयक विमर्श। ३३० मुसलमानोंसे छुआ हुआ अन्न अभोज्य ही है। ३३१ हिंदुकोडबिलकी संक्षिप्त आलोचना। ३३२ हिंदुकोड-विधान और निरुक्त, ३३३ हिंदुकोड-विधान और स्मृतियां, ३३४ भारतीय नारी-विषयक आक्षेपों पर विचार, ३३५ हमें सनातनधर्मकी भक्ति क्यों करनी चाहिए? ३३६ सनातनधर्म प्रचारकोंका स्मरण, ३३८ सनातनधर्मका वर्तमान साहित्य और उसकी आलोचना, ३३९ सनातनधर्मी पत्र-पत्रिकाओंका परिचय, ३४० उपसंहार।

परिशिष्ट उद्योत—३४१ प्रणेताके विषयमें समाचारपत्रोंमें मुद्रित सम्मतियाँ, ३४२ प्रणेताके परिचायक विद्वानोंके पत्र, ३४३ साक्षात्कार वा सन्देश द्वारा प्रणेताके प्रोत्साहकोंकी नामावली। ३४४ हमारे शास्त्रार्थ। ३४५ प्राप्त पत्र-पुस्तकादिका विवरण। ३४६ किन-किन नगरोंसे पत्र आदि आये? ३४७ मुद्रण-यन्त्र जिसमें हमारे निबन्ध मुद्रित हुए। ३४८ प्रणेतृ-परिचय (१) (ले. श्रीयशोदानन्दनशास्त्री जयतल)। ३४९ प्रणेतृपरिचय (२) (ले. श्री महावीर

प्रसादजोशी) ३५० प्रणेतृ परिचय (४) ले. 'संस्कृतम्' सम्पादकः)। ३५१ प्रणेतृ-परिचय' (४) (ले. श्री नागार्जुन)। ३५२ 'श्री सनातनधर्मालोक'के संरक्षक तथा सहायकोंका परिचय। ३५३ समाप्ति-मङ्गल।

पाठक महानुभावोंने वर्तमान शताब्दीके नव-उपहार एवं सनातनधर्मके महाभारत— इस 'श्रीसनातनधर्मालोक' महाग्रन्थकी विषयसूची, देख ली। उन्होंने अनुभव किया होगा कि सनातन धर्मका कोई भी विषय इसमें छूट नहीं पाया। 'पुराण-विषयक विविध आक्षेपोंका परिहार' (२१०) और विविध प्रश्नोंके उत्तर' (२६४) इन निबन्धोंमें सनातन धर्म पर होनेवाली सौ-सौसे अधिक शंकाओंका प्रमाणोपपत्तिसहित समाधान किया गया है। कई उद्योतोंमें विविध-विषय भी आ गए हैं। जो विषय हमारे ध्यानमें न आया हो, उसे सुझा देने पर उसको भी इस महाग्रंथमें अन्तर्निविष्ट कर लिया जाएगा।

ऐसे महाग्रन्थकी आवश्यकतासे कौन नकार कर सकता है? हमने संवत् १९८० सन् (१९२४) से अबतक निरन्तर ३० साल पत्र-पत्रिकाओंके द्वारा सनातन धर्मकी जो सेवा की है, उसका श्रेय इसी महाग्रन्थको है। इसीसे उद्धृत हमारे लेखोंको चोटीके

नेताओं, वक्ताओं तथा अनुसंधाताओंने अपने पुस्तकों में बिना हमारा नाम लिए ही अपने उपयोगोंमें लाकर हमारे परिश्रमकी सफलताको प्रमाणित कर दिया है! अब हमारे मूल्यांकनका समय आगया है। हम यह चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण महाग्रन्थ शीघ्र ही मुद्रित होकर प्रकाशित हो जाए। इसकेलिए न्यून से न्यून एक लाख रुपयेका अनुमानित व्यय होगा। उस कार्य के प्रारम्भार्थ पहले पच्चीस सहस्र रुपया अपेक्षित है। यह धार्मिक सज्जनोंने पूरा करना है। हम इस (प्रथम पुष्प) से सब सज्जनोंको आमन्त्रित करते हैं कि वे इस महायज्ञमें अपनी-अपनी आहुति यथाशक्ति डालें। 'सनातनधर्मालोक'-सर्वस्वके लिए दश सहस्र रुपया रखा गया है। महासंरक्षकके लिए पांच सहस्र, मान्य-सहायकके लिए ढाई सहस्र रुपया, और संरक्षक के लिए एक सहस्र, सम्मान्य सहायकके लिए पांचसौ रुपया, तथा मान्य-सहायकके लिए ढाईसौ रुपया और सहायककेलिए एक सौ रुपया नियत किया गया है। साधारण सहायक पचास रुपया तक भी दे सकते हैं। सब सज्जन इसमें अपनी शक्तिके अनुरूप द्रव्य स्वयं देकर तथा दूसरे धनी-मानी सज्जनोंसे दिलवाकर सर्वात्मरूप से सहायता करें। तब यह महाग्रन्थ अना-

यास प्रकाशित हो जाएगा।

श्रद्धेय पूज्य श्री १००८ स्वामी करपात्रीजी महाराजने हमें अपने संरक्षणका वचन दिया है। माननीय श्री पण्डित दुर्गादत्तजी त्रिपाठी (भूतपूर्व 'सिद्धान्त' मासिक 'सन्मार्ग सम्पादक काशी) महोदयका तो हमें इस देशमें आने पर सब प्रकारका सहयोग प्राप्त हो रहा है। 'सन्मार्ग' दैनिक काशीके प्रधान सम्पादक श्री पण्डित गंगाशंकरजी मिश्रका प्रोत्साहन एवं सहयोग भी प्राप्त हो रहा है। 'कल्याण' परिवारका सहयोग भी शीघ्र मिलने वाला है। मुलतानके सनातनधर्मके प्रेमी श्री मघवदत्तजी महोदयका सहयोग भी मिल रहा है, द्रव्यको सहायता सबसे पूर्व श्री पं० रेवाशंकरमेघ जी शास्त्री पुरोहित देलवाडाकर प्रधानाध्यापक भारतीयविद्याभवन स्व० से० देवीदास लल्लूभाई संस्कृत पाटशाला, १२५ गुलालवाडी, बम्बई ४ ने प्रारम्भ की है। फिर श्रीमान् पं० ब्रह्मदत्तजी शर्मा सहायकाध्यापक राजकीय प्राथमिक पाठशाला, कादेड़ा (अजमेर) ने की है। श्री ब्रह्मदत्तजीने पुष्कल सहाता भेजी भी है और भेज भी रहे हैं, तथा आगे भेजने का आश्वासन भी दिया है। पूज्यपाद द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरुशंकराचार्य-श्रीअभिनव

सच्चिदानन्द तीर्थस्वामि चरणोंने इसके लिए प्रारम्भिक सहायता देकर और भविष्यत् के लिए वचन देकर अपने दृढ़ सनातनधर्मानुरागित्वको प्रकट कर दिया है। आशा है अन्य सन्त, महन्त तथा आचार्य भी श्रीमान्का अनुकरण करेंगे। श्री पण्डित रामेश्वर शास्त्री प्र० अध्यापक, श्री पण्डित देवकृष्णजी शास्त्री अध्यापक श्री वेंकटेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, जायल (मारवाड़) श्री पं०हरिप्रसादजी शास्त्री संस्कृताध्यापक पठानकोठ, (इनकी आर्थिक सहायता प्राम्रभ हो गई है), श्री श्याम सुन्दर जी शास्त्री, सिवानी (हिसार), भक्त रामशरणदासजी पिलखुआ आदिने भी सहायताक वचन दिये हैं।

अब सब सज्जनोंको 'क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्-रसम्, इस पद्यको स्मरण करके सहायता देना-दिलवाना शीघ्र प्रारम्भ कर देना चाहिए। जो सज्जन धर्मादाय रखने वाले सज्जनों से परिचित हों वे उनसे सहायता दिलवावें। अन्य लोग हमारे प्रकाशित ग्रंथोंका प्रचार करवाकर भी सहायता कर सकते हैं। उनसे प्राप्त द्रव्यका भी शेष निबन्ध-प्रकाशन में विनियोग किया जायगा। 'श्रीसनातनधर्मालोक' का प्रचारकी दृष्टिसे हम हिंदीमे प्रकाशन चाहते

हैं परन्तु स्थायी-साहित्यकी दृष्टिसे संस्कृत-भाषा में भी इसका प्रकाशन चाहते हैं। अब सब सज्जनों को 'श्रीदीनानाथशर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश, (प्रिन्सिपल सं० हिन्दी महाविद्यालय) रामदल, दरीबाकलां दिल्ली, इस पते से शीघ्र सहायता-द्रव्य भेज देना चाहिए। जो महोदय दान देना चाहते हों पर उन्हें सत्पात्र न मिल रहा हो, तो उनके लिए यह महाग्रंथही सत्पात्र सिद्ध होगा। जो समर्थ तथा धर्म श्रद्धालु सज्जन इसमें सहयोग दे सकें, उनके पते भी हमें भेज देने चाहिएं। अन्तमें आपसे श्रीसनातनधर्म सेवाकी दृढ-सम्भावना करता हुआ 'श्रीसनातनधर्मालोक-परिचय' यही समाप्त करता हूं। पर्याप्त सहायता प्राप्त हो जाने पर हम अन्य सब कार्य छोड़कर केवल इस प्रकाशन-कार्यमें लग सकते हैं।

इस 'श्रीसनातनधर्मालोक' के कुछ निबन्धों पर कुछ विद्वानोंकी सम्मति भी उद्धृत की जाती है, जिससे जनताको उनकी उपयोगिता ज्ञात हो जाए। 'अगस्त्य समुद्रपानोपपत्तिः' हमारा यह संस्कृत निबन्ध 'मधुवाणी' पत्रिका [२।२] में प्रकाशित हुआ था। यह निबन्ध हिन्दीमें 'ब्राह्मण-सर्वस्व' इटावा पत्र [३४।] में प्रकाशित हुआ। इसीको इस पत्रसे 'सनातन-ध

पताका'-पत्रिकामें उसके सम्पादक महोदयने उद्धृत किया। उसे 'संस्कृत-रत्नाकर' के सम्पादक व्याकरणाचार्य श्री सूर्यनारायण शास्त्रिमहाभागने देखा। उक्त महोदयने 'संस्कृतरत्नाकर' [५-७ अङ्क १२२ पृष्ठ] में उक्त हमारे निबन्धके सम्बन्धमें यह शब्द लिखे—

(१) स्वामिनो दयानन्दस्य मतखण्डने परमकुशलस्य, पौराणिकाख्यानोपपत्ति-साधन-दृढ-व्रतस्य, चतुर्ष्वपि वेदेषु कृतश्रमस्य, तन्द्रालस्यादि—वैदुष्य-विघातकदोषसम्पर्केण सर्वथा विवर्जितस्य, निरन्तर-स्वाध्यायशीलस्य, संस्कृतनागर्युभयविधभाषालेख-पद्धति—निष्णातस्य, मूलत्राणनगरस्थ-सनातनधर्म-कालेजोपाध्यक्षस्य, महापण्डितस्य श्रीदीनानाथशर्म-शास्त्रिणः 'अगस्त्यऋषिका समुद्रपान' इतिशीर्षकयुक्तो युक्तिप्रमाणोपपत्तिसमर्थितो लेखोपि लेखकमहोदयस्य गम्भीरज्ञानम्, आत्यन्तिकं सनातनधर्मश्रद्धालुत्वं च प्रमाणयति। एतस्य बुधवरस्य लेखा 'रत्नाकरे' अपि प्रतिमासं प्रकाश्यमानाः परितोषयन्त्येव पाठकानां चेतांसि। अस्मिन्नेव तु मासे केनापि कारणेन न प्रहितोऽनेन महात्मना 'रत्नाकरे' लेखः, परं भविष्यति न स्याद् एवंविधा त्रुटिरिति मन्यामहे श्रीदीनानाथानु-

कम्पाबद्ध-श्रद्धाः'। (यह निबन्ध अब छठे पुष्प के रूप में प्रकाशित होता है।)

अब कुछ हिन्दी सम्मतियां भी उद्धृत की जाती हैं—

[२] 'परमपूज्य-श्रीशास्त्रीजीके चरणोंमें सादर यथायोग्य। 'वेदाध्ययनाधिकारका उत्तर' [श्री स्वा० करपात्रीजीके विरोधी लेखकको प्रत्युत्तर] 'वेदाध्ययनाधिकार पर विचार' [श्री रामचन्द्र हेडमास्टर को प्रत्यालोचनाका प्रत्युत्तर] दोनों लेख कलकी डाक से प्राप्त हुए। बहुत परिश्रम किया है। आप जैसे विद्वान् सचमुच आर्य-संस्कृतिके अनुपम रत्न हैं। जगदीश्वर आपसे ऐसी ही अनन्य धर्म-सेवाका महत्कार्य चिरकाल तक सम्पन्न कराता रहे। आपकी गम्भीर तात्त्विक विवेचन-शैलीकी मैं अल्पज्ञ क्या प्रशंसा करूं? सूर्यको दीपक दिखलाकर प्रकाशित क्या करूं? सदा हम पर ऐसी ही कृपा बनाये रखें।' विनीत—दुर्गादत्त त्रिपाठी 'सिद्धान्त स० सम्पादक, काशी (ज्येष्ठ कृष्ण ६ बुध २००३)।

(३) 'वर्णव्यवस्था जन्मसे ही है' और 'महाजनो येन गतः स पन्थाः, शीर्षक दो लेख आपके मिले। लेख दोनों अत्यन्त प्रमाणिक, युक्तियुक्त एवं मुँहतोड़

हैं। आपकी लेखनी में विलक्षण जादू है। सचमुच आपके अकल्पित, अमूल्य सहयोगसे हम लोगोंको जो शान्ति, सन्तोष, और प्रसन्नता हुई है उसे व्यक्त कर नहीं सकते। सनातनी–समाज आपसे गौरवान्वित एवं आपका चिरऋणी है, जगदीश्वरसे यही आन्तरिक प्रार्थना है कि आप खूब दीर्घायु एवं धर्मके समर्थनमें पूर्ण समर्थ हों।' विनीत– स० सम्पादक 'सिद्धान्त' आषाढ़कृष्ण १३ गुरु २००३।

(४) पंडित-प्रवरमहाभाग, आपके दो लेख (वेद-स्वरूप-निरूपण और वेदाधिकारि-विचार) कल प्राप्त हुए। आपकी इस निर्व्याज साहित्य-सेवा एवं हमारे प्रति अनुग्रहके लिए हमारी जयन्ती-ग्रन्थसमिति आपके चरणोंमें कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद निवेदन करती है। आप भारतके महामहिम मनीषी विद्वानोंमें एक हैं। उसपर त्यागभावसे निःस्वार्थ सुर-सरस्वतीकी सेवा करना यह आपकी महत्ताके अनुरूप है। किसीने ठीक ही कहा है 'नाल्पीयसि निबध्नन्ति पदमुन्नतचेतसः। येषां भुवनलाभेपि निःसीमानो मनोरथाः'। विद्वच्चरण-रेणु, गणेशरामशर्मा, मन्त्री-श्री रजतजयन्ती, महाराज-रावल अभिनन्दन-ग्रन्थ-समिति, डूंगरपूर, राजपूताना। २८ जून १९४६'।

(५) हे चक्रवर्ती विद्वत्तापूर्ण सार्वभौमपाण्डित्यादिमणि! आपके लेख 'वैदिक धर्म' और 'कल्याण' में पढ़नेको मिलते रहे। आपकी विद्वत्ताका कोई पारावार नहीं।' 'कल्याण' के हिन्दु-संस्कृति-अंकमें 'हिन्दुसंस्कृतिसम्बन्धी दस विषयोंपर विचार' आपका लेख पढ़नेको मिला, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। धन्य है उस माताको, जिसने आप—जैसे अमूल्य रत्नको जनकर हमारी सारस्वतजातिको सूर्यतुल्य देदीप्यमान कर दिया है।......आज मैं देख रहा हूँ कि ४ लाख श्लोकोंका साहित्य जो चारों वेदोंका सार पदार्थ है, सो आपकी लेखनीसे सूत्ररूपसे व्याख्या सहित गागरमें सागर भरा हुआ है। धन्य है आपके पिताको और धन्य है उस मातृभूमिको, जिस स्थानपर आप जैसे अमरवृक्षने वपन प्राप्त होकर अपनी छायासे जनताको आश्वस्त किया।......(श्रीरूपलाल सारस्वत विद्यारत्न, बगिया मनीराम, कानपुर)

(६) आपका ग्रन्थ पढ़कर जितनी प्रसन्नता हुई वह अकथनीय है। मैंने आर्यसमाजके ग्रन्थोंका अध्ययन किया, किन्तु 'वैदिक-सम्पत्ति' से भी अधिक खोजपूर्ण बातें आपकी 'आलोक'-ग्रन्थमालाके पुष्पोंमें देखनेमें मिल रही हैं। मेरी सभी शंकाओंका समा

धान इन पुष्पों से होता है। आपने गागरमें सागर को भर दिया है। मुझे आप-जैसे सनातनधर्मके प्रकाण्ड विद्वान्की आवश्यकता थी, भगवान्की कृपा से वह पूर्ण हुई। (श्रीमथुराप्रसाद चतुर्वेदी शिक्षक प्रा० शा० सोवत जि० गुना, म० प्र०)

(७) श्रीसनातनधर्म जगत् के प्राण......आप द्वारा रचित 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थके पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मन-मयूर पढ़कर नाच उठा। निःसन्देह आपकी लेखनीपर मां सरस्वती विराजमान हैं। यदि आपकी विद्वत्तासे आपको आद्य-स्वामी शंकराचार्यका अवतार कह दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। वर्तमानकालमें सनातनधर्म-रूपी नौकाके खिवैया श्रीपं० माधवाचार्यजी ही हैं; वह भी बूढ़े हो चुके। मैं तो यह समझ रहा था कि पं० माधवाचार्यके पश्चात् सनातनधर्मरूपी नौका डूब जायगी, परन्तु अब आप खिवैया हैं ही, कोई चिन्ता की बात नहीं। सभी स्वर्गारोही सनातनधर्मी शास्त्रार्थ-महारथी-विद्वानोंकी क्षतिपूर्ति करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं। अतः आप कटिबद्ध होकर शास्त्रार्थके मैदानमें उतर आवें। उनकी कमीको आपही पूरा कर सकते हैं।......वयं तु भवतां पादत्राणावलम्बकाः—'

नवीनचन्द्र जैनल।

इस प्रकार अयाचित सम्मतियां दो सौसे भी अधिक आई हुई हैं, यह सब इसी महाग्रन्थकी समझनी चाहिएं। अतः आजही इसके प्रकाशनार्थ पुष्कल द्रव्य-राशि देने दिलवाने का विचार कीजिए। पत्रव्यवहार तथा सहायता प्रेषणका संक्षिप्त पता :—

श्री दीनानाथशास्त्री सारस्वत, प्रिं०, संस्कृत-महाविद्यालय, दरीबाकलां देहली। अथवा, फर्स्ट बी-१९, लाजपत नगर नई देहली-१४।

वर्तमानकी सूचना

'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके १-२ पुष्प अत्यन्त लघुकाय छपे थे। हमें यह आशा नहीं थी कि—यह ग्रन्थमाला बहुत शीघ्र ही लोकप्रिय सिद्ध होगी। इन पुष्पों के बाद क्रम से ३य ४र्थ और ५म पुष्प बहुत बड़े प्रकाशित हुए। ५म पुष्पकी पृष्ठसंख्या तो ९३६ तक पहुँची। अब छठा पुष्प भी छप रहा है, इन पुष्पों में बहुत विषय आगये हैं; जिससे अनेक शङ्काओंका समाधान हो जाता है।

१-२ पुष्पोंके समाप्त हो जानेसे हम यह उसका परिवर्धित संस्करण निकालने जा रहे हैं। उनमें संक्षेपसे 'नमस्ते' विषय रखा गया था। अब हम उसमें 'नमस्ते' के विषयमें उपस्थित की जाने वाली बहुत सी शंकाओंका समाधान रखेंगे। पाठकगण इन सभी पुष्पोंको मनसे पढ़ें; जिससे उनकी सभी शंकाओंका समाधान होकर उनका मनोमयूर नृत्य कर उठेगा।

'नमस्ते' पर विचार

(१—क्या 'नमस्ते' एक पद है ?)

आज कल जहां-तहाँ 'नमस्ते' शब्द का बड़ा प्रचार दीखता है; इसमें आर्यसमाजकी तत्परता कही जाती है। और आर्यसमाज इसे स्वा. द. जीकी वैदिक देन समझता है। इसका प्रचार अशुद्ध वा अयुक्त है ? शुद्ध या युक्त ? इसे पृथक् निबन्धमें बताया जायगा; पर इसका प्रयोग एक-पदकी तरह किया जाता है।

केवल संस्कृतानभिज्ञ ही ऐसा नहीं करते, किन्तु आर्यसमाजी संस्कृत-विद्वान् भी इसका एक-पदकी तरह प्रयोग करते हैं। यह आग्रहवाद है। प्रत्युत कई महाशय तो "नमस्ते" को एक-पद सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हुए भी देखे गये हैं। वे उसमें लौकिक-शास्त्रों वा वैदिक-प्रमाणों को देनेकी चेष्टा भी करते रहते हैं। पर उनका यह प्रयत्न केवल आग्रहवाद ही है, शास्त्र वा वेदका इसमें अनुग्रह नहीं, यह यहां बताया जायगा।

क्या 'नमस्ते' निपात है ?

(१) पूर्वपक्ष—"सायणसे भी प्राचीन 'ऋग्वेद' के भाष्यकार श्री वेंकट-माधवसे निर्मित 'ऋग्वेदानुक्रमणिका'के प्रथम भागमें स्थित 'निपातानुक्रमणिका' में "नमस्ते" को निपात-

—स० धं० ३.

अव्यय बताया गया है। जैसे कि–

'इयन्त इति संख्यानं निपातानां न शक्यते। उपसर्गास्तु विज्ञेयाः क्रियायोगेषु विंशतिः'। २। निपाताः-खलु कामं वै पृथङ् नाच्छा, सचा पुनः। शश्वद्, नक्तं, दिवा, माकिर्यथेदिति सदं मुहुः।३। आदथाध, मिथू, शीभं वृथा, सञ्जोग्, ऋधक्, पृथक्। हिरुक् श्रौषट्, वषट्-मंक्षु, किल, हन्त, नहिर्न्वहः।४। अथो यदि नमस्तेऽमी चत्वारिंशद् उदाहृताः। आद्युदात्ताश्च सर्वेमी सन्त्यन्येपि च तादृशाः।५।

इन पद्योंमें 'नमस्ते' को निपात-अव्यय माना गया है। यदि ऐसा है तो इसके एक-पद होनेसे एकवचन, बहुवचन सर्वत्र इसका प्रयोग हो सकता है। इस 'नमस्ते' का अर्थ 'नमस्कार'-मात्र है, इसमें 'तुभ्यं' स्थानिक 'ते' नहीं; जिससे किसी बड़े की अप्रतिष्ठा सूचित हो। यह दो पद नहीं। इस पक्षमें वेदका अनुग्रह भी है। जैसे कि–'नमस्ते यातुधानेभ्यो, नमस्ते भेषजेभ्यः' (अथर्व० ६।१३।३) यहां पर बहुवचनमें 'नमस्ते' का आना उसे 'निपात' बताता है। अन्य मन्त्र यह है—'नमस्ते लाङ्गलेभ्यः' (अ. २।८।४) 'नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत' (अ. १३।४।४८) यहां पर भी वही बात है। तब इसका सर्वत्र, एक-वचन हो, चाहे आदरार्थ बहुवचन, प्रयोग किया जा सकता है, अपेक्षित सर्वनाम भिन्न जोड़ना पड़ेगा।

[यह प्रश्न मेरे पास श्री ब्रह्मदत्तजी–जिज्ञासु के 'विरजानन्द आश्रम लाहौर' में पढ़ रहे हुए मुझसे शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्ण श्रीमहेन्द्रप्रताप-शास्त्रीने भेजा था। इस पर शास्त्रीय विवेचना दी जाती है; पाठक ध्यानपूर्वक देखें।]

उत्तरपक्ष—यह बात ठीक नहीं। यहां वादीको भ्रम पड़ गया है, जो उक्त पद्योंमें अन्तिम एक पद 'नमस्ते' निपात मानता है।

'निपातानुक्रमणिका' के 'नमस्तेऽमी चत्वारिंशदुदाहृताः' इस पदपर याद रखना चाहिये कि–यहां अन्तिम निपात 'नमस्' है, "नमस्ते" नहीं। यहां 'ते' का सम्बन्ध 'अमी' से है 'ते अमी'; 'नमस्' से नहीं। नमस्के हलन्त होनेसे 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' इस न्यायसे सन्धि होनेसे ही 'नमस्ते' बन गया है, यह नमस्ते दो पदों की सन्धि है, एक-पद निपात नहीं। 'अथो यदि नमस्, तेऽमी चत्वारिंशद् उदाहृताः' यही वास्तविक पाठ है। आपाततः देखनेसे ही यहां नमस्ते निपात प्रतीत होता है, वास्तविक दृष्टि करनेपर वह भ्रम हट जाता है। इसी कारण श्रीमाधवभट्ट 'नमस्ते' (ऋ० ३।३३।८) मन्त्रमें 'नमः-ते' इस प्रकार भिन्न-भिन्न करके व्याख्यात करता है, अन्यथा वह इसे एक पदकी तरह व्याख्यात करता।

यहां पर 'ते' तो 'तद्' शब्दकी प्रथमाके बहुवचनका रूप है। वह 'अमी'का विशेषण है। अब योजना यह हुई 'अथो यदि नमस् ते अमी निपाताः चत्वारिंशद् उदाहृताः' अर्थात् खलुसे लेकर नमस् तक (ते अमी) वे प्रसिद्ध (निपाताः चत्वारिंशत्) चालीस निपात कहे गये हैं। ते-प्रसिद्धाः अमी–इमे 'खलु' इत्यत आरभ्य नमस्–पर्यन्तं निर्दिष्टाः निपाताः चत्वारिंशत्–संख्याका उदाहृताः।'

(ख) उक्त पद्योंमें 'ते अमी' इन दो सर्वनामोंका प्रयोग इस प्रकार है जैसे कि—इसी "निपातानुक्रमणिका" के निर्दिष्ट अन्तिम पद्यमें 'सर्वे-अमी इन दो सर्वनामोंका प्रयोग है। यदि 'तेऽमी' जैसा ही प्रयोग इष्ट हो तो "भगवद्गीता" में देखिये, वहां "त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च" (१।३३) इस पद्यमें "ते इमे" इन दो सर्वनामोंसे कौरवोंका निर्देश है। इसी प्रकार श्रीमाधवभट्टके पद्यमें 'ते अमी' इन दो सर्वनामोंसे निपातोंका निर्देश है। अन्वादेशमें "तस्मै ते नमः:" इस वाक्यमें दो सर्वनामोंका निर्देश व्याकरणमें प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार 'अर्थिनो वयममी समुपेमः' (५।७७) इस 'नैषधीयचरित' के पद्यमें 'वयममी' यहां पर भी दो सर्वनामोंका प्रयोग है।

यदि 'ते इमे' 'तस्मै ते' 'वयममी' इन उदाहरणोंसे 'तेऽमी' का सादृश्य न प्रतीत होता हो; तो हम वैसा ही उदाहरण बताते हैं—'तान्यमूनि सरित्-तटानि' (२।२३) इस 'उत्तररामचरित' के पद्यमें 'तानि—अमूनि' इस प्रकार तद् एवं अदस् इन दो सर्वनामोंका माधवभट्टके पद्यकी तरह बहुवचनमें एक साथ प्रयोग है। यदि यहां नपुंसकलिंग होनेसे 'तेऽमी' जैसा सादृश्य वादियोंको न प्रतीत होता हो; तो हम स्पष्टतया वैसा ही प्रमाण उपस्थित करते हैं; वादी अवधानसे देखें।—

"एके सत्पुरुषाः परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये, सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये। तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये, ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।" (नीतिशतक ७५) यहां पर 'तेऽमी' यह श्रीमाधवभट्टके श्लोकस्थ पदकी तरह स्पष्ट है। यहांपर 'ते' को कोई निपात नहीं मानता; किन्तु सभी तद्-शब्दका प्रथमा—बहुवचन ही मानते हैं। यदि इसमें वादी लौकिक—प्रमाणको आदर न देकर वैदिक प्रमाण चाहते हों तो उसे देखें—'त इमे समासते' (ऋ० १।१६४।३९।) यहां पर 'ते इमे' यह दो सर्वनाम हैं। यदि वादी 'तेऽमी जैसा ही वैदिक-निर्देश चाहें; तो वह यह है—'ते अमी' समासते' (अथर्व ९।१५। (१०) १८) यहां 'ते' निपात नहीं किन्तु प्रथमाका बहुवचन है, माधवभट्टके उद्धरणमें भी 'तेऽमी' वैसा ही है; निपात तो नमस् तक ही समाप्त हो गये हैं। इसका प्रमाण यही है कि वादी किसी भी व्याकरणको ढूंढें; किसी भी कोष या निघंटुको देखें; किसी भी 'निपातानुक्रमणिका' की देख-भाल करें, सर्वत्र उनको निपात वा अव्ययोंमें 'नमस्' ही मिलेगा, नमस्ते नहीं। इसीलिए ही स्वामी दयानन्दजीके 'वेदांगप्रकाश' के नवम भाग "अव्ययार्थके" १३ पृष्ठमें स्वामीजीने भी, जो 'नमस्ते' के आदि-प्रचारक माने जाते हैं—"नमस् नतावर्थे नमस्कुर्यान्मातरम्" इस प्रकार नमस्को ही निपात लिखा है, नमस्ते को निपातोंमें नहीं रखा।

(ग) इसका उत्कट प्रमाण यह है कि—वेदके पद-पाठों वा पदानुक्रमणिकाओंमें कहीं भी ढूंढें; किसी भी क्रम, घन,

जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ-पाठमें देखें, आपको 'नमस्ते; यह एक-पद नहीं मिलेगा। जिस मन्त्रमें नमस्ते हो; उसका पदपाठ देखने पर मालूम होगा कि वहां 'नमः। ते' इस प्रकार भिन्न-भिन्न पद ही रखा रहता है, 'नमस्ते' इस प्रकार इकट्ठा नहीं; क्योंकि ये दो ही पद हैं। पदपाठका इतना महत्त्व माना जाता है कि जिस मन्त्रका पदपाठ न हो; उस मन्त्रको 'खिल' समझा जाता है। जैसे कि श्रीसत्यव्रत साम-श्रमीने अपने 'निरुक्तालोचन' के 'देवराजादीनां कालप्रकरणम्' पृष्ठ २८६ में लिखा है-'वस्तुतोऽस्माभिः सर्वत्र तथैव अर्थः कल्पनीयः, यथा न विरुध्येत पदपाठः। आर्षं पदपाठमवमत्य अर्थ-करणं तु साहसमेव-इत्यत्र नास्ति वक्तव्यता।' अर्थात् पद-पाठका अनादर करना तो साहसमात्र है। 'चरण-व्यूहकी टीकामें कहा है—'यस्य मन्त्रस्य पदाभावः, तस्य खैलिकत्वं सिद्धम्' पद-पाठ रहित मन्त्र, 'खिल' है। यदि पदपाठको प्रमाण न माना जाय; तो 'न तस्य प्रतिमास्ति, का 'नतस्य (सर्वलोकनमस्कृतस्य तस्य परमात्मनः) प्रतिमा अस्ति,' इस प्रकार परमात्माकी प्रतिमा (लोकसदृशता) सिद्ध हो जाय; उसकी अप्रतिमता (अनन्य-साधारणता) नष्ट हो जाय।

इस प्रकार वेदकी पदानुक्रमणिकाओंमें भी देखना चाहिये। वहां 'नमस्ते' यह पद कहीं भी नहीं मिलता; किन्तु एक ही मन्त्रमें स्थित नमस्तेका नमस् शब्द 'न' वाले भाग में और उसीके साथका 'ते' 'त' के क्रममें मिलता है। देखिये आर्यसमाजी श्रीविश्वेश्वरानन्दजीकी बनाई हुई वेदसंहिताओं की पद-सूचियां।

(घ) इसके अतिरिक्त वेदमें 'नमस्ते' यदि यह निपात वा एक-पद होता, तो 'बहुवचन' में भी वेदमें 'नमस्ते' ही होता, पर वहां ऐसा नहीं; किन्तु 'नमो वः' है। जैसे कि—'नमो वः पितरः (वा० यजुर्वेद सं० २।३२) इत्यादि। द्विवचनमें भी 'नमो वां' (अ. ११।२।१) न आकर 'नमस्ते' आता; पर नहीं आता। यदि नमस्ते; यह अखण्ड ही पद होता; तो नमोस्तु ते, [महा-भारत भीष्मपर्व ५९।९६] 'नमोस्तु ते' [अथर्ववेद सं० ६।१३।१] इत्यादिमें 'नमः-ते' में 'अस्तु' आदिका व्यवधान क्यों होता? व्यवधानसे 'नमस्ते' दो पद सिद्ध होते हैं।

[प्रश्न करने वाले उक्त (महेन्द्रप्रताप) शास्त्रीको उक्त [श्रीमाधवभट्टका] प्रमाण उक्त विरजानन्दाश्रमके योग्य अध्यापक श्री युधिष्ठिरजी मीमांसकने बताया था। हमने जब उपर्युक्त उत्तर उस शास्त्रीको भेज दिया; और उसने श्री-मीमांसकजीको दिखलाया; तब उन्होंने मान लिया कि 'नमस्ते' यह निपात उक्त माधवभट्टके प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता। उक्त शास्त्रीका पत्र यह है-

श्री पूज्या विद्वद्वर्यगुरुवराः! सादरमभिवादये। श्री पं० युधिष्ठिरमीमांसकमहोदयैरेव 'नमस्ते' इति निपातः' इति स्वाध्यायकाले विज्ञातमासीत्। यदा ते अजमेर-नगरतः प्रत्या-गताः ग्रन्थमवलोक्य विचार्य च 'मदीया भ्रांतिर्नमस्ते न निपातः' इति सहर्षं स्वीकृतवन्तः। विनयावनतमस्तकः—महेन्द्र विद्यार्थी, श्री विरजानन्दाश्रम, लाहौर १०।६।३७।

फिर उसी शास्त्रीने १९३९ सन्में मुझसे मुलतानमें

मिलने पर कहा कि आपकी विवेचनासे पूर्व श्रीमीमांसकजीने आर्यसमाजोंके उत्सवोंमें भी नमस्तेके निपात होने की घोषणा कर दी थी; पर आपकी विवेचना देखकर उन्होंने नमस्तेके निपात होनेका प्रचार बन्द कर दिया है। यह महोदय विचारवान् थे; अतः 'बुद्धेः फलमनाग्रहः' उन्होंने असदाग्रह नहीं किया। अब तो वे स्वरके कारण भी 'नमस्ते' को दो पद मानते हैं, पर अब भी कई असदाग्रही हैं, जो 'नमस्ते' को एक-पद मानते हैं; उनकी समीक्षा आगे की जावेगी।

इससे उन लोगोंका भी भ्रम सिद्ध हो गया, जो लोग 'नमस्ते' को रूढ शब्द मानते हैं। संस्कृत-साहित्य एवं वैदिक-साहित्यमें यह कहीं भी एक-पदरूपमें रूढिपद नहीं आया। नहीं तो 'नम.' पद कहीं भी न होता। यदि अपनी इच्छासे 'नमस्ते' को रूढि माना जाये; तो उसमें वेद एवं शास्त्रोंका अनुग्रह न होनेसे उसमें अवैदिकता एवं निर्मूलता ही होगी। इसकी रूढिता बनाने वाले अविद्वान् अथवा विद्वान् भी, पर असदाग्रही कतिपय आर्यसमाजी हैं; उनका यह वैयक्तिकपक्ष साध्य ही है, सिद्ध नहीं।

'नमस्ते' में 'नमस्-ते' यह दो पद हैं। यह हमने सिद्ध कर दिया। इसमें 'ते' युष्मद्' शब्दके चतुर्थीके एकवचनान्त 'तुभ्यं' के स्थानपर विकल्पसे होता है। इसका प्रयोग वहां करना चाहिये, जहां बड़ेको युष्मद् शब्दकी सभी विभक्तियोंके एकवचनका प्रयोग संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं में दिया जा सके; पर आजकल न तो किसी बड़े को त्वं,

त्वम्, तुभ्यं, तव आदि लिखा जाता है, प्रत्युत इससे बड़ेकी अप्रतिष्ठा मानी जाती है; न हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओंमें बड़े को तू-तुझे आदि लिखा जाता है; न अंग्रेजीमें Thou, Thy, Thine, आदि युष्मद्के एकवचनका प्रयोग दिया जाता है; तब उसे 'नमस्ते' का प्रयोग भी नहीं दिया जा सकता।

हमने कई आर्यसमाजियोंसे पूछा कि आप अपने गुरुजी को 'आपका पत्र मिला' की संस्कृत क्या लिखेंगे ? उत्तर मिलता था कि—'भवतां पत्रं प्राप्तम्'। हम पूछते थे—'तव पत्रं प्राप्तम्' क्यों न लिखोगे ? उत्तर मिलता था कि—क्या हम उनकी ऐसा लिखकर अप्रतिष्ठा करें। हम कहते थे कि फिर 'नमस्ते' लिखनेसे उनकी अप्रतिष्ठा न होगी ? उसके उत्तरमें चुप्पी ही प्राप्त होती थी।

अन्य प्रश्न यह है कि—आदरार्थ बहुवचन देना भी वेदादि शास्त्रके अनुकूल है (यह अग्रिम निबन्धमें बताया जायगा;) तब उसमें भी 'नमस्ते' लिखा जावेगा; या 'नमो वः' ? यदि 'नमस्ते' लिखा जावेगा तो 'नमो वः पितरः' (यजु० २।३२) यह वेद-मन्त्र अशुद्ध हो जायगा। अथवा 'मान्याः ! 'नमस्ते' यह लिखना ही वेदविरुद्ध तथा व्याकरणविरुद्ध हो जायगा। यदि बहुवचनमें 'नमो वः' लिखा जायगा तो 'नमस्ते' ही सर्वत्र लिखना वैदिक है, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता"; ऐसी आर्यसमाजियोंकी प्रतिज्ञा टूट जानेसे 'नमस्ते' का निराकरण हो जायगा।

यह भी इसमें विचारणीय है कि अभिवादनार्थक 'नमः' पद है वा 'ते' भी ? यदि 'नमः' ही है तो उस 'नमः' का प्रयोग तो अभिवादनार्थमें ठीक ही है; पर उसमें 'ते' लगाना अनिवार्य न हुआ। अपेक्षित सर्वनाम 'श्रीमते, भवते, भवद्भ्यः' जो इष्ट होगा उसका प्रयोग हो जायगा; क्योंकि-युष्मद्के एकवचनका प्रयोग आजकल किसी भी भाषामें प्रयुक्त नहीं। 'नमस्ते' में दो पद होनेसे 'द्वित्वादिकं सर्वत्र अनित्यमेव' इसका प्रयोग भी अनित्य हुआ; नित्य नहीं।

अन्य यह बात याद रखनी चाहिये कि-'नमः' का प्रयोग आयु वा योग्यता में बड़े के लिए किया जाता है जैसेकि-'यजाम (पूजयामः) इद् नमसा वृद्धम्'-(ऋ३।३२।७) छोटेके लिए नहीं; क्योंकि 'नमः' वन्दनावाचक है, आशीर्वादवाचक नहीं। जैसे कि-'वन्दध्यै नमोभिः (ऋ० १।२७।१) 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' यह धातु अभिवादनार्थक है। 'नमसा विधेम' (ऋ० १।११४।२) 'नमसा सपर्यन्ति' (१।६४।१२) छोटेकी वन्दना वा पूजा नहीं की जाती। उसे आशीष दी जाती है। छोटेको 'ते' तो कहा जा सकता है, पर: 'नमः' नहीं कहा जा सकता। 'नमः' का प्रयोग समानके लिए भी नहीं होता, किन्तु योग्यतासे बड़ेके लिए होता है; यह अन्य बात है-कोई दूसरे समानको भी अपनेसे योग्यतामें बड़ा समझ कर 'नमः' कह दे। पर 'ते' का प्रयोग नहीं होता। फलतः 'नमस्ते' का प्रयोग किसी भी दशामें ठीक नहीं। इसपर जो कोई आक्षेप किये जाते हैं, वा स्वपक्ष-पुष्टिके लिए कई

वेदादिके प्रमाण दिये जाते हैं, इस पर विचार अग्रिम निबन्धों में होगा।

(२) क्या बहुवचनमें 'नमस्ते' होता है ?

गत निबन्धमें "नमस्ते" एक पद है, इस मतका निराकरण किया गया है; पर इस विषयमें वादिगण कई वेद-मन्त्र देते हैं; वे यह हैं—

(२) पूर्वपक्ष (क) 'नमस्ते यातुधानेभ्यो, नमस्ते भेषजेभ्यः' (अथर्व० ६।१३।३) यहां पर बहुवचनमें 'नमस्ते' का प्रयोग उसे एकपद वा निपात बताता है। (ख) अन्य मन्त्र यह है 'नमस्ते लाङ्गलेभ्यः' (अ० २।८।४) (ग) 'नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत' (१३।४।४८); यहां पर भी वही बात है। इससे स्पष्ट है कि 'नमस्ते' एक पद वा निपात है।"

[यह प्रश्न मेरे आर्यसमाजी छात्र श्रीमहेन्द्रप्रताप शास्त्री ने मेरे पास भेजा था, यह बताया जा चुका है। कदाचित् ये मन्त्र श्रीयुधिष्ठिरजी मीमांसकने उस छात्रको बताए हों। मुलतानसे इधर आने पर मुझे 'नमस्ते-प्रदीप' नामक ट्रैक्ट भी मिला है, इसके निर्माता गुरुकुल-घरौण्डा (करनाल) के आचार्य स्वामी रामेश्वरानन्दजी हैं। वे अपने निबन्धके १९वें पृष्ठ पर प्रश्नोत्तर लिखते हैं-

"प्रश्न-नमस्ते एक पुरुष के लिए किया जा सकता है; किन्तु बहुत मनुष्योंके लिये नमस्ते करना भूल है ? उत्तर—वेदमन्त्रों में अनेक स्थलोंपर बहुवचनके लिए 'नमस्ते' यह

शब्द आता है ? यथा (क) 'नमस्ते यातुधानेभ्यः, 'नमस्ते भेषजेभ्यः'। (ख) 'नमस्तो लाङ्गलेभ्यः (पूर्वोक्त मन्त्र) (ग) 'नमस्ते घोषिणीभ्यः नमस्तो केशिनीभ्यः नमस्तो देवसेनाभ्यः (अथर्व० (११।२।३१) (घ) 'नमस्तो अस्तु रुद्ररूपेभ्यः' (नारायणोपनिषद् १६।१९) इत्यादि अनेक प्रमाण उपस्थित किए जाते हैं। (ङ) नमस्तोमें 'तुभ्यं' का 'ते' नहीं; किन्तु 'नमस्तो' एक पद है; इसमें प्रमाण यह है कि नमस्तोके साथ 'तुभ्यं' भी आता है; जैसे कि-'तुभ्यं नमस्तो' (अथर्व० सं० ११३।३) [यदि वादी के उक्त प्रमाण 'सिद्ध' हो जावें; तब निस्सन्देह 'नमस्तो' एकपद सिद्ध हो सकता है; पर खेद है कि वादी ने या तो स्वयं ही धोखा खाया है; या साधारण-जनताको धोखा दिया है, यह विद्वान्-पाठक स्वयं जान लेंगे। अब इन मन्त्रोंपर क्रमशः विचार किया जाता है।]

(उत्तरपक्ष) (क) इन आक्षिप्त-मन्त्रोंमें प्रथम सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है—'नमस्तो यातुधानेभ्यो नमस्तो भेषजेभ्यः। नमस्तो मृत्यो ! मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः इदं नमः' (अथर्व०सं० ६।१३।३) पाठकगण पहले यह याद रखें कि इन मन्त्रोंमें एकवचनमें ही 'नमस्ते' आया है; बहुवचनमें नहीं। बहुवचनमें सदा वेदमें "नमो वः" आता है।

उक्त मन्त्र-बल्कि सूक्तमें विशेष्य तथा सम्बोध्यमान 'मृत्यु' ही है; वह एक-वचनान्त है। इसी कारण इस मन्त्रसे पूर्वके मन्त्र में "मृत्यो ! नमोस्तु ते" (६।१३।१।) इस तथा "सुमत्यै मृत्यो ! ते नमः" (६।१३।२) इस मन्त्रमें उस मृत्युके लिए

एकवचन दिया गया है। इस प्रकार प्रकृत मन्त्रमें भी जान लेना चाहिये। हे मृत्यो ! 'ते यातुधानेभ्यो नमः' यह अन्वय है। 'यहां 'ते' का "तुभ्यम्" (तेरे लिए) यह अर्थ नहीं; न ही 'नमस्ते' यहां एक पद है, किन्तु यहाँ 'ते' का 'तव' (तेरा) यह अर्थ है, 'ते' पद 'यातुधानेभ्यः', आदि का विशेषण नहीं, किन्तु मृत्युका सम्बन्धज्ञापक षष्ठयन्त पद है। 'नमः' के योगमें चतुर्थी 'यातुधान' आदिको हुई है।

अब उक्त मन्त्रका यह अर्थ हुआ कि-ऐ मृत्यु ! तेरे यातुधानोंको 'नमः' हो, तेरी ओषधियोंको नमस्कार हो, तेरे मूलोंको नमस्कार हो, तेरे ब्राह्मणोंको (जो शाप देकर मारते हैं) नमस्कार हो।' यहां पर 'ते' यह एकवचन और षष्ठयन्त सर्वनाम है। जब किसीको सम्बोधन दिया जाता है; तो उसे प्रत्यक्षके समान बुलाना पड़ता है; तब 'वहां आभिमुख्यके लिये युष्मद् आदि सर्वनामका देना आवश्यक हुआ करता है; यही बात यहां पर भी घटा लेनी चाहिये।

उक्त मन्त्रमें 'ते' यह एक-वचन है और षष्ठयन्त है-यह केवल हमारी कल्पना नहीं; किन्तु यहां सर्ववेद-भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने भी ऐसा ही अर्थ किया है। आज-कलके आर्यसमाजी भाष्यकार श्रीराजाराम शास्त्री, श्रीपाददामोदर सातवलेकर, श्रीक्षेमकरण त्रिवेदी तथा वेदके चार संहिताओंके भाष्यकार श्री जयदेव-विद्यालंकार आदिने भी यहां 'ते' यातुधानोंको नमस्कार, इस प्रकार यहांके 'ते'का 'तेरा, य' अर्थ किया है; तब यहां बहुवचनमें नमस्तेका प्रयोग सिद्ध

हुआ।

'नमः' के योगमें 'चतुर्थी' हुआ करती है, परन्तु 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' यहां 'तुभ्यं' अर्थ तो है नहीं; किन्तु 'तव' यह अर्थ है। इसी कारण 'ते', का 'नमः', से सम्बन्ध नहीं है, किन्तु उसका सम्बोध्यमान मृत्युसे सम्बन्ध है, इसीलिए 'ते', में षष्ठी है। और नमः का योग 'यातुधानेभ्यः', से है; अतः 'यातुधानेभ्यः' में चतुर्थी हुई है। तब नमस्तेका बहुवचन से कोई सम्बन्ध सिद्ध न हुआ। यदि इस सूक्त के उक्त मन्त्रमें 'नमस्ते' यह अखण्ड पद वा अव्यय होता, तो इस सूक्त के प्रथम-मन्त्रमें 'मृत्यो नमोस्तु ते' [अ. ६।१३।१] यहां नमः-ते म 'अस्तु', का व्यवधान न होता। इससे वेदका भी 'नमः' पदमें अभिनिवेश सिद्ध होता है, 'नमस्ते' में नहीं। तभी तो वेदमें 'नम-उक्ति' [ऋ. १।१८९।१, ३।१४।२, ५।४३।६] नम-उक्तिभिः [ऋ. ८।४।६] इस प्रकार 'नमः' की उक्ति तो आई है, 'नमस्ते' की उक्ति कहीं भी नहीं आई। इससे वेदका अभिनिवेश 'नमः' की उक्ति में ही सिद्ध हुआ। इसीलिए 'नमो भरन्तः' [ऋ. १।१।७] तो आया है 'नमस्ते भरन्तः' नहीं आया।

(ख) इस प्रकार 'नमस्ते लांगलेभ्यः' [अ० २।८।४] इस मन्त्रमें भी समझ लेना चाहिये। यहां भी 'नमस्ते' दो पद हैं, एक-पद नहीं। इससे पूर्वके मन्त्रमें 'बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते' [२।८।३] यहांपर 'ते' एकवचनमें प्रयुक्त हुआ है रोगी के लिए। इसी प्रकार 'नमस्ते लांगलेभ्यः' में भी 'ते' एक-

वचनमें है। यह रोगीके लिएहै कि तेरे लिए अर्थात् तेरे रोग की शान्त्यर्थ लाङ्गलों [हलों] को नमस्कार हो। फलतः यहां भी 'ते' का लांगलोंसे कोई योग नहीं। आर्यसमाजी भाष्यकार श्रीजयदेव, श्री सातवलेकर, क्षेमकरण आदियोंने भी यहां 'तेरे हलोंके लिये सत्कार' अथवा 'हलोंके लिये तुझे नमस्कार इत्यादि रूपसे एकवचनका अर्थ करके उक्त मन्त्रमें नमस्तेमें 'नमस्' और 'ते' दो पद मान लिये हैं। इससे भी हमारे पक्ष की सिद्धि हुई।

(ग) इसी प्रकार 'नमस्ते अस्तु पश्यत' [अ० १३।४।४८] यहां पर भी बहुवचन में नमस्ते नहीं है। इस सूक्तका देवता सूर्य है वह एकवचनान्त है। 'पश्यत' यहां यह बहुवचनान्त क्रिया नहीं, किन्तु एकवचनान्त सम्बोधन है, जिसका अर्थ दर्शनीय है। इसलिए इस मन्त्रके आगे 'पश्य मा पश्यत'! यहां यह एकवचनान्त क्रिया स्पष्ट है। तब सूर्यके एकवचनान्त होने से 'ते' यह संगत ही है। जब एतदादि-स्थलमें बहुवचन में नमस्ते नहीं, यह सिद्ध हो गया; तब दो पद होनेसे यह परिवर्तनीय सिद्ध हुआ। तब 'नमस्ते' ही एकमात्र कहना यह आग्रहके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

[यह समाधान हमने महेन्द्रप्रताप शास्त्रीको भेज दिया था; सोपपत्तिक होने से उसको भी रुचिकर प्रतीत हुआ, श्री-युधिष्ठिर जी मीमांसकको भी। ये सत्यके ग्रहणकर्ता थे; असत्यके आग्रही नहीं थे। अतएव इसमें ऊहापोहकी अधिक आवश्यकता नहीं रही। आशा है 'आलोक' के विज्ञ-पाठकोंने

भी यह सब समझ लिया होगा ।—]

अब गुरुकुल—घरौण्डाके आचार्य श्री रामेश्वरानन्दजीके दिये मन्त्रका समाधान दिया जाता है। उनका भी आदिम दो मन्त्रों में अधिक अभिनिवेश था, उनका तथा उन पर की हुई आपत्तियोंका समाधान कुछ आगे किया जायगा, कुछ यहां पर कर दिया गया कि—यहां बहुवचनमें तथा एकपद-रूपमें नमस्तेका प्रयोग नहीं है किन्तु एक वचन तथा दो पदोंके रूपमें है।

अब उनसे दिये गये मन्त्रों का समाधान दिया जाता है। ३ (पूर्वपक्ष) एक मन्त्र उन्होंने यह भी दिया है—(क) नमस्ते घोषणीभ्यः नमस्ते देवसेनाभ्यः' (अ. १०।२।३) (ख) अन्य प्रमाण हैं—'नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः' नारायणोपनिषत् (१६।१६) यहांपर भी वे बहुवचनमें नमस्ते का प्रयोग दिखाकर उसे एकपद वा अव्यय सिद्ध करते हैं; पर वह भी ठीक नहीं। पूर्वापर प्रकरण यदि देखा न जाय; तो इस प्रकारके बहुतसे भ्रम साधारण ज्ञान वालोंको वञ्चित कर देते हैं, यह बात अनुभवी विद्वान् जान सकते हैं।

उत्तर-पक्ष—

(क) 'नमस्ते घोषिणीभ्यः' इस मन्त्रके सूक्तमें महादेवका भव, शर्व, रुद्र इन शब्दोंसे वर्णन तथा सम्बोधन किया गया है। 'भव' इस मन्त्र से पूर्वके एक-दो मन्त्र देख लेने चाहियें। 'भव ! राजन् ! यजमानाय मृड' (अ० ११।२।२८) यहांपर 'भव' शब्दसे महादेवको सम्बोधित किया गया है। अब इससे

अग्रिम मन्त्र देखिये—'स्वां तन्वं रुद्र ! मा रीरिषो नः' (११।२।२९) यहांपर महादेवको रुद्र शब्द से सम्बोधित किया गया है। अब इससे अग्रिम मन्त्रको देखना चाहिये, वह यह है—'रुद्रस्य ऐलबकारेभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः (अ. ११।२।३०) यहां रुद्रके बड़े मुख वाले कुत्तोंको नमस्कार किया गया है। अब इससे अग्रिम मन्त्र वही है—'नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः। नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः। नमस्ते देव ! सेनाभ्यः' [११।२।३१] इस मन्त्रमें रुद्र की विविध सेनाओंको नमस्कार किया गया है। रुद्र इन मन्त्रोंमें एक वचन है, यह विज्ञ पाठकगण देख ही चुके हैं। अब इस मन्त्र में उसी रुद्र को 'देव' शब्द से सम्बोधन दिया गया है सम्बोधनवाले को प्रत्यक्षके समान माना जाता है और उसे युष्मद् आदि सर्वनामसे परामृष्ट किया जाता है। जैसे कि निरुक्तकारने इसका संकेत दिया है—'अथ प्रत्यक्षकृता मध्यम-पुरुषयोगाः त्वमिति च एतेन सर्वनाम्ना' [७।२।२] अर्थात् प्रत्यक्षकृत ऋचाओं में 'त्वं' इस सर्वनामका प्रयोग होता है और मध्यम पुरुषका। 'त्वं' यह युष्मद्का प्रथमान्त होता है। उसमें तो मध्यम-पुरुष होता है; पर युष्मद्को चतुर्थी आदि विभक्ति हो, तो मध्यम-पुरुषकी क्रिया तो नहीं होगी; पर उसकी प्रत्यक्षता अक्षत होगी। तात्पर्य यह है कि सम्बो-ध्यमानको अभिमुख (मुखातिब) करनेके लिए उसे युष्मद् शब्दकी भिन्न-भिन्न विभक्तियोंको प्रयुक्त किया जाता है।

उक्त मन्त्रमें रुद्रकी सेनाओंका वर्णन है। सायणाचार्य भी मानते हैं कि-'अतः परं महादेवरुद्रस्य परिवारा नमस्कारेण प्रार्थ्यन्ते।' उसी रुद्रको इस मन्त्रमें 'देव' इस एकवचनान्त शब्दसे संबोधित किया गया है। वह रुद्रदेव है एकवचनान्त, उसीको फिर युष्मद्-शब्दके षष्ठचन्त 'ते' (तव) से परामृष्ट करके उसके सम्बन्ध वाली सेनाओंको नमस्कार किया गया है। अब उक्त मन्त्रका अर्थ यह हुआ कि-देव! रुद्र! ते-तव घोषिणीभ्यः-शब्दकर्त्रीभ्यः, केशिनीभ्यः-केशवतीभ्यः, नमस्कृताभ्यः, सेनाभ्यः साधारणसेनाभ्यश्च नमः अर्थात् ऐ रुद्र! तेरी ललकारनेवाली तथा साधारण सेनाओंको नमस्कार हो।

फलतः उक्त मन्त्रमें 'नमः-ते' इसमें का 'ते' न तो बहुवचनमें है, न ही 'नमः' के साथ मिलकर एक पद है, न यहां 'ते' का अर्थ 'तुभ्यम्' है; किन्तु 'ते' का यहां 'तव' तेरी-अर्थ है। इसका 'नमः' से योग न होकर देव-रुद्र से सम्बन्ध है, अतः सम्बन्धमें उसमें षष्ठी है; और 'नमः' का योग 'घोषिणीभ्यः' आदिसे है; अतः उनमें चतुर्थी हुई है। अब यह अर्थ प्रतिफलित हुआ-हे देव! ते-तव घोषणीभ्यः केशिनीभ्यः सर्वजनैर्नमस्कृताभ्यश्च सेनाभ्यो नमोस्तु।' तब यहां बहुवचनमें नमस्ते सिद्ध नहीं; प्रत्युत यहां तो 'नमः' शब्द सिद्ध हुआ। 'ते' षष्ठचन्त होनेसे उसका 'नमः' से कोई सम्बन्ध ही नहीं।

(ख) इसी प्रकार 'नमस्ते रुद्र रूपेभ्यः' (नारा. १६-१९) में भी यही बात है। यहां हे रुद्र! ते-तव रूपेभ्यो नमः; हे रुद्र! तेरे रूपोंको नमस्कार हो-यही अर्थ है। अथवा नारायणोपनिषत्की १६वीं कण्डिकामें 'शर्वाय नमः, शिवाय नमः शिवलिंगाय नमः' और ८वीं कण्डिकामें 'रुद्राय नमः' इस प्रकार महादेवका प्रकरण चालू है; तब 'नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः' का अर्थ हुआ कि—हे महादेव! "ते-तव रुद्ररूपेभ्यो नमः' तेरे रुद्ररूपों को नमस्कार हो। यहां पर भी बहुवचनमें 'नमस्ते' न होकर 'नमः' ही सिद्ध हुआ। 'ते' तो षष्ठचन्त होनेसे 'नमः' से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। अतः स्पष्ट है कि वेदादि-शास्त्रोंमें 'नमस्ते' कहीं भी एकपद नहीं माना गया। और इन प्रमाणों में बहुवचनमें नमस्ते न होकर एकवचनमें है। अतः ये दो पद हैं। दो पद होनेसे 'नमस्ते' (नमः-ते) यह परिवर्तनीय हुआ।

इसी "नमस्ते" को एक पद सिद्ध करनेके लिए श्रीरामेश्वरानन्दजी ने एक वेदमंत्र अपने 'नमस्ते-प्रदीप' के १२ पृष्ठमें दिया है, वह यह है:-४ (पूर्व-पक्ष) 'तुभ्यं नमस्ते' (१।१३।३) इस मन्त्रके देनेमें तात्पर्य यह है कि यदि 'नमस्ते' ये दो पद होते तो इसमेंका 'ते' शब्द 'तुभ्यं' का आदेश होता। फिर जहां 'नमस्ते' ये दो पद इष्ट होंगे; वहां 'नमस्ते' के साथ 'तुभ्यं' कभी आ ही नहीं सकता। पर जब उक्त मन्त्रमें 'तुभ्यं नमस्ते' आता है, इससे स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि 'नमस्ते' एक पद है। तभी उन्होंने इसका अर्थ अपने ट्रैक्टमें लिखा है 'तुभ्यं नमस्ते' (अ. १।१३।३) "आपका नमस्ते इस आदर वाचक शब्दसे सत्कार हो।"

(उत्तर-पक्ष) 'तुभ्यं नमस्ते' इसी मन्त्रांशको जो वादी ने अपने पक्ष 'नमस्ते' के एक-पदत्वकी सिद्धिमें दिया है;

उसका अनन्वित अर्थ करके तो वादी ने वेदपर आक्रमण कर दिया है। हम यह मन्त्र सम्पूर्ण देते हैं; उससे उनका पक्ष सर्वथा निरस्त हो जायगा। वह मन्त्र यह है—

'प्रवतोनपाद् ! नम एवास्तु तुभ्यं (पहला पाद), नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः। (दूसरा पाद)। विद्मते धाम परमं गुहा यत्। (तीसरा पाद) समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः।' [चौथा पाद] (अ. १।१३।३]

यहां 'तुभ्यं' शब्द पहले पादके अन्तमें है; इसका सम्बन्ध भी उसी पहिले पादके 'नम एवास्तु' से है, दूसरे पादके 'नमस्ते' से कोई सम्बन्ध नहीं। अतएव इस पादका अर्थ है कि हे प्रवतोनपात् ! तुझे नमः ही हो; इससे वेदको 'नमः' कहना ही इष्ट होता है, नमस्ते नहीं। तभी 'एव' शब्द दिया गया है। अग्रिम पादमें भी-'नमः' व 'ते' ये दो पद हैं। यहां 'ते' तव-[तेरे] वाचक है, अर्थ यह हुआ कि प्रवतोनपात्! हम [ते] तेरे [हेतये] शस्त्र तथा तेरे (तपुषे) तेजको [नमः कृण्मः] नमस्कार करते हैं।

अब जब 'तुभ्यं' का सम्बन्ध नमस्तेसे है ही नहीं; किन्तु 'नम एवास्तु' से है; तब नमस्तेकी एक-पदता कट गई। 'नमस्ते हेतये' में 'ते' प्रवतोनपात्का संबन्धवाचक षष्ठयन्त एक-पद है 'ते [तव] नमः' का योग हेति (शस्त्र) तथा तपुष् (तेज) से है; अतः इन दोनोंमें चतुर्थी है। यहां 'ते' का अर्थ तेरा होनेसे शेष 'नमः; ही बच गया। अब 'नमस्ते' एक-पद कहां रहा? 'नमःस्वस्तिस्वाहा [२।३।१६] यह

पाणिनिका सूत्र 'नमः' के योगमें चतुर्थी बताता है, 'नमस्ते' के योगमें नहीं। इधर अव्यय वा निपातोंकी अनुक्रमणिकाओंमें सर्वत्र 'नमस्' ही आता है; 'नमस्ते' कहीं नहीं। अतः 'नमस्ते' का एक पद होना शशशृंग ही है। तब इधर-उधरके पद छिपाकर 'तुभ्यं नमस्ते' इतना ही पाठ अपने असत्य पक्षको सिद्ध करनेके लिए दे देना एक अक्षम्य अपराध ही है।

इससे पूर्व जो कि वादी ने 'नमस्ते प्रवतोनपात् [अ० १।१३।२] हे ज्ञानवान् राजन् ! आपको 'नमस्ते' यह आदर-वाचक शब्द हो' [पृ. १२] यह अर्थ करके 'नमस्ते'को एकपद सिद्ध करने का प्रयत्न किया है; यह भी व्यर्थ है। यहाँ पर प्रष्टव्य यह है कि इस मन्त्रके अर्थ में वादीने 'आपको नमस्ते हो' यहां 'आपको' यह उक्त मन्त्रांशके किस पदके अर्थमें दिया है ? यदि 'नमः—'ते' में 'ते' का यह अर्थ दिया है जो कि वास्त-विकता है; तब तो 'नमः' 'ते' ये दो पद हो गये; और वादी का पक्ष खण्डित हो गया। यदि 'नमस्ते' यह उनके मतमें एक-पद है; तो 'आपको' यह शब्द उन्होंने वेद-मन्त्रार्थमें प्रक्षिप्त कैसे कर दिया; जब कि वह मूल—मन्त्रमें नहीं है ? तब वेदमें न्यूनता भी सिद्ध हो गई; क्योंकि 'प्रवतोनपात् !' यह सम्बुद्धि-पद है। इसमें आभिमुख्य होनेसे उसका प्रतिपादक युष्मद् आदि सर्व-नाम अवश्य अपेक्षित होता है, और वह इसमें 'ते' के रूपमें है-भी कि 'हे प्रवतोनपात् ! तुझे नमस्कार हो।' तब नमस्तेकी एक-पदता कट गई। 'आपको नमस्ते यह आदर वाचक शब्द हो' ये शब्द वादीने वेद-मन्त्रके अर्थमें कैसे प्रक्षिप्त कर डाले ? यदि

"नमस्ते यह शब्द" ऐसा अर्थ वेदको विवक्षित होता तो वह 'नमस्ते इति शब्दो भवतेस्तु' ऐसा देता। कमसे कम उसके एक-पदत्वका निर्देशक 'इति' शब्द अवश्य होता। न होनेसे 'नमस्ते' ये दो पद सिद्ध हो रहे हैं। सभी प्राचीन-अर्वाचीन भाष्यकारोंने हमारे ही अनुकूल अर्थ दिया है, अतः वादीका यह अर्थ अवैदिक सिद्ध हो गया।

५ (पूर्वपक्ष) (क) 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' में 'ते—तव यातुधानेभ्यः नमः' आप यह क्यों अन्वय करते हैं 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' यह अन्वय क्यों नहीं करते ? (ख) आप कहते हैं यहां "ते" यह सम्बन्ध षष्ठी-वाचक शब्द है तो फिर 'नमः स्वस्ति-स्वाहा' यह पाणिनि-सूत्र कहां गया ? क्या 'नमः' के योगमें कभी षष्ठी भी होती है ? ऐसा सूत्र पाणिनिके व्याकरणमें तो नहीं है। (ग) नमो देवेभ्यः' तो होता है, 'देवानां नमः' नहीं होता। 'अग्नये स्वाहा' तो होता है; 'अग्नेः स्वाहा' इस प्रकार षष्ठी नहीं होती। तब 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' मन्त्रमें नमः के साथ संबन्धित 'ते' शब्द षष्ठ्यन्त कैसे हो सकता है ? अतः स्पष्ट है कि यह 'नमस्ते' एक-पद ही है; दो पद नहीं।" (पत्र-व्यवहारमें स्वा. रामे. जी)

(उत्तरपक्ष) व्याकरणके विद्वान् वादीकी इस मीमांसाको देखकर हँसेंगे कि जिसे वेदांग-व्याकरणका ही ज्ञान नहीं; वह वेदसे नमस्ते' यह एकपद सिद्ध करनेका साहस करता है ? अब हम वादी रामेश्वरस्वामीकी इस आपत्तिका समाधान करते हैं; विद्वान् पाठक इस ओर ध्यान देंगे।

(क) 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' (अ. ६।१३।३) इसमें जो हमने 'ते' का षष्ठ्यन्त अर्थ किया है, उसका कारण हम पीछे कह चुके हैं कि—इस मन्त्रमें 'मृत्यो !' यह एकवचनांत सम्बोधन है। आभिमुख्यमें सम्बोधन होनेपर सम्बोध्यमानको किसी युष्मद् आदि सर्वनामसे परामृष्ट करना पड़ता है। तो यहां वह सर्वनाम 'ते' है, वह मृत्युका सम्बन्धवाचक होनेसे षष्ठ्यन्त है। वादीके मतमें तो 'नमस्ते' एकपद होने पर आकांक्षित सर्वनामके अभाव होनेसे 'न्यून-पद' दोष उपस्थित होता है। इस न्यूनताको दूर करनेके लिए उन्होंने अपने 'प्रदीप' में "मृत्यो !" इस सम्बुद्धि—पदका षष्ठ्यन्त अर्थ अपनी कपोल-कल्पनासे किया है।

(ख) जो कि कहा जाता है कि—'नमस्ते यातुधानेभ्यः' में "ते" शब्द यदि सम्बन्धमें षष्ठीवाचक है, तो "नमः स्वस्ति" सूत्र कहां गया ? 'नमः के योगमें षष्ठी-विधायक सूत्र पाणिनीय-व्याकरणमें तो नहीं है—यह लिखकर स्वा०रामे०जीने व्याकरण-विषयक अपना अज्ञान दिखलाया है।

'नमः' के योगमें भी 'कर्मादीनां सम्बन्धमात्र-विवक्षायां षष्ठ्येव' इस वचनसे जिसे स्वा. द. जीने महाभाष्यके अनुसार अपने कारकीयमें (कर्मादीनामविवक्षा शेषः' (पा. २।३।५०) इस प्रकार लिखा है—षष्ठी हो सकती है जैसेकि—'मृच्छकटिक' के नवम अङ्कमें 'युष्माकमपि सुखं ददामि' शकारके इस वाक्यमें चतुर्थीके अवसरमें भी षष्ठी आई है, इस प्रकार 'नमो रघुकुलदेवतानाम्' यहां, उत्तररामचरितके

प्रथमांकके अन्तिम-वाक्यमें 'नमः' के योगमें षष्ठी भी देखी गई है। पर हम वह उत्तर न देकर वास्तविक उत्तर देते हैं। वादी ध्यानसे देखें। 'नमः स्वस्ति...वषड्योगाच्च' (पा. २।३।१६) यह पाणिनिका सूत्र है। इसमें 'योगात्' का अर्थ है संयोग-संबंध। तब जब 'नमः' इत्यादियोंके साथ शब्दका योग हो, तब चतुर्थी होती है, यदि योग न हो तो वहां निकटता होने पर भी चतुर्थी नहीं होती।

फलतः 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' इस मन्त्रमें' 'नमः' शब्दका योग 'यातुधानेभ्यः' के साथ है, इस कारण उसमें चतुर्थी हो ही गई। तो 'नमः स्वस्ति' यह सूत्र कहां गया—यह आक्षेप परिहृत हो गया। चतुर्थी तो यहां पर प्रत्यक्ष ही है। 'ते' का संबंध तो 'यातुधानेभ्यः' से है। तो यहां 'षष्ठी शेषे' [पा. २।३ ५०] इस सूत्रसे षष्ठी हो गई।

(ग) शेष यह प्रश्न है—'ते' (तव) यातुधानेभ्यो नमः' ऐसा अन्वय होने पर 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' इस मन्त्रमें 'नमः' और यातुधानेभ्यः'का आपसमें व्यवधान हो जाता है, तब योग (सम्बन्ध) कैसे हो जाता है? इस पर उत्तर यह है कि— 'यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः। अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम् [न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य १।२।१६] अर्थात् जिससे जिसका सम्बन्ध हुआ करता है, वह व्यवधान होने पर भी हो जाता है, जिससे जिसका अर्थ-सम्बन्ध नहीं होता, उसकी निकटतासे भी सम्बन्ध नहीं हुआ करता है। यही बात 'मीमांसादर्शन'के शावर-भाष्यमें भी कही है—

'असत्यां हि आकाङ्क्षायां सन्निधानमकारणं भवति। यथा-भार्या-राज्ञः पुरुषो-देवदत्तस्य' (६।४।२३) इस मीमांसाके वाक्य में 'राज्ञः पुरुषः' इन दो पदोंके व्यवधान न होने पर भी आपसमें सम्बन्ध न होनेसे 'समर्थः पदविधिः [पा. २।१।१] इस पदविधिके न होनेसे समास न हुआ। 'नमस्ते यातुधानेभ्यः'में 'नमः' शब्दका योग 'यातुधान' शब्दके साथ है, इसलिए यातुधानमें चतुर्थी हो ही गई। यातुधानका सम्बन्ध 'ते' से है, अतः इसमें षष्ठी है। 'ते' का 'नमः' इससे अर्थ-सम्बन्ध न होनेसे उसमें चतुर्थी न हुई। वादी भी अपने वाक्य में 'नमः' के योगमें चतुर्थी मानते हैं, अयोगमें नहीं। 'ते' का अर्थयोग 'नमः,' शब्दसे नहीं है, केवल एक स्थान पर 'नमः' ते' इस प्रकार स्थित होनेका योग अवश्य है, इसलिए उसके फलस्वरूप विसर्गसन्धि सकार भी हो ही जाता है।

(घ) मन्त्रों, पद्यों, गद्योंमें भी आगे पीछे ठहरे शब्द अन्वय-सापेक्ष हुआ करते हैं। जैसे कि—अपने 'नमस्ते-प्रदीप'के २४ पृष्ठ में वादी ने 'नमस्ते रुद्र! मन्यवे'का अर्थ हे रुद्र! ते-तव मन्यवे नमः-नमस्कारोस्तु' यह अन्वय लगाकर किया है, ७ पृष्ठमें 'दशकृत्वः पशुपते! नमस्ते [अ. ११।२।१६] का हे प्रभो! ते नमः-आपका सत्कार हो, इस प्रकार अन्वय लगाकर अर्थ किया है। इसी प्रकार यहां भी अन्वय होता है 'हे मृत्यो! ते तव यातुधानेभ्यो नमः' इस प्रकार आक्षेप हट गया।

(ङ) जो कि वे कहते हैं 'नमो देवेभ्यः' मिलता है' देवा-

नां नमः' नहीं, यह कहना भी व्याकरणमें अपना अज्ञान दिखलाना है। 'देवानां नमः पत्ये' यह वाक्य भी हुआ करता है। यहाँ 'नमः' का 'पत्ये' से 'नमः ते यातुधानेभ्यः' की तरह सम्बन्ध है, इसीलिए 'नमः' के योग में चतुर्थी 'पत्ये' में ही हुई है, 'देवानां'में नहीं; क्योंकि 'देवानां' तो 'पत्ये'का सम्बन्धी पद है, अतः उस 'देवानां' में 'नमः ते [तव] यातुधानेभ्यः' के 'ते' की तरह षष्ठी ही हुई।

(च) इसी तरह 'अग्नेः स्वाहा स्त्रियै' यह वाक्य भी होता है। यहां पर 'अग्नेः स्त्रियै [अग्नाय्यै] स्वाहा' यह अन्वय है। पहलेकी तरह यहां भी 'स्वाहा' का योग 'स्त्रियै' से है; इस लिए यहां चतुर्थी है। 'अग्नेः' यह तो 'स्त्री' शब्दका सम्बन्धी पद है, इसी लिए यहां षष्ठी है। वादी से दिये हुए यही दोनों उदाहरण 'यातुधानेभ्यः' में हमारे पक्षके पोषक हैं कि—'हे मृत्यो ! ते-तव यातुधानेभ्यो नमः।' वादीका वेदांग-व्याकरणसे अभी पूर्ण परिचय नहीं; तो वेदमें वे 'नमस्ते' को एकपद सिद्ध करनेके अधिकारी कैसे हैं ?

(छ) प्रत्युत 'नमस्ते' को एकपद माननेमें कई दोष आते हैं। एक यह कि—फिर 'नमस्ते' के योगमें चतुर्थी करने वाला सूत्र 'अष्टाध्यायी' में नहीं मिलता। वहां पर 'नमः-स्वस्ति स्वाहा' (२।३।१६) यह 'नमः' के योगमें चतुर्थी-विधायक सूत्र है, 'नमस्ते-स्वस्ति' इत्यादि सूत्र नहीं। जब कि 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' यह सिद्धान्त स्वा० रा. भी मानते हैं, तब उन्हें बताना पड़ेगा कि—'नमस्ते' में क्या प्रकृति-प्रत्यय

हैं ? यह तद्धिती शब्द है—या कृदन्ती ? इसमें प्रमाण क्या है ? वेदमें रूढ शब्दोंको आर्यसमाज नहीं मानता, तब यह रूढ शब्द भी न रहा।

(ज) नमस्तेके प्रवर्तक स्वा० दयानन्दजी माने जाते हैं, उन्होंने नमस्तेको 'वेदोक्त-वाक्य' माना है, पद नहीं। पद-समूहको वाक्य कहते हैं, तब उनके मतमें भी इसमें दो पद हुए। एक पदको वाक्य कभी नहीं कहा जाता। इस लिए इसका अर्थ भी स्वा. द. ने 'मैं तेरा मान्य करता हूँ' यह किया है। यहां तेरा वा आपका अर्थ 'ते' का ही है यह स्पष्ट है। तब यह दो पद सिद्ध हुए। स्वा. दया. ने निपातोंमें नमस् माना है नमस्ते नहीं। तब फिर 'ते'के नमस्से भिन्न होनेसे नमस्ते ये दो पद सिद्ध हुए।

(झ) नमस्तेको एक पद मानने पर इसमें वैदिक-स्वर-सञ्चारकी व्यवस्था भी नहीं रहती। दो पद मानने पर इसका स्वरसंचार ठीक हो जाता है। इस पर पाठकगण देखें। नमस्में 'सर्वधातुभ्योऽसुन् (उ. ४।१८९) यह असुन् -प्रत्यय नित् है, तब 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (पा. ६।१।१९७) से आद्यु-दात्त हुआ, फिर मकारको परिशेषसे 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५८) से अनुदात्त हो गया, फिर उदात्तके परे अनु-दात्तको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित हो गया। 'ते' 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८।१।१८) से अनुदात्त है। स्वरितके सामने ठहरे अनुदात्तको 'स्वरितात् संहि-तायामनुदात्तानाम्' (पा. १।२।३९) से प्रचय हो जाता है।

पर यदि उसके सामने उदात्त वा स्वरित आजावे, तो पूर्वके अनुदात्तको प्रचय न होकर 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' (पा. १।२।४०) से अनुदात्ततर हो जाता है। जहां 'नमः' के 'म' को स्वरित न हो तो वहां समझना चाहिये कि-उसके सामने उदात्त होगा। वहां पर 'नोदात्त-स्वरितो' (पा. ८।४।६७) इस सूत्रसे स्वरित निषेध होकर पूर्ववत् अनुदात्ततर हो जाता है। पर 'नमस्तो' को एक-पद मानने पर स्वरसंचार-व्यवस्था ठीक नहीं बैठती। अतः इसका एकपदत्व खण्डित हो गया। इसके द्विपदत्वमें खड़ी की हुई आपत्तियोंका भी समाधान हो गया।

(३) 'नमस्ते' के एकपदत्वमें कई युक्ति-प्रमाण।

श्रीस्वामी-रामेश्वरानन्दजीके 'नमस्ते घोषिणीभ्यः' आदि मन्त्रोंमें इष्ट नमस्तेके एकपदत्वका निराकरण तो कर दिया गया; अब उनके एतद्विषयक कई अन्य प्रमाण तथा युक्तियों पर विचार किया जाता है।

(६) पूर्वपक्ष—वे 'नमस्ते-प्रदीपके' २० वें पृष्ठमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर लिखते हैं—(प्रश्न) 'यह कैसे जाना जाय कि कहां पर 'नमस्तो' 'नमः+ते' के योगसे सिद्ध होता है, और कहांपर 'नमस्तो' एकपद अव्यय है ? इसका आप उत्तर इस प्रकार देते हैं—

उत्तर—(क)जहां पर विशेष प्रथमान्त हो वहां पर 'नमस्ते' नमः-'ते'के-योग से सिद्ध होता है। (ख) जहां पर विशेष्य द्वितीयान्त वा चतुर्थ्यन्त हो; वहां पर "नमस्ते" एक-पद अव्यय ही होता है।" जैसा कि—'तस्माद् उ ह नायज्ञियं ब्रूयाद् नमस्तो इति' (शतपथ. ७।३।२।१।३) यहां पर यज्ञिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको नमस्तेका अधिकार दिया गया है। 'नमस्ते विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे' (यजुर्वेद) नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तो' (यजु० ३६।२०) तथा 'नमो नमस्ते गुरवे महात्मने' (विवेक-चूड़ामणि ४८७) इत्यादि मन्त्र तथा श्लोकोंमें—"नमस्ते यह एक पद अव्यय है" यह लिखकर आप इसमें तर्क वा युक्तियां बताते हैं—

"यदि यहां 'नमः+ते' के योगसे नमस्ते सिद्ध होता; तो मन्त्र तथा श्लोकोंमें आये चतुर्थ्यन्त-पदोंमें चतुर्थी विभक्तिका होना निष्फल है; क्योंकि—जब "ते" का अर्थ ही "तेरे लिये" हो जावेगा; फिर विशेष्यमें चतुर्थी विभक्तिका होना कोई अर्थ नहीं रखता। यदि "विद्युते गुरवे, हरसे, शोचिषे" आदिमें आई हुई चतुर्थीका अर्थ यह किया जाता है कि—गुरुके लिए, विद्युत् के लिए—इत्यादि तब तो नमस्तेमें आई हुई चतुर्थी विभक्ति, "ते" का कोई अर्थ नहीं रहता।

यदि यह कहो कि—"नमः स्वस्ति" इस पाणिनीय-सूत्रके आधार पर यहां चतुर्थी विभक्ति हुई है; तो हम पूछेंगे कि इस चतुर्थी विभक्तिका अर्थ क्या होगा ? यदि "लिये" अर्थ करोगे; तो उक्त दोष (?) आयेंगे। यदि कहो कि—अन्य अर्थ करेंगे; तब हम यह पूछेंगे कि—इसमें चतुर्थी-विभक्ति करनेका क्या फल है ? यदि कहो कि—यह चतुर्थी विभक्ति निरर्थक है; तब तो वेद पर बड़ा भारी दोष आयेगा, क्यों कि—उसकी तो एक मात्रा भी निरर्थक नहीं है' । ('नमस्ते-प्रदीप' पृष्ठ

२०-२१।)

(क) इससे पूर्व स्वामीजी ने लिखा था— "जहां पर विशेष्य प्रथमान्त हो; वहां पर "नमस्ते" "नमः ते" के योगसे सिद्ध होता है" इस द्विपदत्वमें उन्होंने कोई प्रथमान्त-विशेष्यता की हेतुतामें पृथक् उदाहरण नहीं दिया। यदि सम्बोधन का प्रथमान्त होना उनको इष्ट हो; वहां वे नमस्तेको दो पद मानें, तो "नमस्ते यातुधानेभ्यः' इस मन्त्रमें "मृत्यो !" के प्रथमान्त होने से "नमस्ते यातुधानेभ्यः' यहांपर "नमः, ते" उनके अनुसार भी दो पद सिद्ध हो जायेंगे।

(उत्तर-पक्ष) पहले हम वादी की इस कसौटी पर विचार कर फिर दूसरी कसौटी पर विचार करेंगे—

हम पूर्व कह चुके हैं कि–'नमस्ते' के दो पद होनेमें वादी ने कोई उदाहरण पृथक्-रूपसे नहीं दिया। अब उसकी पुस्तकके प्रमाण देखने चाहियें, जहां 'नमस्ते' को 'दो पद' माना हो। उक्त निबन्धके ७ वें पृष्ठमें 'दशकृत्वः पशुपते। नमस्ते' (अथर्व० ११।२।९) 'पशुपते ! नमस्ते' (११।२।११) 'मा नः क्रुधः पशुपते ! नमस्ते' [११।२।१९] ये तीन मन्त्र दिये हैं। इनमें पूर्व-मन्त्रका अर्थ लिखा है 'हे पश्वादिके पालक प्रभो ! ते नमः–आपका सत्कार हो'। दूसरे मन्त्रका भी अर्थ पूर्ववत् होनेसे उसे 'स्पष्टार्थ' माना है। तृतीय-मन्त्रका अर्थ वादीने किया है–'हे पशुपते ! हम पर क्रोधित मत हो' आपका सत्कार हो'। यहां तीनों स्थलोंमें वादीने 'नमस्ते' को दो पद माना है। जहां वादीको 'नमस्ते' एक पद इष्ट होता है, वहां वह 'आपको नमस्ते हो' ऐसा अर्थ लिखा करता है।

यहां क्या कारण है कि वादीने 'नमस्ते' में दो पद माने हैं ? कारण स्पष्ट है यहां उसकी निजकल्पित पहली परिभाषा दर्शनीय है। वह यह है कि–"जहां पर विशेष्य प्रथमान्त हो, वहां पर 'नमस्ते' 'नमः+ते' के योगसे सिद्ध होता है।" यहां पर 'पशुपति' सम्बोध्य होनेसे विशेष्य है और वह प्रथमान्त है, क्योंकि सम्बोधनमें प्रथमा-विभक्ति हुआ करती है। तब उसकी पूर्वपरिभाषानुसार उक्त मन्त्रोंमें प्रयुक्त 'नमस्ते' द्विपदात्मक हुआ। तभी तो उसने स्पष्ट रूपसे उसका 'ते-नमः' ऐसा छेद किया है और अर्थ भी वैसा ही किया है।

वादीका इस प्रकारका अन्य पृष्ठका उदाहरण भी देखें। उसकी पुस्तकके १८ वें पृष्ठमें वादीने 'नमस्ते गन्धर्व !' (अथर्व० १४।२।३४) यह मन्त्र दिया है। इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है–"हे (गन्धर्व !) वेद-वाणीको धारण करने वाले ब्रह्मचारिन् ! (ते) तेरे लिए (नमः) अभिवादन हो !" इससे अत्यन्त स्पष्ट हो गया कि–वादीके मतानुसार जहां सम्बोधन वा प्रथमान्तता हो, वहां पर आया हुआ 'नमस्ते' द्विपदात्मक होता है। यदि यह वादी की बात ठीक है, तो उसने जितने भी मन्त्र 'नमस्ते' की एक-पदतामें दिये हैं, उनमेंसे प्रायः सभी (प्रतिशत निनानवे) मन्त्रों में कोई सम्बोधनान्त वा प्रथमान्त पद है, तब उन सबमें 'नमस्ते' दो पद सिद्ध हो जाने से एकपदता न रही। वादी की प्रायः सम्पूर्ण

पुस्तकमें इस प्रकार 'नमस्ते' दो पद सिद्ध हो जानेसे उसका सम्पूर्ण परिश्रम उसके विरुद्ध जा पड़ता है—यह विद्वान् पाठकोंने समझ लिया होगा।

अब वादीकी दूसरी परिभाषा जो 'नमस्ते' को एक पद सिद्ध करने वाली है—उस पर भी हम विचार करते हैं। इस दूसरी परिभाषा के वादी ने उदाहरण भी दिये हैं और उसके लक्षण का सङ्क्रमन भी दिया है। विद्वानों का अवधान इधर अपेक्षित है।

अब आगे फिर प्रश्नोत्तर लिखते हैं—

प्रश्न—नमस्तेको आजतक किसीने भी एक पद नहीं माना; केवल आप ही यह हठ करते हैं कि नमस्ते एक पद भी है।

उत्तर—हम वेद-मन्त्रोंसे दिखला चुके हैं कि—नमस्ते एक पद भी है; यदि उक्त मन्त्रोंमें 'नमः-ते'के योगसे नमस्ते शब्द सिद्ध किया जायगा; तो कदापि अर्थ सङ्गत नहीं हो सकता। यथा—"नमस्ते हरसे" (यजु. १७।११) इत्यादि मन्त्रोंमें नमः तेके योगसे नमस्ते सिद्ध नहीं होता; किन्तु एक पद ही है।

पृष्ठ २३ में फिर आप लिखते हैं—महीधर उवटने भी नमस्तेको कई स्थलों पर एक-पद मानकर अर्थ दिया है; जैसे "हे महावीर! पितेव नो अस्मान् बोधय, सर्वदा नमस्ते अस्तु" (यजु ३७।२०) हे महावीर, तू पिताकी तरह हमको जगा; आपको सब ओरसे नमस्ते-यह आदर-वाचक शब्द प्रयुक्त हो, यह महीधरका अर्थ है। उवटका अर्थ है—"हे देव घर्म! सर्वदा नमस्ते अस्तु, (यजु ३८।१६) तथा "नमस्तो स्तनयित्नु-

रूपाय" (यजु. ३६।२१) "नमस्तो अस्तु हे भगवन्!! (यजु. १६।५२) यहां भी 'उवटने' नमस्ते को एक पद माना है।"

(७) पूर्वपक्ष—'तस्माद् उ ह नाऽयज्ञियं ब्रूयाद् नमस्ते इति' (शत० ७।३।२।१।३) यहां पर यज्ञिय—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को 'नमस्ते' का अधिकार दिया गया है। इससे 'नमस्ते' एक पद सिद्ध होता है। (नमस्ते-प्रदीप)

उत्तरपक्ष—शतपथके इस वचनसे 'नमस्ते' एकपद सिद्ध नहीं होता—उसके पूर्वोत्तर-प्रकरणसे वादीकी यह सिकत-भित्ति गिर पड़ेगी। यहां पर यजुर्वेद वा.सं० (१३।६-७-८) मन्त्रोंकी व्याख्या चालू है, जिनमें सर्पोंको नमस्कार की गई है। जैसे कि—'त्रिषु लोकेषु ये सर्पाः, तेभ्यः एतद्नमस्करोति। (शत० ७।३।१।२८) ये चैव वनस्पतिषु सर्पाः; तेभ्यः एतद्नमस्करोति, ये च अवटेषु (छिद्रेषु) शेरते, तेभ्यः [सर्पेभ्यः] एतन्नमःकरोति (२९), ये च सूर्यस्य रश्मिषु, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः। यत्र-यत्र एते [सर्पाः], तत्रैव एतद् नमः करोति' (३०) यहां सर्वत्र सर्पोंकेलिए 'नमः' शब्द आया है, नमस्ते कहीं नहीं। यहाँ पर जो कि 'नमो-नमः' यह मूल-मन्त्रमें आया था; ब्राह्मण भाग उसका अर्थ यों करता है:—

'नमो नमः। यज्ञो वै नमः। यज्ञेनैव एतान् एतन्नमस्कारेण नमस्यति' (७।३।१।३०) अर्थात् 'इनका यज्ञ करना ही इनको नमः शब्दसे पूजना है।' यह कहकर उपसंहार करते हैं-तस्माद् उ ह न अयज्ञियं ब्रूयाद् नमः—ते इति। यथा ह एनं

ब्रूयाद् यज्ञः ते इति तादृक् तत् (७।३।१।३०) अर्थात् जो यज्ञ का अनधिकारी (शूद्रादि) हो उसे यह 'नमः (यज्ञ) तेरे लिये है, ऐसा न कहे'; क्योंकि 'नमः' का अर्थ होता है 'यज्ञ'। जैसे यज्ञ के अनधिकारी (शूद्रादि) को कह दिया जावे कि 'यज्ञः-ते' यह यज्ञ तेरा वा तेरे लिए है, वैसा कहना उसमें उस का अनधिकार होनेसे ठीक नहीं होता, ऐसे ही यज्ञके अनधिकारी शूद्र-अन्त्यज आदिको भी 'नमः-ते' यह 'नमः [यज्ञ वाचकशब्द] तेरे लिए है' ऐसा मत कहो। क्योंकि-जैसे अयज्ञिय-शूद्रादिको 'यज्ञ' का निषेध है, वैसा अयज्ञिय शूद्रादिको यज्ञिय-नमः कहनेका भी निषेध है। परन्तु सर्प यज्ञिय हैं; जैसे कि 'ऐतरेय में कहा है...'पाञ्चजन्यं वा एतदुक्थम् (यज्ञः); देव-मनुष्याणां, गन्धर्वाप्सरसां, सर्पाणां पितॄणां च [३।३१] अतः उन्हें 'मन्त्रभाग' तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः' [यजु० १३।६-७-८] कहकर उन्हें यज्ञार्थक 'नमः' शब्द कहता है।

अब पाठकोंको प्रतीत हो गया होगा कि जिन मन्त्रोंका यह व्याख्यान है, उनके मूलमें (वाज. यजु. सं. १३।६-७-८) 'नमः' शब्द है 'नमस्ते' नहीं। यदि यह एक-पद होता; तो उक्त मन्त्रोंमें 'नमः' न होता, किन्तु 'नमस्ते' होता। दूसरा नमस्ते का पर्याय शतपथमें 'यज्ञस्ते' यह यहीं दिखलाया गया है। यदि 'नमस्ते' एक पद होता; तो उसको ब्राह्मण-द्रष्टा पहले 'नमो-नमः' न लिखते, किन्तु 'नमस्ते' लिखते। पर वैसा नहीं लिखा। और फिर 'यज्ञस्ते' इसे नमस्तेकी प्रतियोगितामें रख कर सिद्ध कर दिया गया है कि 'यज्ञस्ते'की भांति 'नमस्ते' भी दो पद हैं।

यदि 'नमस्ते' एक पद होता; तो उसकी प्रतियोगितामें 'यज्ञस्ते' न कह कर केवल 'यज्ञः' कहा जाता। पर ब्राह्मण-भागने पहले 'नमो वै यज्ञः' कह कर 'नमः'का पर्याय-वाचक 'यज्ञ' है यह बता कर 'नमः' यही पद सिद्ध कर दिया है, और 'ते'को पृथक् पद बता दिया है। 'नमस्ते'के स्थानमें 'यज्ञस्ते' ऐसा कह कर 'शतपथ'ने नमस्तेके एक-पदत्वकी जड़ ही काट दी है, क्योंकि पूर्वपक्षी महाशय 'यज्ञस्ते'को एक-पद मान ही नहीं सकते; इसमें यज्ञः 'नमः'के स्थानापन्न हैं; और 'यज्ञस्ते' वाला 'ते' नमस्तेके 'ते'का अनुवाद है; तो 'यज्ञस्ते'की भांति नमस्ते भी दो पद सिद्ध हो गये। आशा है-विद्वान् पाठकोंने पूर्वपक्षीके इस प्रमाणकी विफलता समझ ही ली होगी।

इधर वादी अपने 'नमस्ते-प्रदीप' के २२ पृष्ठमें यज्ञिय-यज्ञमें अधिकृत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंको बताते हैं; शूद्र-अन्त्यज आदिको नहीं। यदि वे शतपथके इस प्रमाण से नमस्तेका प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करेंगे तो शूद्र-अन्त्यज आदिको वा उनके प्रति इसका प्रयोग न करना पड़ेगा—तब 'नमस्ते-प्रदीप' के ४४ पृष्ठमें दिखलाई हुई—'परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो; तब नमस्ते इस वाक्यका उच्चारण करके...नीच उत्तमों, तथा उत्तम नीचोंका निरन्तर सत्कार करें' यह वादीकी वैदिक-आज्ञा खण्डित हो जाती है, और फिर नमस्तेकी उनसे अभिमत सार्वदेशिकता तथा सार्वकालिकता भी कट जाती है। तब शूद्र, अन्त्यज आदियोंका 'नमस्ते' इस आर्यसमाजियोंके प्रिय वाक्यमें अधिकार न होनेसे और

यज्ञमें अधिकार न होनेसे, यज्ञ-विषयक वेदमें भी अनधिकार सिद्ध हो जायगा। तो फिर पूर्वपक्षीके सम्प्रदाय आर्यसमाजके सिद्धान्तका भी भंग हो जायगा। इस नमस्तेकी सिद्धिकी प्रसन्नतामें वादीने अपनी समाजका भी खण्डन कर दिया। क्या वादी त्रैवर्णिकोंको भी शतपथानुसार 'नमस्ते'के स्थान पर 'यज्ञस्ते' भी कहा करते हैं? यदि नहीं तो वादी के इस पक्षका भी निराकरण हो गया।

(८) अब उनके 'नमस्ते'को एक पद सिद्ध करनेके लिए दिये हुए अन्य प्रमाणोंपर जो पूर्वपक्षमें उद्धृत नहीं भी किये गये हैं विचार किया जाता है। पाठकगण सावधानतासे देखें।

'नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे' (यजु० ३६।२१) उनसे दिये गये इस मन्त्रका भी यही अर्थ है कि हे भगवन्! ते-तुभ्यं विद्युते नमोस्तु स्तनयित्नवे च, तुझ विद्युत्को, तुम स्तनयित्नुको नमस्कार हो, यहां अभिमुख करके कहा जा रहा है। अथवा हे भगवन्! ते-तव (विद्युते) तेरी बिजलीके लिए नमस्कार; अथवा जो तेरा विद्युत्-रूप है, उसे नमस्कार, तेरा जो स्तनयित्नुरूप है, उसे नमस्कार हो।' इस प्रकार यहां दोनों ही दशाओंमें 'नमस्ते' दो पद है, एक पद नहीं। सन्धिमें नमः की विसर्गोंको स् होकर नमस्ते बन गया है।

इस प्रकार 'नमस्तो हरसे शोचिषे' [१७।११] मन्त्रका अर्थ भी समझना चाहिये। इस मन्त्रका देवता [वर्ण्यमान] अग्नि है, अब अर्थ यह हुआ कि 'ऐ अग्नि! ते तव-तेरे, सब रसोंको हरण करनेवाले तेजको नमस्कार हो, तेरी ज्वालाको

नमस्कार हो।' इसमें भी स्पष्टतया नमस्तेमें दो पद हैं। 'ते' यहां पर अग्निका सम्बन्ध-वाचक षष्ठ्यन्त पद है। इसमें प्रमाण इस मन्त्रके उत्तरार्धका 'ते' है; जैसे कि 'अन्यान् ते तपन्तु हेतयः।'

हम वादीके इस मतसे सहमत नहीं कि उक्त मन्त्रोंमें 'नमस्ते' को दो पद मानने पर अर्थ संगत नहीं होता। हम वादी के लिखे मन्त्रों पर उनके सम्प्रदाय के आचार्य श्रीस्वामी दयानन्दजी का भाष्य देते हैं। बड़े स्वामीजीने सभी स्थान 'नमस्ते' दो पद माने हैं। इस पर छोटे स्वामीजी बताएं कि-क्या असंगति पड़ती है?

'नमस्ते हरसे' (यजुः १७।११]। नमः—सत्करणं ते-तुभ्यं हरसे—यो दुःखं हरति तस्मै' हे परमेश्वर! हर-पाप के हरण करने वाले ते-आपके लिए नमः-नमस्कार अस्तु हो।'

'नमस्ते विद्युते' [३६।२१] 'नमः ते-तुभ्यं परमेश्वर अस्तु, विद्युते-विद्युदिव अभिव्याप्ताय, नमः ते भगवन् अनन्तैश्वर्यसम्पन्न! अस्तु'। विद्वान् पाठकोंने देखा होगा कि स्वा० दयानन्दजीसे किये इस अर्थमें 'नमस्ते' दो पद मानने पर कोई असंगति नहीं पड़ती; तब इन मन्त्रोंमें 'नमः ते' ये दो पद सिद्ध हुए।

वादीने जिन मन्त्रोंमें 'नमस्ते' को एक पद बताया है, उनमें कई मन्त्रों का स्वा० द० जी से प्रोक्त अर्थ देते

जिनमें 'नमस्ते' दो पद माने गये हैं। पाठकों को उसमें कोई असंगति प्रतीत नहीं होगी।

'शर्म मे यच्छ, नमस्तेस्तु' (यजुः ४।९) ते-तुभ्यं मम नमोस्तु ते-उस तेरे लिए मेरा अन्नादिपूर्वक सत्कार। 'स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु' (३।६३) स्वा०द० भाष्य—'स त्वं मम पितासि, ते-तुभ्यं नमोस्तु'। नमस्ते रुद्र! (१६।१) 'नमः-वज्रं ते-तवोपरि'। नमस्ते अस्तु भगवः! (१६।५२) नमः-सत्कारः ते—तुभ्यं अस्तु भगवः—ऐश्वर्य—सम्पन्न!' नमस्ते आयुधाय' (यजुः १६।१४) नमः, ते—तुभ्यं आयुधाय—यः समन्ताद् युध्यते तस्मै'।

सब मन्त्रों पर स्वामीजीका भाष्य उद्धृत करने में विस्तार अधिक होगा; अतः दिङ्मात्र इन्हीं मन्त्रोंको देख लेना चाहिये। जब इस प्रकार वेदमन्त्रोंके अर्थमें संगति दीख रही है, 'ते' निरर्थक नहीं रहता; तब 'नमस्ते' दो ही पद सिद्ध हुए। फिर इनको एक-पद सिद्ध करना वा एक-पदकी तरह 'नमस्ते' को प्रयुक्त करना वेद वा स्वामीजीके मतसे प्रतिकूल है। जब बड़े स्वामी यहां दो पद मान गये हैं, तब यहां एक पद बताते हुए छोटे स्वामी तो खण्डित हो गए।

शेष जो वादीने हिन्दी-भाषा के अनुसार 'लिए' अर्थ पर आपत्ति उठाई है कि—'नमस्ते विद्युते' में 'तेरे लिए विद्युत् के लिए नमस्कार' ऐसा अर्थ लिखना ठीक नहीं लगता। अथवा 'तुझ विद्युत् के लिए नमस्कार' ऐसा अर्थ करने पर 'तुझ' शब्दके साथ 'लिए' अर्थ न लगनेसे उसमें चतुर्थी 'ते'

व्यर्थ होती है, पर वेदमें व्यर्थता नहीं होती; अतः 'नमस्ते' एक पद ही ठीक है'—यह वादीका आन्तरिक आशय ठीक नहीं। संस्कृत-भाषामें तो विशेषण-विशेष्योंमें समान विभक्ति लगती है।

अब रहा 'नमो नमस्ते गुरवे महात्मने' यह 'विवेक चूड़ामणि' का प्रमाण; यहां भी "नमः ते" इस प्रकार दो ही पद हैं, एक पद नहीं। यहां पर गुरुको सम्मुख करके कहा गया है कि तुझ महात्मा गुरुको बार-बार नमस्कार है। यहां भी एक पद सर्वथा नहीं है। 'ते महात्मने गुरवे नमो नमः" यह अन्वय है।

यह जो कि वादीने नया आविष्कार निकाला है कि—'जहां पर विशेष्य चतुर्थ्यन्त वा द्वितीयान्त हो; वहांपर 'नमस्ते' यह एक पद या अव्यय होता है' मालूम नहीं कि—यह परिभाषा वादीने किस व्याकरण से निकाली है? इस विषयमें उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं; हमने उनमें 'नमस्ते' को दो पद सिद्ध कर दिया है। कहीं तो वहां "ते" यदि सम्बन्धमें षष्ठचन्त है, तो वहां "तेरा" यह अर्थ है। यदि वहां "ते" यह किसी चतुर्थ्यन्तका विशेषण है; तो वहां उस व्यक्तिको अभिमुख करके तुझ वा तुझ गुरुके लिए, अग्निके लिए नमस्कार हो ऐसा अर्थ है।

वादीका यह कथन कि—यदि यहां (नमो नमस्ते गुरवे इत्यादिमें) नमस्ते एक पद वा अव्यय न होता, अपितु 'नमः ते' के योगसे नमस्ते शब्द सिद्ध होता तो मन्त्र तथा

श्लोकोंमें चतुर्थ्यन्त पदोंमें चतुर्थी विभक्तिका होना निष्फल है, क्योंकि तब "ते" का अर्थ ही 'तेरे लिये' हो जावेगा, फिर विशेष्यमें चतुर्थी विभक्तिका होना कोई अर्थ नहीं रखता' यह वादीका कथन व्याकरणके विद्वानोंके लिए अतीव उपहास्य है। वादी याद रखें कि जहां विशेष्य चतुर्थी है और उस व्यक्तिको सामने विद्यमान मानकर कुछ कहा जा रहा है; तो उसे चतुर्थ्यन्त ही सर्वनाम-रूप विशेषण वा अन्य चतुर्थ्यन्त विशेषणसे कहा ही जा सकता है, जैसेकि-'तुझ महात्मा, गुरु (परमात्मा) को (के लिए) नमस्कार हो।'

यह नियम है—"यल्लिङ्गं, यद् वचनं या च विभक्ति-र्विशेष्ये स्यात्। तल्लिङ्गं, तद् वचनं, सा च विभक्तिर्विशेषणे देया" अर्थात् विशेष्यको जो लिङ्ग, जो वचन, तथा जो विभक्ति हो; उसके जितने भी विशेषण हों; उनमें भी वही लिंग, वही वचन, वही विभक्ति होती है; इस नियमके अनुसार चतुर्थ्यन्त विशेष्यके जितने भी विशेषण हों; चाहे वे सर्वनाम हों वा गुणवाचक हों, उन सभीको चतुर्थी विभक्ति होगी।

अब स्वामीजी बतावें कि-यहां क्या अनुपपत्ति है? "मन्त्र तथा श्लोकोंमें आये चतुर्थ्यन्त पदोंमें चतुर्थी विभक्ति का होना निष्फल है" स्वा.रा.का यह वाक्य वैयाकरणों द्वारा सुवर्ण-पदकके योग्य है? आपकी संस्कृतमें भी बड़ी अशुद्धियां रहा करती हैं; हमारे पास उनके पत्र पड़े हैं। प्रथमाका छात्रभी उनसे अशुद्धियां पकड़ सकता है, चले हैं ये व्याकरणसे वेदकी मीमांसा करने।

उन्हें यह याद रखना चाहिये कि—व्याकरणमें 'तस्मै ते नमः' यह अन्वादेशका प्रसिद्ध उदाहरण है। इसका अर्थ है 'उस तुझको नमस्कार हो' यहां दोनों ही पद चतुर्थ्यन्त हैं। इस प्रकार 'दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः' यहां 'कृष्णाय' तथा 'तुभ्यम्' 'दशाकृतिकृते' सभी पदोंमें चतुर्थी आई है; इस प्रकार 'देवाय ते (तुभ्यं) नमोस्तु' आदि बहुतसे प्रयोग मिल सकते हैं; इसी तरह 'नमः ते हरसे' इत्यादिमें "ते" चतुर्थ्यन्त है। तब 'नमस्ते' की एक-पदता निराकृत हो गई।

जो कि वादी लिखते हैं "यदि विद्युते गुरवे आदिमें आई हुई चतुर्थीका यह अर्थ किया जाय कि गुरुके लिए, विद्युतके लिए, तब तो 'नमस्ते' में आई हुई चतुर्थी विभक्ति "ते" का कोई अर्थ नहीं रहता"। इसका प्रत्युत्तर पूर्व दिखाया जा चुका है कि वादीके दिये मन्त्रोंमें कहीं तो "ते" सम्बन्धवाचक होने से षष्ठयन्त है; कहीं चतुर्थ्यन्त होनेसे उसे अभिमुख कर 'तुझ गुरुके लिए, तुझ अग्निके लिए, तुझ बिजलीके लिए नमस्कार हो' यह अर्थ होता है। उस अर्थमें न कोई व्याकरण सम्बन्धिनी अनुपपत्ति है; न कोई भाषा-सम्बन्धिनी अनुपपत्ति है तब बलात् वेद एवं वेदांगसे विरुद्ध 'नमस्ते' को एक पद बनाना सम्प्रदायिक-दृष्टिके अतिरिक्त अन्य क्या अर्थ रखता है? विशेष्यके चतुर्थ्यन्त होनेपर उसके सभी विशेषणोंमें भी चतुर्थी अवश्य होती ही है—इसमें अनुपपत्ति क्या है?

इस मीमांसासे आगेका स्वा. रामे. जीका यह वाक्य कि "यदि यह कहो कि–'नमः-स्वस्ति-स्वाहा' इस सूत्रके आधा

पर यह चतुर्थी विभक्ति हुई है; तो हम यह पूछेंगे कि—इस चतुर्थी विभक्तिका अर्थ क्या होगा ? यदि 'लिए' अर्थ करोगे; तो उक्त दोष (कौनसे दोष ?) आएँगे। यदि कहो कि—अन्यार्थ करेंगे, तब हम यह पूछेंगे कि इसमें चतुर्थी-विभक्ति करनेका फल क्या है ? यदि कहो कि—चतुर्थी विभक्ति निरर्थक है; तब तो वेद पर बड़ा भारी दोष आएगा; क्योंकि उसकी तो एक मात्रा भी निरर्थक नहीं है।" खण्डित हो गया। क्योंकि—

संस्कृत भाषामें विशेष्यके विशेषण जितने भी होते हैं; उनमें विभक्ति सभीमें विशेष्यके अनुसार ही होती जाती है। पर हिन्दी भाषा में यह प्रकार होता है कि—वहां विभक्ति का अर्थ 'को, ने, के लिए, से, का, आदि, विशेषणोंके साथ न लगाकर विशेष्यके साथ लगा दिया जाता है, उसका सम्बन्ध सब विशेषणोंसे भी लग जाता है। इससे संस्कृतमें विशेषणों में विशेष्यकी विभक्ति लगाना व्यर्थ नहीं हो जाता। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'स आत्मानं सर्वज्ञं मन्यते' यहां पर 'आत्मानं' विशेष्य है, 'सर्वज्ञं' विधेय विशेषण है, दोनोंमें समान विभक्ति है। यहां पर विभक्ति द्वितीया है। हिन्दी भाषामें द्वितीयाका अर्थ 'को' होता है, पर 'हिन्दी' में 'वह अपने आपको, सर्वज्ञको मानता है' ऐसा अर्थ नहीं करना पड़ता, अर्थात् विशेषण-विशेष्य दोनोंके साथ 'को' न लगाकर केवल विशेष्यके साथ ही उसे लगा देनेसे दोनोंसे उसका सम्बन्ध हो जाता है, फलतः

वहां पर 'वह अपने आपको सर्वज्ञ मानता है' ऐसा ही अर्थ लिखना पड़ता है, पर हिन्दी भाषामें 'सर्वज्ञ' विशेषणके साथ 'को' को न देखकर संस्कृतमें भी उसमें द्वितीया न देकर वहां पर 'स आत्मानं सर्वज्ञो मन्यते' ऐसा लिख देना व्याकरणान-भिज्ञता हो जाती है, जैसे कि—स्वा०रामेश्वरानन्दजीने मेरे पास भेजे हुए पत्रमें मुझे लिखा था कि—'किं भवान् आत्मानं सर्वज्ञो मन्यते ?' वह पत्र अभी तक भी मेरे पास विद्यमान है।

यह हुआ द्वितीया-विभक्तिका उदाहरण। अब एक चतुर्थी का उदाहरण भी देख लेना चाहिए। 'देवाय तुभ्यं (ते) नमः' यहां पर 'तुभ्यं' (ते) यह सर्वनाम विशेषण है, 'देवाय' यह विशेष्य है, 'नमः' के योगमें चतुर्थी 'नमः-स्वस्ति' इस सूत्रसे प्रसिद्ध ही है, तो उसके योगमें 'देवाय' विशेष्यमें चतुर्थी होने से उसके विशेषण 'तुभ्यं'में भी चतुर्थी हो ही जाती है। हिन्दी-भाषामें इस वाक्यका 'तेरे लिए देवके लिए नमः' ऐसा अर्थ न करके, पृथक् पृथक् 'लिए' अर्थ न लगाकर 'तुझ देवके लिए नमस्कार' इस प्रकार 'विशेष्य' के साथ ही चतुर्थी-विभक्तिका अर्थ 'के लिए' लगा दिया जाता है। ऐसा करने से दोनोंके साथ वह 'लिए' अर्थ लग जाता है, पर 'तुझ देवके लिए नमस्कार' इस हिन्दी-वाक्यमें 'तुझ' के साथ 'लिए' न देखकर उसके संस्कृतवाक्य 'देवाय तुभ्यं (ते) नमः' में सर्वनाम विशेषणमें चतुर्थी-विभक्ति व्यर्थ नहीं हो जाती है। यह लौकिक उदाहरण है। इसी प्रकार 'तेभ्यो वो नमः तेभ्यो वः स्वाहा'

(अथर्व० ३।२६।१) यह वैदिक उदाहरण भी समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार 'नमस्तो विद्युते' इस संस्कृत वैदिक-वाक्यका हिन्दीमें 'तेरे लिए विद्युत्के लिए नमस्कार' ऐसा अर्थ न करके 'तुझ विद्युत्के लिए नमस्कार' ऐसा अर्थ किया जाता है। इस हिन्दी वाक्यमें 'विद्युत्' शब्दके साथ 'के लिए' अर्थ देखकर संस्कृतमें 'विद्युते' इस प्रकार 'चतुर्थी' दे दी जाय, उसके सर्व-नाम विशेषण 'तुझ' में 'के लिए' यह अर्थ साक्षात् न देखकर संस्कृतमें उसे चतुर्थी न दी जाय; अथवा 'संस्कृतमें दी हुई 'विद्युते ते नमः' में 'ते' की चतुर्थी 'निरर्थक' मान ली जाय; तब इसमें उस संस्कृत वाक्य-प्रयोक्ताका दोष न मानकर उसमें निरर्थकता मानने वालेकी व्याकरणानभिज्ञताका ही दोष मानना पड़ेगा। नहीं तो फिर 'जातायै उत ते नम.' (अ० १।१०।१) इत्यादि वेदमंत्रोंमें 'जातायै' में चतुर्थी होने पर 'तुझ उत्पन्न हुईके लिए नमस्कार' इस अर्थ में 'ते' की चतुर्थी 'आसीनाय उत ते नमः' (अ० ११।४।७) 'तुझ बैठे हुएके लिए नमस्कार' इस अर्थमें 'आसीनाय' इस चतुर्थीकी विद्यमानतामें 'ते' इस सर्वनामकी चतुर्थी भी निरर्थक हो जायगी।

यदि इस 'ते' की चतुर्थी निरर्थक नहीं है, तो 'नमस्ते' अस्तु विद्युते' (यजु० ३६।२१) 'विद्युते ते—तुभ्यं नमः' 'तुझ विद्युत्के लिए नमस्कार' यहां पर भी 'ते' की चतुर्थी निरर्थक नहीं है। जब निरर्थक नहीं है; तो उस निरर्थकताके बचावके लिए ही 'नमस्ते' को एक-पद मानना स्वयं निरर्थक हो

जायगा; क्योंकि वही अर्थ 'नमः' से ही निकल जानेसे 'ते' स्वयं गौरव रूप एवं निरर्थक सिद्ध हो जायगा। इस प्रकार 'नमस्ते' को वेदमें एक-पद बतानेकी कल्पना करना वेद में निरर्थकताको स्वयम् आह्वान देना है। इसे एक पद मानने पर वहां अपेक्षित युष्मदादि सर्वनाम न रहनेसे न्यूनपद दोष भी उपस्थित हो जायगा, यह सब पाठकोंने स्पष्टतया जान लिया होगा।

इनमें क्या स्वा०रामे. उन विशेषणों वा सर्वनामों की वही विभक्ति व्यर्थ समझ लेंगे! 'तुझ समझदार लड़केके लिए क्या यह उचित है?' इस वाक्यकी संस्कृत 'प्रबुद्धाय तुभ्यं (ते) बालकाय किमिदमुचितम्' यह आप न बनाकर कुछ अन्य संस्कृत बनाएँगे? क्या यहां विशेष्यमें चतुर्थी होनेपर 'तुभ्यं' इस सर्वनाम-विशेषणमें स्वामीजी कोई अन्य विभक्ति देंगे? यदि ऐसा करेंगे तो वेदांग-व्याकरणसे विरुद्ध ही करेंगे। इस लिए ही तो मेरे पास आये हुए उनके पत्रमें 'किं भवान् स सर्वज्ञो मन्यते' यह वाक्य अशुद्ध है, 'सर्वज्ञ' यहां द्वितीया होगी, प्रथमा नहीं।

वेद भी तो व्याकरणके उक्त नियम (विशेषणोंमें विशेष्या-नुसारी विभक्ति देने) को मानता है। देखिये-'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः' (अथर्व० १०।७।३२-३३-३४-३६) इस मन्त्रमें विशेष्य ब्रह्मणको चतुर्थी है तो उसके विशेषण 'ज्येष्ठाय' तथा उसके सर्वनाम—विशेषण 'तस्मै'को भी चतुर्थी है। इस वाक्यका अर्थ है—'उस ज्येष्ठ ब्रह्मके लिए नमस्कार है'

क्या वादी यहां पर 'तस्मै' इस सर्वनाम-विशेषणकी चतुर्थी को निरर्थक समझेंगे ? तब तो 'जातायै उत ते नमः' (अथर्व० १०।१०।१) यहांपर 'जातायै; ते' में अन्यतरपदमें चतुर्थी व्यर्थ होगी। इसी प्रकार 'आसीनाय उत ते नमः' (अथर्व० ११।४।७) में 'आसीनाय' इस चतुर्थ्यन्तके साथ चतुर्थ्यन्त 'ते' व्यर्थ हो जायगा। तब तो 'तस्मै ते काम! नम इत् कृणोमि' (ऋ० ९।२।९) में चतुर्थ्यन्त 'तस्मै' के साथ 'ते' यह चतुर्थी व्यर्थ होगी। 'तुभ्यं...अग्ने!...विप्राय' (ऋ० ३।२१।३) में 'विप्राय' होने पर 'तुभ्यं' यह चतुर्थी व्यर्थ होगी।

अन्य मन्त्र देखिये--'पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु!' (अथर्व० १४।१।५८) यहां पर वधूके 'सहपत्न्यै' इस विशेषण में भी चतुर्थी दी गई है, फिर उसके सर्वनाम 'तुभ्यं'को भी। तो क्या पूर्वपक्षी महाशय 'तुभ्यं'की चतुर्थीको व्यर्थ समझेंगे ?

इसी प्रकार दो तीन मन्त्र वादी अन्य भी देखें। 'तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने! विप्राय सन्त्य' (ऋ० ३।२१।३) यहांपर अग्निको 'तुभ्यं विप्राय' कहा गया है। दोनोंमें चतुर्थी है। 'तुभ्यं विप्रा इन्द्राय' (ऋ० ३।३०।२०) 'मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि' (ऋ० ३।३५७) इन मन्त्रोंमें इन्द्रको चतुर्थी देकर उसके सर्वनाम को भी चतुर्थी दी गई है; तो क्या वादी इन चतुर्थियों को निरर्थक समझेंगे ? यदि नहीं; तब वे 'नमस्ते गुरवे' में 'ते'की चतुर्थीको किस प्रकार निरर्थक समझते हैं, जिससे डरकर नमस्तेको सभी आर्ष-ग्रन्थोंके विरुद्ध बलात् एक पद वा अव्यय बनाते हैं ? और ऐसा व्याकरण उन्होंने कौन सा देखा है, जिसमें उन्हें नमस्ते एक-पद दिखाई दिया है ?

'तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे'(अ. ६।२८।३।) इस मन्त्र में 'तस्मै मृत्यवे यमाय अस्तु' इस अन्वय में इन चतुर्थियोंको वेद-भक्त श्रीरामजी. व्यर्थ समझते हैं ? इसी प्रकार 'तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये' (अ० ७।६२।१) यहां भी क्या वादी अग्नये और रुद्रायमें चतुर्थी देखकर 'तस्मै' इस सर्वनामकी चतुर्थीको व्यर्थ समझते हैं ? इसी तरह 'तस्मै ते नमो अस्तु देवि!' (अ० १।१३।४) 'सर्वस्मै ते इदं नमः' (अ० ११।६।८) 'आसीनाय उत ते नमः' (अ० ११।६।७) 'पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः' (अ०११।४।८) क्या इन मन्त्रोंमें चतुर्थ्यन्त पदोंके साथ 'ते' इस सर्वनाममें चतुर्थीको व्यर्थ समझकर वादी वेदोंके पदोंको निरर्थक मानते हैं ?

यदि इन सर्वनामोंमें चतुर्थी को वादी व्यर्थ नहीं समझते; तब 'नमो नमस्ते गुरवे महात्मने' इत्यादिमें 'ते' इस सर्वनाम की चतुर्थीको व्यर्थ कैसे समझते हैं; जिससे डरकर वादी नमस्तेको अपनी कपोल-कल्पनासे एकपद वा अव्यय बनाना चाहते हैं। इस प्रकारके मन्त्र बहुत संख्यामें उपस्थित किये जा सकते हैं, पर स्थान नहीं। आग्रह-रहित प्रवृत्ति वालोंके लिए इतने प्रमाण पर्याप्त हैं; दुराग्रहियोंके लिए तो ऐसे सैकड़ों भी प्रमाण कुछ नहीं। फलतः वादीका एतद्विषयक पक्ष गिर गया है यह विद्वान् पाठकोंने देख ही लिया होगा।

आगेके प्रश्नोत्तरोंमें वादीने 'नमस्ते' को एक पद कहना पूर्वपक्षीके द्वारा अपना हठ सिद्ध करना कहलवाया है; यह ठीक

ही है; आप अवश्य ही इस विषयमें दुराग्रही हैं; आपने जो उवट-महीधरके वाक्योंसे "नमस्ते" को एकपद बताया है; वह भी आपकी भूल है। उवट महीधर आदिने 'नमस्ते' को एक-पद रूपमें कहीं भी व्यवहृत नहीं किया। 'हे महावीर! त्वं नोस्माकं पितासि, सर्वथा नमस्तेस्तु' यहांपर महावीरको अभिमुख करके सम्बोधित किया है; तब उसके परामर्शके लिये युष्मद् आदि सर्वनामका प्रयोग आवश्यक है अतएव वहां "नमः ते अस्तु" इस प्रकार ते (तुभ्यं) यह सर्वनाम व्यवहृत किया है। नहीं तो आप 'हे महावीर, तुझे नमस्कार हो' इस 'तुझे' शब्दका स्थानापन्न कौन सा पद मानेंगे; यदि 'ते' को पृथक्-पद न मानेंगे? और फिर 'नमः-ते' में 'विसर्जनीयस्य सः' से विसर्गोंको स होता है; तब क्या संन्धि हो जानेसे स्वामी जी दो पदोंको भी एक पद मान लेंगे? क्या शमस्ते, तमस्ते, दमस्ते, यमस्तेको वादी एक पद मानेंगे?

इसी प्रकार 'हे घर्म! सर्वथा नमः ते अस्तु' यह उवटका वाक्य भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि घर्म (तेज) को कहते हैं। सम्बोधनसे अभिमुख करके उसके आभिमुख्यके लिए 'ते' यह सर्वनाम अपेक्षित होता है। तो 'नमः-ते' में सकारकी सन्धि हो जानेपर वादीने इसे एकपद कैसे मान लिया? क्या सन्धियुक्त पदोंको वादी एक पद मानते हैं? क्या यशस्ते, यज्ञस्ते, व्ययस्ते एक-पद हैं? स्पष्ट है कि—उवटम-हीधरादि ने भी 'नमस्ते' एक-पद नहीं माना।' 'हे महावीर! आपको सब ओर से 'नमस्ते' यह आदरवाचक शब्द प्रयुक्त हो' यह

श्रीमहीधरके वाक्यका अर्थ वादीने किया है। उन्हें बताना चाहिये कि यदि वे महीधरके वाक्यमें 'नमस्ते' को एक-पद मानते हैं, तो उन्होंने 'आपको नमस्ते' यह 'आपको' तथा 'यह आदर-वाचक शब्द'-महीधरके किस शब्द के अर्थमें रखा है? यदि यह 'ते' का अर्थ नहीं है। और फिर 'नमस्ते' यह आदर-वाचक शब्द' ऐसा लम्बा अर्थ महीधरके वाक्यमें स्थित किस पदका है? स्पष्ट है कि—यह वादीका पक्ष निराधार है।

इसी प्रकार 'नमस्ते प्राण! क्रन्दते, 'नमस्ते स्तनयित्नवे' (अथर्व ११।४।२) इत्यादि मन्त्रोंमें भी 'नमः, ते' यह भिन्न-भिन्न पद हैं। अर्थ इस प्रकार है—हे प्राण! क्रन्दनशील तुझे नमस्कार, गर्जते हुए तुझे नमस्कार। 'नमस्ते प्राण! तिष्ठते आसीनाय उत ते नमः' (अ० ११।४।७) हे प्राण! खड़े होते हुए तुझे नमस्कार, बैठे हुए तुझे नमस्कार; इत्यादिमें भी 'नमः-ते' भिन्न-भिन्न पद हैं। इसमें 'आसीनाय उत ते नमः' यह इस मन्त्रका अन्तिम पाद ज्ञापक है, नहीं तो वादीके अनुसार, यहां चतुर्थ्यन्त 'आसीनाय' के होने पर 'ते' में चतुर्थी व्यर्थ है।

बल्कि यहां वादी से प्रष्टव्य है कि 'नमस्ते प्राण क्रन्दते' में यदि वादी के मत में 'नमस्ते' एक पद है, तो, उस 'नमस्ते' के योग में 'क्रन्दते' में चतुर्थी किस पाणिनि-सूत्र से है? यदि कहें कि—'नमः-स्वस्ति' (पा० २।३।१६) इस वेदाङ्गके सूत्र से; तो वादी के अनुसार तो मन्त्रमें 'नमः' पद ही नहीं।

किन्तु 'नमस्तो' पद है। पाणिनि-सूत्रमें 'नमस्तो-स्वस्ति' ऐसा पाठ ही नहीं, तव चतुर्थी कैसे हुई? यदि किसी अन्य सूत्र से हुई; तो 'नमः' में भी उसीसे हो जाती; तो 'नमः-स्वस्ति-स्वाहा'-सूत्रका निर्माण ही व्यर्थ था।

यदि 'नमस्तो' एक-पद है; तो यह कृदन्त-प्रयोग है, या तद्धितान्त? इसमें क्या प्रमाण है? वादिप्रतिवादिमान्य पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलिने अपने वेदांग-व्याकरणमें इसकी एकपदताकी सिद्धि कहां की है? हमारे मतमें यह दो पद हैं। उक्त मन्त्रोंमें 'नमः' पद होनेसे उसके योगमें प्राण के परामर्शक सर्वनाम 'ते' (तुभ्यं) में तथा उसके विशेषण 'क्रन्दते' में उक्त सूत्रसे उपपद-विभक्ति चतुर्थी हो गई। इस प्रकार हमारा पक्ष समूल सिद्ध हुआ कि—'नमस्तो' में 'नमः-'ते' यह दो पद हैं। उसमें 'ते' यह युष्मद्के अन्य एकवचन त्वं, 'त्वाम्, त्वया, तुभ्यं (ते), त्वत्, तव, त्वयि की तरह अप्रतिष्ठा का करनेवाला होनेसे प्रयोक्तव्य नहीं। अब यह बताया जायगा कि स्वा. द. के मत में तथा सभी इन शास्त्रोंमें 'नमस्तो' दो पद ही माने गये हैं; उसका एक-पदत्व शशशृङ्ग है।

(४) 'नमस्ते' का एक पद होना शशशृङ्ग
(निष्कर्ष)

(१) 'नमस्तो' का प्रचार स्वा. दयानन्दजीसे किया बताया जाता है, पर स्वामीजीने भी उसे कहीं एक-पद नहीं माना है, किन्तु दो पद ही माना है। स्वामीजीने यजुर्वेद-

संहिता का पूर्ण भाष्य किया है, ऋग्वेद-संहिताका अपूर्ण। जहां-कहीं भी वेदमन्त्रमें 'नमस्ते' आया है, वहां स्वामीजीने 'नमः, ते' इस प्रकार विच्छिन्न करके 'तुझे नमस्कार' इस प्रकार अर्थ किया है, तब स्पष्ट है कि—उनके मतमें ये दो पद हैं। अब उनके अन्य भी प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं।

(२) स्वामीजीने 'संस्कार-विधि' विवाहप्रकरणमें लिखा है—'नमस्ते' इस वाक्यसे परस्पर नमस्कार कर' (पृ० १३३) 'नमस्ते यह वेदोक्त वाक्य' (सं०वि०विवाह०पृ० १७५ की टिप्पणी)। यहां पर श्रीस्वामीजीने 'नमस्ते' यह 'वाक्य' माना है। वाक्य पदोच्चय—पद-समूहको कहते हैं। 'नमस्ते' को एक-पद मानने पर वह पदसमूह नहीं रहता। न्यूनसे न्यून दो पद मानने पर ही वह 'वाक्य' बना रह सकता है। एक पद मानने पर वह 'वाक्य' कैसे हो सकता है?

(३) अन्य प्रमाण यह है कि—'नमो ज्येष्ठाय च' (यजुः १६।३२) मन्त्रके अर्थको बताते हुए स्वा०द०जीने लिखा है—इस वाक्यका उच्चारण करके। 'अवोचाम नमो अस्मै' (ऋ० १।११४।११) इस मन्त्रके अर्थमें भी स्वा० द०जीने 'नमस्ते' ऐसे वाक्यको कहे' यह लिखा है। इन मन्त्रोंके अर्थ में भी स्वामीजीने 'नमस्ते' यह 'वाक्य' माना है, "नमस्ते' यह पद" इस प्रकार 'एक-पद' नहीं माना। इसमें अन्य विशेषता यह है कि—दोनों मन्त्रोंमें 'नमः' यह पद है 'नमस्ते' नहीं। तब स्वामीजीने उसके अर्थमें 'नमस्ते' यह वाक्य कैसे लिखा? इससे स्पष्ट है कि—वे 'नमः' इस पदको अभिवाद-

नार्थक मानकर सम्मुखस्थितको सम्बोधित वा अभिमुख करनेके लिए उसके साथ 'ते' यह सर्वनाम-शब्द भी जोड़ना चाहते थे। तब उनके मतमें 'नमस्ते' में दो पद होनेसे, उसके लिए उनसे प्रयुक्त 'वाक्य' शब्दकी सार्थकता हुई।

(४) 'नमस्ते' में दो पद इष्ट होनेका स्वा० द०जीका अन्य प्रमाण यह है कि–'आर्योद्देश्यरत्नमाला' आदिमें उन्होंने 'नमस्ते' का अर्थ 'मैं तेरा मान्य करता हूँ' इत्यादि लिखा है। स्पष्ट है कि इसमें का 'तेरा' शब्द 'ते' का ही अर्थ है और 'मान्य करना' यह 'नमः' का अर्थ है। इस प्रकार भी 'नमस्ते' में दो पद सिद्ध हुए। जब ऐसा है, तब 'नमस्ते' को एकपद-रूपमें प्रयुक्त करना वा उसे एक-पद सिद्ध करने की चेष्टा करना स्वामीजीसे विरुद्धता है, अथवा यह कहना चाहिये कि–अवैदिकता है।

(५) वेदकी रक्षार्थ पदानुक्रमणिकायें तथा पदपाठ बनाये जाते हैं। पदपाठ तो बहुत प्राचीन समयकी परम्परा से चला आ रहा है, इसमें कहीं भी 'नमस्ते' यह एक पद नहीं मिलता। स्वामीजीका भाष्य इस पर देखा जा सकता है।

(६) आर्यसमाजके श्रद्धेय स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी एवं स्वा० नित्यानन्दजी ने चार वेदसंहिताओंकी पदानुक्रमणिकाएं बनाई हैं, उनमें भी कहीं 'नमस्ते' यह पद ही नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि वेदमें 'नमस्ते' कहीं भी एक-पद रूपमें नहीं आया। एक ही मन्त्रमें ठहरे हुए 'नमस्ते' में का 'नमः'

शब्द 'न' अक्षरके क्रममें और 'ते' पद 'त' अक्षरके क्रममें आया है। इससे वादीका 'नमस्ते' को एक-पद माननेका पक्ष सर्वथा ही निरस्त हो जाता है।

(७) वेदकी रक्षाके लिए पदपाठके अतिरिक्त क्रम, घन, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ ये नौ, कुल दस पाठ आये हैं, पर इनमें कहीं भी 'नमस्ते' को एक-पद नहीं माना गया। इससे स्पष्ट है कि वेदमें 'नमस्ते' कहीं भी एक-पद रूप में इष्ट नहीं।

(८) फिर वेदके ज्ञानार्थ छः वेदाङ्ग भी बनाये गये हैं, पर उनमें भी कहीं 'नमस्ते' को एक पद नहीं माना गया। वेदाङ्गोंमें पदोंके ज्ञानार्थ व्याकरण सभीमें मुख्य है—'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' यह बात सर्वसम्मत है। पर उस व्याकरण में भी कहीं 'नमस्ते' एक-पद रूपमें व्युत्पादित नहीं किया गया। उसमें 'तेमयावेकवचनस्य' (८।१।२२) इस सूत्रसे षष्ठी तथा चतुर्थीके एकवचनमें 'तव' तथा 'तुभ्यं' को 'ते' किया जाता है। अव्ययोंमें 'नमः' पढ़ा गया है। कारकोंमें 'नमः' के योगमें चतुर्थी विभक्ति की गई है, तब वेदाङ्गके अनुसार वेदमें भी 'नमस्ते' पदद्वयात्मक ही सिद्ध हुआ। 'नमस्ते' पद कहीं भी स्मृत नहीं किया गया—जिससे उसके योगमें भी किसी विशिष्ट विभक्तिका विधान हो। शाकटायन, उज्ज्वलदत्त आदियोंने अपने उणादियोंमें, पाणिनिने अपने कृदन्तों व तद्धितोंमें 'नमस्ते' इस पदको कहीं भी निष्पन्न नहीं किया किसी गणपाठमें भी इसे एक-पदरूपमें निर्दिष्ट नहीं कि

गया। किसी अव्ययकी वा निपातोंकी अनुक्रमणिकामें भी 'नमस्ते' को एक पदरूपमें स्मृत नहीं किया गया। स्वा०द० जीने अपने 'अव्ययार्थभाग' में 'नमः' को तो लिखा है--'नमो नतौ'। पर 'नमस्ते' को अव्ययोंमें कहीं नहीं लिखा। इससे भी स्पष्ट है कि--व्याकरणमें भी 'नमस्ते' एक-पद नहीं। उसके किसी सूत्र वा उदाहरणमें भी उसे एक पदरूपमें नहीं माना वा स्मृत किया गया।

(९) अब वेदाङ्ग 'निरुक्त' को भी देख लीजिये। यह भी व्याकरणका पूर्तिकर्ता है। यह 'सर्वाणि नामानि आख्यात-जानि' इस सिद्धान्तका मानने वाला है। इससे 'नमस्ते' यह रूढि-शब्द तो रहा नहीं। शेष रही आख्यातसे प्रत्यय देकर निष्पत्ति, सो 'णम्' धातुसे असुन् प्रत्यय बनाकर 'नमस्, तो बनाया जाता है, पर कहीं 'अस्ते' प्रत्यय नहीं माना वा स्मृत किया गया, जिससे 'नमस्ते' एक-पद सिद्ध हो जावे। 'निरुक्त-के मूल निघण्टुमें 'नमः' शब्द तो आया है पर 'नमस्ते' नहीं। किसी कोषमें भी 'नमस्ते' एक पद नहीं। इससे स्पष्ट है कि-'नमस्ते' दो पद हैं।

(१०) अब वेदभाष्योंको लीजिये—। वेदके भाष्यकार श्री सायणाचार्य सुप्रसिद्ध ही हैं। अन्य भी वेङ्कटमाधव, उवट, महीधर, स्कन्दस्वामी, भवदेव, हरदत्त, आत्मानन्द, रावण आदि वेदोंके अंशतः भाष्यकार प्रसिद्ध हैं, पर वेदमें आये 'नमस्ते' को इनमें किसीने भी एक-पदकी तरह व्याख्यात नहीं किया। अर्वाचीन भाष्यकारोंमें स्वा०दयानन्दजी

सुप्रसिद्ध हैं—वादी के सम्प्रदायके वे आचार्य वा ऋषि कहे जाते हैं, पर उन्होंने भी वेदमन्त्रोंमें आये हुए 'नमस्ते' का कहीं भी एक-पदकी तरह व्याख्यान नहीं किया। सर्वत्र 'नमः, ते-तुभ्यम्' ऐसी व्याख्या की है। आज-कलके आर्यसमाजके वेदभाष्यकार श्रीराजारामशास्त्री, श्रीक्षेमकरण-त्रिवेदी, श्रीजयदेवविद्यालङ्कार, श्रीपाद-दामोदर सातवलेकर आदियोंमें भी किसीने 'नमस्ते' को कहीं भी एक-पदकी तरह व्याख्यात नहीं किया। तब उनसे विरुद्ध वादी का पक्ष ठीक कैसे माना जावे ?

(११) अब वेदके अन्तरङ्गकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। मन्त्रों पर स्वर भी दिये गये हैं, वे भी व्यर्थ नहीं हैं। वे भी वेदसे इष्ट पदको बताया करते हैं। 'नमस्ते' को दो पद मानने पर तो स्वरसञ्चार ठीक लग जाता है। 'नमस्' असुन्-प्रत्ययान्त (उ० ४।१८९) है। 'नित्' होनेसे इसे (पा० ६।१।१९७) आद्युदात्त स्वर होगा। शेषको अनुदात्त (पा० ६।१।१५८) होगा—'नमः'। फिर सन्धिमें उस अनु-दात्तको स्वरित (पा० ८।४।६६) होकर 'नमः' ऐसा बनेगा। 'ते' अनुदात्त (८।१।१८) है, उसको स्वरितपूर्व होनेसे (पा० १।२।३९) प्रचय होगा। प्रचयका कोई चिन्ह नहीं होता। यदि उसके सामने कोई उदात्त वा स्वरित आ जावे, तो उसे अनुदात्ततर (पा० १।२।४०) हो जाता है।

'नमस्ते' को एक पद मानने पर स्वरसंचार-विधायक कोई सूत्र नहीं मिलता। यदि इसे प्रातिपदिक मानकर अन्तो-

दात्त माना जावे तो ऐसी सिद्धि वैदिक-स्वरसे विरुद्ध होगी। यदि उसे निपात मानकर आद्युदात्त किया जावे तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि—इसकी निपातता ही असिद्ध है। किसी ने भी 'नमस्ते' को इसी रूपमें निपात वा अव्यय नहीं माना। भित्तिके ही असिद्ध होनेसे उस पर चित्र कैसे बन सकता है?

(१२) यदि वेदको 'नमस्ते' एक पद ही इष्ट होता, तो वेदमें उस (नमस्ते) के आगे कोई प्रत्यय वा समासयुक्त शब्द वहीं आता। पर वेदमें 'नमस्' के आगे तो प्रत्यय वा समास-युक्त शब्द आते हैं, 'नमस्ते' के आगे नहीं जैसे कि—'नमस्यः' (ऋ० २।१।३) 'नमस्यन्ति' (१।३६।१६) 'नमस्यन्तः' (१। ११५।३) 'नमस्युः' (८।२७।११) 'नमस्यामः' (३।१७।४) 'नमस्वी' (१।३६।७) नमस्वत्' (१।१८५।३) 'नमस्विनः' (७।१४।१) 'असमदुक्तः...नमस्वान्' (४।४।११) एतदादिक स्थलोंमें 'नमः' के आगे प्रत्यय आये हैं। नमोभिः' (ऋ० १।२४।१४) 'नमसा' (१।५७।३) यहां पर 'नमः' के आगे विभक्ति आई है।

'नमोवाके' अथर्व० (१३।६।५) 'नम-उक्तिः' (ऋ० ३। १४।२) 'नमः-वृक्तिः' (१०।१३१।२) 'नमःवृधः' (३। ४३।३) 'नमस्कारेण' (अथर्व० ४।३९।९) 'नमस्कृत्य' अ० ७।१०७।१) इत्यादिमें नमस्' के आगे समासयुक्त शब्द भी आया है, पर 'नमस्ते' के आगे न कोई प्रत्यय न कोई विभक्ति, न कोई समासयुक्त शब्द आया है। तब तो 'नमस्ते' पदका ही

अत्यन्ताभाव सिद्ध हुआ।

(१३) इसके अतिरिक्त वेदमें 'नम-उक्ति विधेम' (ऋ० १। ११८९।१) 'नम उक्ति जुषस्व' (ऋ० ३।१४।२) 'नम उक्तिम् अहमदिक्षि (ऋ० ५।४३।९) 'नम उक्तिभिः (ऋ० २।४।६), 'नम इत्कृणोमि' (अ० ६।२।१९) 'नमो भरन्तः' (ऋ० १।१।७) 'नम एवास्तु' (अथर्व० १।१३।३) 'अवोचाम नमो अस्मै' (ऋ० १। ११४।११) 'अकरं नमः' (अ० १४।२। ४६) 'नमः कुरु' (अ० १४।२। २०) 'इदं पितृभ्यो नमो अस्तु' (ऋ० १०।१५।२) 'नमः पुरा ते...ब्रवाम' (अ० २।२८।९) 'यजाम (पूजयामः) इद् नमसा (नमः-शब्देन) वृद्धमिन्द्रम्' (ऋ० ३।३२।७) [यहां नमः शब्द से वृद्ध का पूजन कहा है, छोटे का नहीं] 'नमः इन्द्राय वोचत' (ऋ० २।२१।२) [यहां पर 'नमः' का कहना कहा है; 'नमस्ते' का नहीं।] 'उप ब्रुवे नमसा (नमः-शब्देन) दैव्यं जनम्' [यहां 'नमः' का विधान है 'नमस्ते' का नहीं।] इस प्रकार इन स्थलों में 'नमः' का कथन तो आया है 'नमस्ते' का नहीं।

'नमसा -नव्यः' (ऋ० १।६२।१) 'नमसा···सपर्यन्ति' (१।८४।१२) 'नमसा विधेम' (१।११४।२) 'नमसाऽहमेमि' (१।१७१।१) यहां पर 'नमः' शब्दसे पूजा मानी गई है 'नमस्ते' से नहीं। 'नमस्तेभ्यः' (यजुः १६।६५) 'नमो वः' (अ० १८।४।८५) 'तेभ्यो वो नमः' (अ० ३।२६।१) 'नम एभ्यः' (अ० ३।२७।१) 'नमो वाम्' (गोपथब्राह्मण १।२।५) 'नमो वाम्' (अथर्व० ११।२।१) इत्यादि वेद

मन्त्रोंमें द्विवचन, वहुवचनमें 'नमस्ते' न आकर 'नमः' ही आया है, सर्वनाम 'वाम्, वः' आदि भिन्न-भिन्न आये हैं। 'नमोस्तु ते' (अ० ६।१३।१) इत्यादिमें 'नमः—ते' के मध्यमें 'अस्तु' का व्यवधान आया है; इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि वेदके मतमें 'नमस्ते' यह दो भिन्न-भिन्न पद हैं, एक-पद नहीं, और वेदको भिन्न-भिन्न अवसर पर भिन्न भिन्न सर्वनाम अपेक्षित हैं; 'ते' अनिवार्य नहीं।

(१४) 'नमस्ते' को एक-पद सिद्ध करनेके लिए वादीने वेदमन्त्रोंमें जहां गुणवाची शब्द था, अथवा स्वस्वामिभाव-वाला सम्बन्धी शब्द 'हरः, शोचिः, (नमस्ते-प्रदीप पृ० ५) चक्षुः (पृ० ६) मन्यु (पृ० ११) इषु (पृ० १३), सेना (पृ० १७) मूल, भेषज (पृ० ८) इत्यादि था; वहां पर उसे गुणि-शब्द बना दिया है, अथवा 'स्व' को 'स्वामी' बना दिया है। दूसरे के साथके 'ते' को नमस्ते' से सम्बद्ध कर डाला है। ऐसा असत्य—व्यवहार किये बिना 'नमस्ते' एक पद नहीं बन सकता था। इसीके फलस्वरूप वादीने कहीं पर मन्त्रके कई पूर्वाक्षर, कहीं अग्रिम अक्षर छिपा लिये हैं; कहीं 'अस्यते' इत्यादि एक पदको पदद्वय बनाकर विच्छिन्न कर दिया है। कहीं मन्त्र के उत्तरार्धको छिपा दिया है कि—'नमस्ते' बहुवचनमें भी सिद्ध हो जावे। कहीं सम्बुद्धि-पदका षष्ठ्यन्त अर्थ कर दिया है।

सम्बुद्धिपद मन्त्रमें कहीं पूर्वार्धमें कहीं उत्तरार्धमें कहीं दोनों स्थलोंमें होता है; उसका सम्बन्ध सारे मन्त्रसे होता है। पर

वादी उत्तरार्धमें विद्यमान सम्बुद्धि-पदको सारे मन्त्रके साथ न जोड़कर, पूर्वार्धको उस सम्बुद्धि—पदसे स्वतन्त्र कर देते हैं। 'नमः, नमस्ते' इनका पृथक्-पृथक् अपने-अपने चतुर्थ्यन्त पदोंके साथ अन्वय वेदाभीष्ट होने पर भी उन चतुर्थ्यन्त पदों का एक स्थानमें अर्थ करके वहां 'नमः, नमस्ते' को इकट्ठा रख दिया करते हैं और उनका 'पुनः-पुनःनमस्ते हो' यह अर्थ कर दिया करते हैं।

जहां-जहाँ वादीने 'नमस्ते' देखा है; वहाँ पर 'तुभ्यं नमः' यह अर्थ न करके अपनी कपोल—कल्पनासे 'तुभ्यं' अध्याहृत करके 'तुभ्यं नमस्ते' यह सत्कार वाचक पद हो' इस प्रकार मन्त्रमें अविद्यमान भी 'यह सत्कारवाचक पद' का स्वयं प्रक्षेप कर दिया है; और मन्त्रमें 'तुभ्यं' अर्थ बताने वाले पद का अभाव बताकर वेद में न्यूनपद दोष सूचित कर दिया है। इस विषयमें वादी ने किसी छल वा असत्य—व्यवहारसे सङ्कोच नहीं किया है।

इस प्रकार सिद्ध हो गया कि—'नमस्ते' का एकपदत्व 'शश-शृङ्ग' है। श्रीशेरसिंह जी 'नमस्तेकी प्राचीनता' (१६ पृष्ठ) में 'नमः—नमस्ते' को एकार्थवाची मानने वालेको 'हठी' कहते हैं। वादी ने 'नमस्ते-प्रदीप' के २१ पृष्ठमें पूर्वपक्षी द्वारा स्वयं कहलवाया है कि— नमस्ते' को आज तक किसी ने भी एक-पद नहीं माना, केवल आप ही (स्वा०रामेश्वरानन्दजी) ही यह हठ करते हैं'। अतः 'नमस्ते'को एक-पद मानना निर्मूल, अवैदिक एवं हठमात्र है। विद्वानोंको ऐसे दुष्प्रचारों

को रोकनेमें तत्पर रहना चाहिए' अन्यथा संस्कृतभाषाके विरूप वा विकृत होने की आशंका है।

(५) क्या नमस्ते अव्यय है ?

'सत्यार्थ-प्रकाश,' केग्रन्थसाहिब-संस्करण के पृ० ३६ की टिप्पणीमें स्वा० वेदानन्दजी लिखते हैं—'नमस्ते अव्यय एक पद भी है, जैसे—'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च। सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिभ्यः' (रसेन्द्रसारसंग्रह, रसशोधन-संस्करण) अर्थात् अघोर, घोर, घोरतर, अघोरतर सब ओर से सरकनेवाले रुद्ररूपी रोगहेतुओंको 'नमस्ते'। यदि यह एक-पद न होता; तो 'नमस्ते' न होकर यहां 'नमोऽस्तु' होता। इसी प्रकार स्वा० रामेश्वरानन्दजीने 'नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः (१६।१६) यह नारायणोपनिषद् का प्रमाण देकर उक्त-पक्ष सिद्ध करनेकी चेष्टा की है।

समीक्षा—आर्यसमाजियों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि अपने पक्षका विघात होता हो; तो वेदको भी तोड़-मरोड़ कर रख देते हैं; और अपना पक्ष बनता दीखे; तो एक अप्रसिद्ध वा अप्रामाणिक पुस्तकको भी प्रमाणित कर लिया करते हैं। यहां भी यही बात है। यहां स्वामीजीने बहुवचन में आपाततः 'नमस्ते' देखकर बहुवचनकी कल्पना की है। वस्तुतः यहाँ बहुवचनमें 'नमस्ते' नहीं है, किन्तु एकवचनमें है, अतः यहां एकपद न होकर दो पद ही हैं। यह यहां उनकी अपनी भूल रही है। यहांपर उन्होंने 'सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो' यह पाठ गलत दिया है, यहां 'सर्व सर्वेभ्यः' यह पाठ नहीं, किन्तु

'शर्व सर्वेभ्यः' यह पाठ है। इस देशमें 'स, श' की बड़ी भूल फैली हुई है; सो यहां 'शर्व'के स्थानमें 'सर्व' पाठ बन गया है। 'रुद्ररूपिभ्यः' पाठ भी नहीं है, किन्तु 'रुद्ररूपेभ्यः' यह पाठ है। शुद्ध पाठ यह है—'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वतः शर्व ! सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्र! रूपेभ्यः' यह पाठ 'रुद्राष्टाध्यायी' के शान्त्यध्याय (१०।८) में भी है, तथा तैत्तिरीयारण्यक (१०।४५) में भी है, यही नारायणोपनिषद् (१६) में भी है। यहां पर 'शर्व !' तथा 'रुद्र' ये दो पद सम्बोधनान्त हैं, और एकवचन हैं। अब अर्थ हुआ है कि हे शर्व ! रुद्र ! ते-तव अघोरेभ्यः, घोरेभ्यः घोरघोरतरेभ्यः रूपेभ्यो नमोस्तु' अर्थात् हे महादेव ! तेरे घोर-अघोर आदि रूपोंको नमस्कार हो। सो यहां एकवचनमें ही यह प्रयोग प्रतिफलित हुआ, तब यहां एक-पद अव्यय कैसे हो सकता है? यहां तो 'ते-तव रूपेभ्यो नमोस्तु' यह अर्थ है।

अथवा 'शर्व !' पाठ न मानकर यहां 'सर्व' भी पाठ मान लिया जाय; वह भी तो सम्बुद्धिपद है, और महादेवार्थक है। देखिये अमरकोषकी सुधा-व्याख्या—'षर्व गतौ (भ्वा. प. से.) इत्यतः 'षर्व हिंसायाम्' (भ्वा. प. से.) इत्यतो वा बवयो रभेदात् पचाद्यचि (३।१।१३४) सर्वः अपि। 'सर्वस्तु ... भगवान् शम्भुः कालञ्जरः शिव.' इति नामविधानात्' (१। ३०-८) सो यहां 'सर्व !' के सम्बोधन होने से हे सर्व ! शम्भो ते-तव रुद्ररूपेभ्यः भीषणरूपेभ्यो नमोऽस्तु' यहां एकवचन में ही 'नमस्ते' होनेसे 'दो पद' हो गये। इस प्रमाणसे इस

अव्ययता-एकपदता असिद्ध हो गई। प्रतिपक्षीने 'रुद्ररूपी रोग हेतुओंको' यहां 'रोगहेतुओंको' यह विशेष्य बनाया है; वह मन्त्र में नहीं है। 'रुद्ररूपेभ्यः' ही पाठ है और वही विशेष्य है; और यहां श्रीमहादेवका वर्णन है। फलतः वादीका एतद्विषयक पक्ष खण्डित हो गया। नारायणोपनिषद्में भी १६वीं कण्डिका में 'शर्वाय नमः, शिवाय नमः, शिवलिङ्गाय नमः' और ८वीं में 'रुद्राय नमः' इस प्रकार महादेवका प्रकरण चालू है। तब 'नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः' का अर्थ हुआ कि—हे महादेव! ते-तव रुद्ररूपेभ्यो नमः—तेरे रुद्र-रूपोंको नमस्कार। यहां भी बहुवचन में 'नमस्ते' न होकर 'नमः' ही सिद्ध हुआ। 'ते' तो षष्ठचन्त होनेसे 'नमः' से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। अतः स्पष्ट है कि वेदादि शास्त्रों मे कहीं भी बहुवचनमें 'नमस्ते' न होनेसे वह एकपद अव्यय नहीं।

(ख) इसी प्रकार जो लोग 'नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः' 'नमस्ते लाङ्गलेभ्यः' 'नमस्ते अस्तु पश्यत' 'नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः, 'नमस्ते देवसेनाभ्यः' इन मन्त्रोंमें बहुवचनमें 'नमस्ते' बताकर इसे एकपद अव्यय सिद्ध किया करते हैं, इनका भी प्रत्युत्तर हम पूर्व दे चुके हैं कुछ आगे देने वाले हैं। कई लोग 'नमस्ते सते ते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्व लोकाश्रयाय। नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय, इस स्तोत्र द्वारा 'नमस्ते' की एक-पदता बताते हैं यह भी उनके अज्ञान का कारण है। यदि इसमें 'नमस्ते' एक-पद होता; तो उत्तरार्धमें 'नमः' पद न

होता; 'नमस्ते' ही होता; पर नहीं है, अतः वादियों का पक्ष गलत है। यहां योजना इस प्रकार है—'नमः ते (तुभ्यं) सते तुझ सत् को नमस्कार हो, जगत्कारणाय ते तुभ्यं; नमः—तुझ जगत्कारण को नमस्कार हो। चिते ते [तुभ्यं] नमः—तुझ चित् स्वरूप को नमस्कार हो। इस प्रकार वादियों का पक्ष कट गया। परमात्मा को अभिमुख करके उसे 'ते' [तुभ्यं] कहा जा रहा है, सो परमात्माको तो सभी भाषाएं युष्मद् का एक वचन देती हैं; तव इसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं आता।

'नमस्ते' के विषयमें उसके पक्षपातियोंसे यह प्रष्टव्य है कि—यह एक-पद है, या दो पद हैं? इसमें परिवर्त्तन हो सकता है वा नहीं? यदि किसीको आदरार्थ बहुवचन देना हो; जैसेकि इस विषयमें प्रमाण आगे दिये जा रहे हैं—तो उसमें 'नमस्ते' लिखा जावेगा, या 'नमो वः'? यदि 'नमस्ते' तो यह वेद-विरुद्ध है, 'वहां बहुवचन में 'नमो वः' आया है 'नमो वः पितरः, पितरो नमो वः' (यजु० २।३२] यदि 'नमो वः', तो इसमें परिवर्त्तन सिद्ध होगया, 'नमस्ते'की अपरिवर्त्तनीयता खण्डित हो गई। फिर आप नमः श्रीमते, नमो भवद्भ्यः' ऐसा क्यों नहीं कहते वा लिखते? आप बड़े को संस्कृतमें पत्रव्यवहारके समय क्या युष्मद्—शब्दके एक-वचन त्वं त्वां, तुभ्यं, तव, आदि देते हैं? यदि नहीं, तो उसे 'नमस्ते' क्यों लिखते हैं? वेदमें 'नमः, वन्दे, नमस्कारः' भी आया है, उसका प्रयोग क्यों नहीं करते।

'नमस्ते' यदि दो पद हैं, उसमें 'नमस्कार वाचक 'नमस्' है, 'ते' नहीं, तब ते' में आग्रह क्यों ? क्या 'ते' का परिवर्तन पूर्वानुसार नहीं हो सकता ? यदि वेदमें 'नमो भवद्भ्यः' नहीं आता; अतः उसे नहीं लिखते तो वेद में 'परमेश्वर' शब्द भी नहीं आता; उसे क्यों लिखते हो ?

(६) सम्मानमें बहुवचन

अब हम माननीय-महोदयों को बहुवचन भी दिया जाता है; इस विषय के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं। यह बात व्याकरण-सिद्ध भी है, साहित्यप्रयुक्त भी है, आर्ष-साहित्यमें भी है, वादिजन-प्रयुक्त भी है, वादियों के स्वामीसे भी प्रयुक्त है व्यावहरिक भी है।

१. पं० वरदराजने अपने गुरु श्री भट्टोदीक्षित के लिए मध्यसिद्धान्तकौमुदीके आरम्भमें बहुवचन दिया है—'नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्, २. श्रीविश्वनाथकविराज ने जो १८ भाषाओंके पण्डित थे—अपनी पुस्तक साहित्यदर्पण के द्वितीय परिच्छेदमें अभिधामूल-व्यञ्जनाके उदाहरणमें अपने पिताको 'यथा मम तातपादानां श्रीचन्द्रशेखरसांधिविग्रहि-काणाम्' यहां बहुवचन दिया है। उसके पिता बहुत नहीं थे; अतः यह बहुवचन पिताके सम्मानको वता रहा है। ३ श्रीमम्मटभट्टने अपने काव्यप्रकाशके चतुर्थ-उल्लासमें रसका सिद्धान्तपक्ष दिखलाते हुए श्रीअभिनवगुप्तका—'श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादाः' इस प्रकार बहुवचनसे उल्लेख किया है। ४ न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकार श्रीविश्वनाथ

न्यायपञ्चाननने अपने 'मांसतत्त्वविवेक' में—'कुल्लूकभट्टास्तु तत्र मांसपदं प्रतिषिद्धमांसपरमिति व्याचक्रुः' इस प्रकार श्री-कुल्लूकभट्टको बहुवचनसे सम्मानित किया है। ५' सांख्यदर्शन के भाष्यकार श्रीविज्ञानभिक्षुने १।१ सूत्रके भाष्यमें 'योगभाष्ये व्यासदेवैरुक्तम्' यहांपर व्यासजीको बहुवचन दिया है। ६. महाकविभवभूतिप्रणीत-उत्तररामचरितमें 'वाष्पवर्षेण नीतं वो' (६।२९) लवने श्रीरामको 'वः' कहकर बहुवचन दिया है। इस प्रकार वहीं 'मृष्यन्तु इदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः।' और 'आगतेषु वसिष्ठमिश्रेषु' (४ र्थ अङ्क) में ये बहुवचन दिये हैं। ७. शाकुन्तल-नाटकमें नटी सूत्रधारको 'आर्यमिश्रैः राज्ञप्तम्' यहांबहुवचन देती है, इस प्रकार महाकवि-कालि-दासने सम्मानमें बहुवचन सिद्ध किया है। ८. महाकवि श्री-बाणभट्टसे बनाये हुए 'हर्षचरित'के २यउच्छ्वासमें 'धीमद्भि रपहरणीयः कालातिपातः' यहां कृष्णदूत-मेखलकके द्वारा श्रीबाणभट्टको 'धीमद्भिः' पद-द्वारा बहुवचन दिलाया गया है। इस प्रकार ३योच्छ्वासमें राजा पुष्पभूतिने 'आसतांच भवन्त एवात्र' यहां भैरवाचार्यको सम्मानमें बहुवचन दिया है।

अब कुछ आर्ष-पुस्तकोंके प्रमाण भी देखिये—९. अष्टा-ध्यायी (७।३।४६, ८।४।५२ सूत्र) में 'आचार्याणाम्' पदसे गुरुको बहुवचन दिया है, जैसे कि प्रसिद्ध है—'एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरौ आत्मनि चेश्वरे' (समृद्धे, स्वामिनि वा)। पदमञ्जरीके द्वितीय-भाग ८२१ पृष्ठ में श्रीहरदत्तने

'आचार्याणां' के बहुवचनकेलिए कहा है—'आचार्यस्य पाणिनेर्य आचार्यः, स इह आचार्यः, गुरुत्वाद् बहुवचनम्'। १०• इसी कारण काशिका (१।२।५९) में 'युष्मदि गुरौ एकेषाम्' इस वार्तिकका 'यूयं मे गुरवः' यह गुरुमें बहुवचन उदाहृत किया गया है। ११. अष्टा० (४।१।१६३) सूत्रके महाभाष्यमें 'वृद्धस्य च पूजायाम्' वार्तिकके उदाहरणमें 'तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः' यहां पूजामें बहुवचन दिया है। १२ महाभाष्य पस्पशान्हिक में 'ते तत्रभवन्तो यद्वा नः, तद्वा न इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाणः इति प्रयुञ्जते; याज्ञे कर्मणि पुनर्नापभाषन्ते, यहां पर एक ऋषिको सत्कारमें बहुवचन दिया है।

१३ 'सर्वानुक्रमणी' में 'नमोऽत्रिभ्यः' (५।२४) पर वेदार्थदीपिका में श्रीषड्गुरुशिष्यने लिखा है—'अत्रिशब्दात् पूजायां बहुवचनम्'। १४ 'अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके ऋषिदैवतच्छदांस्यनुक्रमिष्यामो यथोपदेशम्' [सर्वा. १।१] यहां पर षड्गुरुशिष्यने लिखा है, 'ननु एकोपि शौनकाचार्यशिष्यो भगवान्-कात्यायनः, कथं बहुवचनम् ? उच्यते—व्याख्येयार्थ-बहुत्वेन बहुमानेन चात्मनः। व्याख्यात्रात्मनि-अथारोप्य बहुत्वं तु प्रयुज्यते' यहां पर अपने लिए बहुवचन देनेके कारणमें 'एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरौ-आत्मनि' यह पद्य दिया जा चुका है। स्वा०द०ने भी अपने लिए बहुवचन दिया है। 'जिनका नाम दयानन्द सरस्वती है उन्होंने इस वेद-भाष्य को रचा है [ऋ०भा० भू० पृ० २] १५. 'इक्ष्वाकूणां' [वाल्मी. ३।४७।४] इसकी टीकामें गोविन्दराजने लिखा है—

'इक्ष्वाकुवंशस्य रामस्य पूजायां बहुवचनम्' १६. निर्जिता तव पुत्रकैः' [वाल्मी. १।६८।८७] 'पुत्रकैः' इस बहुवचन पर रामाभिराम टीकामें लिखा है—'पुत्रकैः—तव पुत्रेण रामेणेत्यर्थः' जामातृ-बुद्धया, महाबलत्वेन, ईश्वरबुद्धया च पूज्यत्वेन बहुवचन-प्रयोगः'। १७. 'ऋति सवर्णे ऋ वा' वार्तिकपर तत्त्वबोधिनीकार श्रीज्ञानेन्द्रसरस्वतीने 'भाष्यकारैरेतद्-वार्तिकद्वयस्य प्रत्याख्याततत्वात्' यहां भाष्यकारको बहुवचन दिया है।

१८.' प्रचोदयन्तां पावमानी......व्रजत' [अथर्व. १९।७१।१] यहां पर गायत्रीको बहुवचन देनेके लिए सर्व-वेद-भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने कहा है— 'अत्र पूजार्थं बहुवचनम्'। १९. वायवस्थ' [शु. यजुः १।१] इस पर श्रीउवटाचार्यने भाष्यमें लिखा है—'वत्सं शाखया उपस्पृशति... पूजार्थं वा 'बहुवचनम्'। २०. 'होता यक्षदिडाभिः' [२।६।७।३] इस तैत्तिरीयमन्त्रके भाष्यमें श्रीसायणने लिखा है—'बहुवचनं पूजार्थम्'। २१. युष्माभिः स्तुतयो' [१२ अध्याय] दुर्गासप्तशती के इस बहुवचन के लिए श्रीनागोजीभट्टने लिखा है—'बहुवचनं पूजायाम्'। २२. मुद्राराक्षस-नाटकमें विराधगुप्त राक्षस [सुबुद्धि-शर्मा] को "पुनरपि नन्दराज्य-प्रत्यानयनार्थं सुरङ्गामभिगतेषु युष्मासु' [२य अङ्क] में सम्मानार्थ बहुवचन दिया है 'इस प्रकार छठे अङ्कमें' 'अमात्या राक्षसपादाः' में भी। २३. 'रसगंगाधर' में पण्डित-राज जगन्नाथने 'आनन्दवर्धनाचार्यास्तु..........प्राप्तश्रीरेव'

इत्याहुः [पृ० २४७] यहां भी बहुवचन दिया है । २४. उत्तररामचरितमें 'आर्यपुत्र ! युष्माभिरपि तत्र गन्तव्यम्' यहां सीताजीने श्रीरामको बहुवचन दिया है । वनदेवता—वासन्तीने आत्रेयीको 'यथेच्छाभोग्यं वः [२।१] यहां उसे बहुवचन दिया है, इस पर प्राचीन टीकाकार वीरराघवने लिखा है 'पूजायां बहुवचनम्' ।

२५. इस प्रकार सम्मानार्थमें बहुवचनके उदाहरण सैंकडों दिये जा सकते हैं, पर हम उन्हें छोड़कर आर्य-समाजियोंके दादागुरु स्वा० द० जी के देते हैं, उनके अनुयायी उन्हें 'वैदिकमहर्षि' मानते हैं, उनसे बढ़कर किसीको भी प्रमाण नहीं मानते । 'आर्यधर्मेन्द्र-जीवन' की भूमिका [६६ पृ०] में मा० आत्माराम अमृतसरीने लिखा है—'दयानन्द मनु-गौतम-व्यासादिके समान ऋषि-श्रेणीके पुरुष थे । जिस प्रकार ये आप्त थे, उसी प्रकार दयानन्द आप्त थे । ऋषि दयानन्द वेदोंके सर्वविद्यामय मूलरूपी सिद्धान्तको योगदृष्टिसे निर्भ्रान्त जानते थे' [पृ० २] । [ख] 'आदिम-सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त' में आर्यसमाजके प्रमुख स्वा० श्रद्धानन्दजीने लिखा है—'निस्सन्देह इस युगका आचार्य दयानन्द ही है । इसलिए उसका प्रत्येक लेख और प्रत्येक आचरण एक विशेष गौरव रखता है । उसके किसी लेख और किसी भी व्यवहारहको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता' । जब ऐसा है, तब स्वामीके लेखमें ही सम्मानार्थ बहुवचन मिलजावे, तो उनके अनुयायियोंको वह बात वैदिक माननी

पड़ेगी । अब वे स्वामीके वैसे उद्धरण देखें ।

(अ) स्वा.द.ने अपने गुरु स्वा. विरजानन्दको बहुत स्थानों में बहुवचन दिया है—संस्कारविधिके अन्तमें देखिये—'श्रीयुत विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण (आ) केवल यहीं नहीं, अपने प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' के अन्तमें भी 'परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण' । (इ) इस प्रकार 'आर्याभिविनय'के अन्तमें (ई) अपने यजुर्वेदसंस्कृत-भाष्यके चतुर्थाध्यायके अन्तमें भी श्रीयुतमहाविदुषां विरजा-नन्द-सरस्वती-स्वामिनां शिष्येण' । इस प्रकार ५, ६, ७, ८, ९, १० आदि अध्यायोंके अन्तमें भी । (उ) 'पारिभाषिक' के अन्त (पृ० ५६) में । (ऊ) श्रीविरजानन्दसरस्वती—स्वामिभिः सुशिक्षितेन (सामासिक पृ० ६३) में । (ऋ) स्वामीने केवल बहुवचन देकर अपने गुरुको सम्मानित ही नहीं किया; किन्तु बहुवचन को आदरार्थक माना भी है । पञ्चमहायज्ञविधि 'वनस्पतिभ्यो नमः' के बहुवचनमें परमेश्वर-अर्थ करते हुए स्वामीने मूसल-ऊखल द्वारा परमात्माको ग्रास देकर जहां मूर्ति-पूजा की है, वहां यह भी लिखा है—'बहुवचनमत्र आदरार्थं' (शताब्दीसं० पृ० ८८६) (ॠ) आर्याभिविनयके प्रथमप्रकाश में 'तन्न इन्द्रो'की व्याख्यामें 'यूयं पात' के बहुवचन पर स्वामी लिखते हैं—'आदरार्थं बहुवचनम्' (३९ पृ०) (लृ) 'आ' ४१ पृष्ठमें 'नेह भद्रं' मन्त्रकी व्याख्या करते हुए 'वः ऊतय' के बहुवचन पर स्वामी लिखते हैं—'बहुवचनमादरार्थम्' इससे स्वामीके मतमें आदरके लिए एकको बहुवचन देना वैदि

सिद्ध होता हैं। तब फिर बहुवचनमें 'सब सभासदोंको 'नमस्ते' नमस्ते-प्राचीनता (पृ० ३२) के अनुसार लिखते हुए स्वा०द० वेदसे विरुद्ध सिद्ध हुए; क्योंकि—वेदमें बहुवचनमें 'नमो वः पितरः (यजु० २।३२) यह आया है। (ए) इस प्रकार स्वा.द० ने पाणिनिको (ऋ० भू० भा० पृ० ८७ में) (ऐ) 'यास्काचार्य' को (१४६ पृष्ठमें) (ओ) मैक्समूलरको (७५पृ०) बहुवचन दिया है।

(औ) श्रीसत्यव्रतसामश्रमीने निरुक्तालोचन (१९९ पृष्ठ में) अस्मद्गुरुचरणास्तु अत्रैवमुपादिशन्' (निरुक्तालोचन पृ० १९९) यहां गुरुको बहुवचन दिया है। (अं) श्रीधर्मदेवजीने 'श्री' (४।१) पत्रिकामें श्रीदीनानाथ-शास्त्रिणां' यह बहुवचन लिखा है। (अः) श्रीब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु हमें अपने पत्रमें बहुवचन देते हैं; जब ऐसा है, तो वहां 'नमस्तो' कैसे लिखा जा सकता है, क्योंकि—यहां 'तो-मया—वेकवचनस्य' (पा० ८।१।२२) 'ते' एकवचनके लिए होता है। वह तो 'नमो वः पितरः' (अथर्व० १८।४।८५) इस निर्देशसे वेद-विरुद्ध सिद्ध है। इसलिए यह विद्वान् हमें 'प्रणाम, नमोऽस्तु, आदि लिखते हैं—'नमस्ते' नहीं। तब 'नमस्तो' में परिवर्त्तन सिद्ध हो गया, इस अवसर पर भी 'नमस्ते' देने वाले अवैदिक सिद्ध हो गये; क्योंकि—नमस्कार सम्मानितको कहना लिखना—पड़ता है, और वहां बहुवचन इष्ट होता है, सम्मानमें आजकल किसीको भी युष्मद्का एकवचन किसी भी भाषामें नहीं दिया जाता। तब 'नमस्ते' वाद अवैदिक सिद्ध हुआ।

(७) 'नमस्ते-विधान' का प्रतिविधान

आजकल आर्यसमाजकी कृपासे 'नमस्ते' शब्दका अंग्रेजी शिक्षितोंमें, बहुत प्रचार है। इस प्रचारको शुद्ध सिद्ध करनेकेलिए आर्यसमाजियोंमें बहुत 'ट्रैक्ट' बन चुके हैं, उनमें श्रीदेवानन्द संन्यासीसे बनाया हुआ एक 'नमस्ते-विधान' ट्रैक्ट भी है। इस में नमस्कार-आशीर्वाद उभय-पक्षमें 'नमस्ते'के प्रयोगकेलिए वेद, महाभारत, रामायण, पुराण-आदिके बहुत प्रमाण देकर अपने पक्षको सिद्ध करनेकी स्वामीने असफल चेष्टा की है। परन्तु उभयपक्षसे 'नमस्ते' का प्रयोग शास्त्रविरुद्ध है। उक्त-ट्रैक्टकी आलोचना करनेसे 'नमस्ते' पर भी विचार हो जायगा तथा उक्त ट्रैक्टके प्रमाणों पर आलोचना भी हो जायगी। पाठक इस आवश्यक विषयकी ओर अवश्य ध्यान देंगे—यह आशा है।

'नमस्ते-विधान' बनाते हुए उसके प्रणेताने किसी धर्म-शास्त्र से यह विधि नहीं दिखलाई कि प्रणाम एवं आशीर्वाद के अवसरपर 'नमस्ते' ही कहना चाहिए, उससे भिन्न कोई शब्द नहीं। यह भी उसमें सिद्ध नहीं किया गया कि 'नमस्ते' में परिवर्तन क्यों नहीं हो सकता? तब विधि न होनेसे 'नमस्ते-विधान' यह नाम ही निराधार है। उसके अन्तमें "नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च" (१६।३२) यह यजुर्वेद वा० सं० का प्रमाण दिया गया है। इस मन्त्र में 'नमो ज्येष्ठाय' इत्यादि तो कहा है, परन्तु 'नमस्तो-इति ज्येष्ठाय, नमस्तो. इति कनिष्ठाय च वाच्यम्'

इसप्रकार 'नमस्ते की विधि नहीं की गयी है, तब इस पुस्तकका नाम 'नमस्ते -विधान' ठीक नहीं। व्यवहार में भी 'नमस्ते' न कहकर 'नमः' ऐसा कहना चाहिए। तब उक्त मन्त्र के अनुवादके अवसर में "बूढ़े-बालक, बड़े-छोटे, बराबर-शिशु, नीच-उच्च, सब परस्परमें नमस्ते का व्यवहार करें" यह लिखना आग्रहवाद तथा साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है, क्योंकि मन्त्रमें 'नमः' है, 'नमस्ते' नहीं। फिर लेखकसे दिये गये महाभारत आदिके प्रमाणोंमें भी उक्त मन्त्रानुसार छोटे-बड़े दोनों ओर से 'नमस्ते' नहीं मिलता, तब 'नमस्ते' वाद असिद्ध हो गया। उक्त मन्त्रका वास्तविक उत्तर हम इस निबन्धके अन्तमें देंगे।

पहले वादीसे प्रश्न है कि 'नमस्ते' ये दो पद हैं या एक पद ? यदि एक पद है, तो इसमें वैदिक वा शास्त्रीय क्या प्रमाण है ? तब वेदमें बहुवचनमें 'नमो व पितरः' (यजुः २।३२) यह पाठ क्यों मिलता है ! एक-पद होतेसे यहां पर 'नमस्ते पितरः' यह पाठ क्यों नहीं रखा गया ! वेदादिमें 'नमोस्तु' (यजुः १६।८) आया हैं, एकपद होनेसे वहां 'नमस्तेस्तु' ऐसा क्यों नहीं पढ़ा गया ! यदि यह एक अखण्ड पद है, तो 'नमोऽस्तु ते' (अ० ६।१३।१) इत्यादिमें 'अस्तु'का व्यवधान क्यों आया है ? इससे स्पष्ट है कि वेदादिके अनुसार यह एक पद नहीं है। फिर प्रश्न यह है कि 'नमस्ते' यह संस्कृतभाषाका शब्द है, अथवा स्वेच्छाभाषा का ? यदि स्वेच्छाभाषाका, तो 'नमस्ते' शब्द अवैदिक एवं अशास्त्रीय

तथा स्वेच्छाकल्पित सिद्ध हुआ। तब उसमें हमारा विवाद नहीं, निर्मूल शब्दमें भला क्या विवाद। यदि यह संस्कृतभाषा का है, तो एक-पद नहीं हो सकता, वैसा होना संस्कृतभाषा के विरुद्ध है। संस्कृतमें यह कहीं एकपदरूपसे प्रवृत्त नहीं।

अन्य यह प्रश्न है कि 'नमस्ते' यह प्राचीन एवं वैदिक शब्द है या अर्वाचीन अवैदिक ? यदि वैदिक एवं प्राचीन है तो एकपदरूपमें, प्रणाम-आशीर्वादमें और समानतामें इसका प्रयोग वेद, रामायण, महाभारत आदिसे दिखलाइये और वैसी आज्ञा धर्मशास्त्रोंसे दिखलाइये। वेदमें भी जहां 'नमस्ते' आया है वहां पदपाठमें 'नमः,ते' इस प्रकार दो पदोंके रूपमें आया है, इसी प्रकार पद सूचियोंमें। तब इसकी एक-पदता अशुद्ध सिद्ध हुई। यदि 'नमस्ते' अर्वाचीन है, तो वह अवैदिक तथा अशास्त्रीय एव अनैतिहासिक सिद्ध हुआ।

यदि 'नमस्ते'में 'नमः—ते' इसप्रकार दो पद हैं, तो इन दो पदों का यौगपद्य (एक साथ होना) अनिवार्य कैसे है ? क्या केवल 'नमः' शब्द से कार्य नहीं हो सकता ? यहां नमस्कारवाचक शब्द 'नमः' है, 'ते' पद नहीं, तो 'ते' शब्दके साथ रखनेका वादीलोग क्यों हठ करते हैं ? 'नमस्ते'को अपरिवर्तनीय कैसे मानते हैं ? 'नमः' शब्द को ही प्रयोगका विषय सिद्ध क्यों नहीं करते ? इस पदद्वय को आपलोग एकपदकी तरह क्यों व्यवहृत करते हैं ? यदि कहें कि 'नमस्ते' इस पदद्वयमें ही अभिवादन-अर्थ की शक्ति है, अन्यत्र नहीं, तो फिर जहां वेदादि शास्त्रोंमें 'नमोस्तु' (यजुः १६।६४) 'नमः' (यजुः

१६।२२) 'नमो नमः' (यजुः १६।२५) 'नमो वः' (यजुः २।३२) इत्यादि शब्द आते हैं, क्या वहां अभिवादन प्रतीत नहीं होता ?

(ख) अन्य यह प्रश्न है कि 'नमस्ते' में 'ते' का 'तुझे' अर्थ है या नहीं ? यदि 'तुझे' यही अर्थ है, तो 'नमस्तेस्तु गमिष्यामि' का वादी को ५ वें पृष्ठमें 'आप को नमः करता हूं' यह अर्थ लिखना चाहिए था, बल्कि 'आपको' भी नहीं, किन्तु 'तुझे'। 'आप को नमस्ते करता हूं' यह वादीका वाक्य 'नमस्ते' को उनके मतमें एकपद बतला रहा है। इस प्रकार ६ ठे पृष्ठमें 'नमस्ते राजन् ! वरुणास्तु' इस मन्त्रके अर्थावसरमें 'हे श्रेष्ठ राजन्, तुम्हें नमस्ते हो' यह वादी का उल्लेख भी पूर्व की भांति अशुद्ध सिद्ध हो गया। इस प्रकार उक्त ट्रैक्ट के ३ रे पृष्ठमें 'हम आप को नमस्ते करते हैं' यह वाक्य भी अशुद्ध हुआ, क्योंकि 'नमस्ते' एक-पद नहीं और जहां 'नमस्ते' आया है, वहां वादी को 'तुझे नमस्कार हो' यह अर्थ करना चाहिए, वे 'नमस्ते हो' इसी रूपमें अर्थ क्यों लिखते गये हैं ? इसलिए 'नमस्तेवाद' आग्रहवाद हुआ। 'तुम्हें नमस्तो' यह तो पुनरुक्ति है और एकवचनसे विरुद्ध अर्थ है।

(ग) यह भी बतलाया जावे कि मान्यके प्रति क्या कभी युष्मद्-शब्दके एकवचनका संस्कृतभाषा तथा हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू में प्रयोग करते हैं ? यहां उन्हें असत्य-व्यवहार नहीं करना चाहिए। अंग्रेजीमें भी कभी Thou, Thy, 'दाऊ, दाई' आदिका प्रयोग किया है ? यदि नहीं, तो क्यों ? यदि

कहो कि इससे मान्य का अपमान है, तब तो वैसा 'नमस्ते' में भी जानना चाहिए, यहां 'ते' शब्द भी युष्मद् का एकवचन है।

(घ) अन्य यह प्रश्न है कि गुरु आदि माननीयोंके लिए बहुवचनका प्रयोग भी किया जा सकता है या नहीं ? यदि नहीं, तब बतलाइये कि वादीके तथाकथित महर्षिने 'सत्यार्थ-प्रकाश', 'संस्कारविधि' आदि अपने ग्रन्थोंके अन्तमें अपने गुरु श्रीविरजानन्दजीको जो बहुवचन दिया है 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के ८७ पृष्ठमें श्रीपाणिनिको, १४६ तथा २१६ पृष्ठ में श्रीयास्कको, ७४-७५ पृष्ठमें मोक्षमूलर (मैक्समूलर) को बहुवचन दिया है, तब क्या यह अवैदिक है ? यदि अवैदिक है तो वादियोंके स्वामीजीके वेदविरुद्ध लिखनेवाला सिद्ध हो जाने से उनसे आविष्कृत 'नमस्तेवाद' भी अवैदिक सिद्ध हो गया।

स्वा.द.जी तो एकके लिए आदर-अर्थमें बहुवचन देना वेदसम्मत मानते हैं। देखिये उनके 'आर्याभिविनय' के प्रथम प्रकाश में—'तन्न इन्द्रो' इस मन्त्रकी ३९ वें पृष्ठमें व्याख्या करते हुए स्वामीजीने 'यूयं पात' इस वेदमन्त्रांशमें इन्द्रके लिए दिये 'यूयम्' इस बहुवचनान्त पदके लिए लिखा है—'आदरार्थं बहुवचनम्।' इस प्रकार ४१ पृष्ठमें वहीं 'नेह भद्रं' मन्त्रकी व्याख्या करते हुए स्वामीजीने 'व ऊतयः' इस अंश के लिए लिखा है—"बहुवचनमादरार्थम्।" इसी प्रकार अपनी 'पञ्चमहायज्ञविधि' में वनस्पति शब्दको परमेश्वरार्थ सिद्ध करते हुए आपके स्वामीजी ने 'वनस्पतिभ्यो नमः' के बहुवचन के लिए लिखा है—'बहुवचनमत्र आदरार्थम्'। तब एकको

बहुवचन देना भी 'वैदिक' सिद्ध हुआ। इससे मान्यको एकवचन देना उनके मतमें अनादरार्थक भी हो गया।

यदि मान्यको बहुवचन देना वादियोंके मतमें भी ठीक सिद्ध हुआ, तब वहां क्या वादी 'मान्याः! श्रीमन्तः! नमस्ते' ऐसा प्रयोग देंगे, या 'मान्याः नमो वः' ऐसा प्रयोग करेंगे? यदि बहुवचनमें भी 'नमस्ते' लिखेंगे, तो अशुद्ध हो जायगा, क्योंकि 'ते' यह एकवचन है, 'ते-मयावेकवचनस्य' (पा० ८।१।२२)। इसलिए वेदमें 'नमो वः पितरः।' (यजुः २।३२) इस प्रकार बहुवचनमें 'नमो वः' यह लिखा है, 'नमस्ते पितरः' नहीं लिखा गया। यदि आप 'माननीयाः! नमो वः' यह लिखेंगे, तो 'सदा 'नमस्ते' ही कहना चाहिए' यह आप का पक्ष कट जायगा। 'ते' अनित्य है। कभी 'तस्मै, भवते, वः' इत्यादि प्रयोग भी देने पड़ते हैं। कभी केवल 'नमः' लिखा जाता है, जैसे कि 'नमः कपर्दिने' (यजुः १६।२९), 'नमः शम्भवाय' (यजुः १६।४१) इत्यादि। तब 'ते' के अनित्य होने से 'नमः' शब्द से उसकी अनिवार्यता सिद्ध न होने से 'नमस्ते' का खण्डन हो गया।

(ङ) अन्य यह प्रश्न है कि मान्य के लिए 'युष्मद्' शब्द का प्रयोग उचित है या 'भवत्' शब्द का? यदि कहा जाय कि 'भवत्' शब्द का, तब 'नमो भवते' कहना चाहिए, 'नमस्ते' नहीं, क्योंकि 'ते' शब्द 'युष्मद्' शब्द से निष्पन्न है। यदि कहा जाय कि 'भवत्' शब्द का प्रयोग अवैदिक है, युष्मद शब्द का प्रयोग उचित है, तो फिर उत्तर दीजिये कि वादी

मान्य कोसभी भाषाओंमें 'त्वं, त्वया, तव, तूं, तूने, तेरा' इत्यादि का प्रयोग क्यों नहीं करते?

इधर वादियों के स्वामीजीने संस्कारविधि' के ९६ पृष्ठमें शिष्य द्वारा आचार्य को 'अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो! भवन्तमभिवादये' यहां तथा ४२ वें पृष्ठमें पत्नी द्वारा पतिको 'अहं भो! भवन्तमभिवादयामि' इस प्रकार वैदिक संस्कारमें 'भवत्' शब्द का प्रयोग कराया है। क्या वादियोंके स्वामीजी अवैदिक हैं? यदि ऐसा है, तो वादी के स्वामीजी वेदविरुद्ध सिद्धान्तों के लेखक भी सिद्ध हो गये। तब उनके सिद्धान्त भी अवैदिक सिद्ध हुए।

(च) अन्य यह प्रष्टव्य है कि प्राचीनकाल में मान्य के लिए युष्मद् शब्द की सब विभक्तियोंके एकवचन प्रयुक्त किये जाते थे या केवल 'तुभ्यं' स्थानिक 'ते' का ही प्रयोग था? अन्य युष्मद् के एकवचनोंका व्यवहार क्या नहीं था? यदि युष्मद् शब्दकी सब विभक्तियोंके एकवचन प्रचलित थे, केवल 'ते' नहीं, तब वादी मान्य को त्वं, त्वाम्, त्वया इत्यादि क्यों नहीं लिखते? जिस कारणसे सब भाषाओं में मान्य को 'तुभ्यं, त्वत्, त्वयि' इत्यादि वे नहीं लिखते, उसी कारण ही 'नमस्ते' में 'ते' का प्रयोग भी ठीक नहीं।

[छ] अन्य यह पूछना है कि वादी 'नमस्तुभ्यम्' क्यों नहीं लिखते? क्या 'तुभ्यं-ते' में कोई भेद है? वादी 'नमस्तेस्तु' अथवा 'नमोस्तु ते' क्यों नहीं कहते, क्या इनमें कोई अर्थभेद है? 'नमो भवते' क्यों नहीं कहते-लिखते

अथवा 'नमः श्रीमन् !' क्यों नहीं कहते ? क्या ऐसा कहने से किसी की मानहानि होती है ? यदि ऐसा करने पर भिन्न-भिन्नता हो जाती है, तो क्या 'महाभारत' आदिमें 'नमस्ते' से भिन्न शब्द नहीं दिखाई पड़ते, जो वादीके दिये प्रमाणोंमें भी सुलभ हैं ? तब फिर वादियों का 'नमस्ते' में ही आग्रह क्यों ? क्या यह साम्प्रदायिक-दृष्टि नहीं ?

[ज] उक्त ट्रैक्टमें लेखक ने 'नमस्ते' घटित जो प्रमाण वर्ण या गुणसे छोटेके द्वारा वर्ण या गुणमें बड़के प्रति दिखलाये हैं, उनका उत्तर देना तो व्यर्थ है, क्योंकि आयु, वर्ण या विद्यामें छोटा वर्ण, विद्या, आयुसे बड़े को 'नमः' तो कहता ही है, इस विषयमें तो हमारा भी विरोध नहीं। जैसाकि २।१३५ पद्यमें नन्दनने कहा है 'वर्णज्यैष्ठ्यं मान्यतानिमित्तमित्याह' 'ज्यायांसमभिवादयन्, [२।१२२] यह मनुने कहा है अवशिष्ट विवाद है 'ते' में, उसका उत्तर यह है कि उन स्थलों में केवल 'ते' का ही प्रयोग नहीं है, किन्तु 'युष्मद्' की सब विभक्तियोंके एकवचन का प्रयोग है, यह वादी से दिये हुए पद्योंके साथवाले पूर्वोत्तर–पद्यों में देखा जा सकता है। परन्तु वादी मान्य के लिए 'त्वं, त्वां, त्वया, त्वत्, तव, त्वयि. तुभ्यम्' आदि का प्रयोग नहीं लिखते, किन्तु 'ते' का ही प्रयोग करते हैं, उसका भी केवल 'नमस्तेमें ही, अन्यत्र नहीं, तब वे इसमें कारण बतायें। इससे वादीके १-२-३-५-८-१३-१४-१५-१७-१८-१९-२१-२२-२४-२६ संख्यावाले प्रमाणों का उत्तर तो स्वतः ही हो गया, क्योंकि वहां क्रमशः दूत

धृतराष्ट्र को १, सञ्जय महाराज को २, सञ्जय धृतराष्ट्र को ३, अर्जुन युधिष्ठिर को ५, देवयानी अपने जनक शुक्राचार्य को ८, सञ्जय धृतराष्ट्र को १३, अर्जुन श्रीकृष्ण को १४, युधिष्ठिर द्रोणाचार्य को १५, कीट व्यास को १७, युधिष्ठिर भीष्म को १८, विश्वामित्र वसिष्ठ को १९, गार्गी-याज्ञवल्क्य को २१, जनक याज्ञवल्क्य को २२, उपासक वरुणदेव को २४, सावित्री अपने पति ब्रह्मा को २६ नमस्कार करती है। इनमें आपके अनुसार धृतराष्ट्र ने दूत को १, महाराज ने सञ्जय को २-३, युधिष्ठिर ने अर्जुन को ५, श्रीकृष्णने अर्जुनको १४, द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको १५, भीष्मने युधिष्ठिरको १८, वसिष्ठ ने विश्वामित्रको १९, याज्ञवल्क्यने जनक को २२ नमस्कार नहीं किया, तब वादी का पक्ष भी खण्डित हो गया। शेष वादी के ४, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १६, २०, २३, २५, २७ संख्यावाले प्रमाणोंका उत्तर दिया जाता है। 'आलोक' पाठक सावधानता से देखें।

(४) यहां वादी लिखते हैं कि "सञ्जयोऽहं नरव्याघ्र ! नमस्ते भरतर्षभ !' (महा० उद्योगपर्व ३।१८) सञ्जयने वापस जाते समय धृतराष्ट्रको नमस्ते की। इससे सिद्ध है कि उच्चजाति ब्राह्मण भी क्षत्रियोंको नमस्ते करता था।" खेद है कि अपना पक्ष सिद्ध करनेके लिए वादी असत्य बोलकर साधारण जनता को ठगते हैं। यदि सञ्जय ब्राह्मण होता और वह क्षत्रिय धृतराष्ट्र को नमस्कार करता, तो वादी की पक्षसिद्धि थी, परन्तु अब नहीं, क्योंकि सञ्जय ब्राह्मण

नहीं, किन्तु सूत था। सूत वर्णसङ्कर होता है। वर्णसङ्कर शूद्रकोटिका माना जाता है, तभी वह धृतराष्ट्र का रथ चलाया करता था। तब क्षत्रियवर्णकी अपेक्षा निकृष्ट होनेसे सूत अपने से उच्च वर्णवाले क्षत्रियको नमस्कार कर सकता है। 'ते' का उत्तर पहले दिया जा चुका है। इधर धृतराष्ट्र ने सञ्जयको नमस्कार नहीं किया, अतः वादीके सिद्धान्तका विरोध भी है।

सञ्जय गावल्गणनामक सूतका पुत्र था। इसीलिए "कां नु वाचं सञ्जय! मे शृणोषि कस्तल्लब्ध्वा जातु युध्येत सूत!" (उद्योगपर्व २६।१) यहां युधिष्ठिरने सञ्जय को 'सूत' कहा है, इसी तरह "यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं गावल्गणे! ब्रूहि तत् सूतपुत्र।" (उद्योग० २५।१) यहां पर उसे 'सूतपुत्र' कहा गया है। संजयो मुनिकल्पस्तु जज्ञे सूतो-गवल्गणात्, (महा. १।६३।९७) इसी प्रकार उद्योगपर्व के २२।३८ पद्यमें, भीष्मपर्व के ८३।३ पद्य में भी उसे 'सूत' कहा गया है। सूत के क्षत्रिय से निकृष्ट होने के ही कारण क्षत्रिया द्रौपदीने कर्णको सूतपुत्र की प्रसिद्ध होने मात्रसे ही स्वयंवर में लक्ष्य-वेध करनेका निषेध कर दिया था। देखिये 'महाभारत' आदिपर्व (१८९।२३)। इस प्रकार वादीका प्रमाण प्रत्युक्त हो गया।

(६) यहां पर वादी लिखता है कि 'कुरु कार्याणि राजर्षे! नमस्ते पुरुषर्षभ।" (आश्रमवासपर्व १०।५०) ब्राह्मणों ने धृतराष्ट्र से कहा 'हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजन्! आप अपने कार्यों को करो, हम आपको नमस्ते कहते हैं।" यहां पर भी आक्षेप्ताने असत्य-व्यवहार किया है। यहां पर धृतराष्ट्रको जो नमस्कार किया गया है, वह क्षत्रियोंने किया है, ब्राह्मणों ने नहीं, यह उस प्रकरणमें देखा जा सकता है। साम्ब नामक ब्राह्मणने उन क्षत्रियोंका जो वक्तव्य था, उसे केवल सुना ही दिया है, अपनी ओरसे कुछ नहीं कहा। हमारे पास कई क्षत्रिय अपने किसी नेताके लिए 'अभिनन्दनपत्र' बनवानेके लिए आते हैं, हम उन का अभिप्राय जानकर उस वक्तव्यको कवितामें कर दिया करते हैं। उस वक्तव्यके साथ हमारा क्या सम्बन्ध? हम तो केवल उनकी ओरसे योजना करनेवाले या सुनानेवाले हैं इस प्रकार वादी प्रत्युक्त हो गया। शेष 'ते'के विषयमें पहले उत्तर दिया जा चुका है। 'आप को नमस्ते' यह वादीका वाक्य पुनरुक्तिदोषग्रस्त है या 'नमस्ते'को एकपद बता रहा है, तब दोनों ओरसे अशुद्ध हुआ यह हम बतला आये हैं।

(७) वादी लिखता है कि "शिवेन पाण्डवान् पाहि नमस्ते भरतर्षभ!" (महा० शल्यपर्व० ६३।५१) श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको 'नमस्ते' की।" यह कहकर वह टिप्पणी चढ़ाता है—"हमारे सनातनधर्मी भाई श्रीकृष्णको भगवान्का अवतार मानते हैं, किन्तु श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको नमस्ते की। इससे सिद्ध है कि पूर्वकालमें 'नमस्ते' का ही प्रचार था।"

यहां पर 'नमस्ते का ही' यह 'ही' शब्द 'महाभारत' ने

विरुद्ध है। 'महाभारत' में ज्येष्ठको नमस्कार, कनिष्ठको आशीर्वाद, समानों से आलिङ्गन या कुशल-प्रश्न वर्णित किया गया है। इस विषयके बहुतसे प्रमाण हमने सङ्कलित कर रखे हैं। यहां विस्तारभयसे उद्धृत नहीं किये जा सकते। केवल एक-दो प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। पाठक देखें—"एवं सर्वान् कुरून् वृद्धान् अभिवाद्य यतव्रताः। समालिङ्ग्य समानान् वै बालैश्चाप्यभिवादिताः" (१।१४७।३) यहां पर आर्यसमाजिक विद्वान् श्रीसातवलेकरका अर्थ देखिये—"अनन्तर व्रतशील पाण्डव ··· भीष्म, कृपादि वृद्धोंके पांव छूने लगे। इस प्रकार अपनेसे बड़े सब कौरवोंको प्रणाम किया। अपने जोड़ियोंको गलेसे लगाया। आगे बालकोंका प्रणाम लेकर।" यहां पर समानोंका आपसमें नमस्कार नहीं कहा। ज्येष्ठोंका कनिष्ठोंको नमस्कार नहीं कहा गया, किन्तु ज्येष्ठोंको ही यहां कनिष्ठोंने प्रणाम किया है। इसी प्रकार 'महाभारत' का एक अन्य पद्य भी देखिये—"अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धाः, तथेतरेषां कुशलं वदेथाः" (उद्योगपर्व ३०।८) यहां पर भी बड़ोंको अभिवादन तथा छोटों को कुशलप्रश्न ही किया गया है। महाभारतकी उपजीव्य 'मनुस्मृति' में भी (२।१२२-१२५) ज्येष्ठ को 'अभिवादये देवदत्तोऽहं भोः' इस प्रकार प्रणाम और कनिष्ठ के प्रति 'आयुष्मान् भव सौम्य !' इस प्रकार आशीर्वाद तथा समानों को (२।१२७ पद्य में) कुशलादि प्रश्न आदिष्ट किया गया हैं। वादीके स्वामीजीने भी 'सन्धिविषय' के संज्ञाप्रकरण ३ पृष्ठ में लिखा है—"जो पूर्व अभिवादन-

नमस्कार किया जाता है, उसका जो उत्तर देनेवाले की ओर से वाक्य होता है, उसको प्रत्यभिवाद कहते हैं—'अभिवादये देवदत्तोऽहं भोः ! आयुष्मानेधि देवदत्त ३ इति।' यहां भी अभिवादनप्रत्यभिवादन के समान आदिष्ट न होने से दोनों तरफ से 'नमस्ते' का होना कट गया।

अब प्रकरण पर आइये। श्रीकृष्णके विषयमें यह जानना चाहिए कि यद्यपि श्रीकृष्ण महाभारतको भगवान् के अवतार इष्ट हैं, तथापि वे क्षत्रियजातिमें अवतीर्ण हुए थे। तब उन्हें लौकिक-मर्यादा भी पूर्ण करनी थी। धृतराष्ट्र श्रीकृष्णकी अपेक्षा आयु में वृद्ध थे, जैसा कि श्रीकृष्णने स्वयं धृतराष्ट्र से कहा है—"न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद् वृद्धस्य तव भारत !" (शल्यपर्व ६३।४०)। तब श्रीकृष्णका धृतराष्ट्रको नमस्कार करना ठीक ही था। तभी तो आक्षिप्त-पद्यसे पूर्व पद्यमें श्रीकृष्ण द्वारा धृतराष्ट्रके चरणस्पर्शपूर्वक अभिवादन आया है। देखिये—'पूर्वं चाभिगतं तत्र सो (कृष्णो)-ऽपश्यद् ऋषिसत्तमम् (व्यासम्)। पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य (कृष्णद्वैपायनस्य) राज्ञश्चापि (धृतराष्ट्रस्य) जनार्दनः (श्रीकृष्णः)। अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि केशवः" (शल्यपर्व ६३।३६-३७) कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ युधिष्ठिरस्य' [१।१९३।२०] यहां श्रीकृष्णकी अपनेसे बड़े युधिष्ठिरको भी चरण-वन्दना कही गयी है। तब क्या वादी बड़े होकर छोटे शिष्य, पुत्र आदि के चरणोंका स्पर्श करते हैं ? स्वा.द.ने विवाह-संस्कारविधिके प्रारम्भमें स्त्रीको पतिके

चरणोंका स्पर्श करवाया है—पादप्रक्षालन भी (पृ० १३३) पर क्या पतिको स्त्रीके चरणोंका स्पर्श-कराया गया है ? यदि नहीं तो स्पष्ट है कि यह प्रणाम धृतराष्ट्रके वृद्ध होनेके कारण है। 'ते' का उत्तर पहले दिया ही जा चुका है।

(९) "यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु" (महा० सभा० ६३ अ०) यह पद्य देकर वादी लिखता है कि "चाचा विदुर ने अपने भतीजे दुर्योधनको नमस्ते कहा।" यहां यह जानना चाहिए कि यहां पर 'नमः' शब्द शिष्टाचारार्थक नहीं है, नहीं तो भ्राता हुआ ही विदुर दुर्योधनको नमस्कार करता। परन्तु उसने वैसा नहीं किया। न ही यहां साक्षात् 'नमस्ते' शब्द है। आपका 'नमस्ते' शब्दमें ही आग्रह है, उससे थोड़े भी भिन्न शब्दमें आपलोगों का अभिनिवेश नहीं। नहीं तो आपलोग 'नमश्च तेऽस्तु' का प्रयोग क्यों नहीं करते ? यदि 'नमस्ते' एक पद है, तो 'महाभारत' में यहां 'च' का व्यवधान क्यों दिया गया है ? इससे वादीका पक्ष सर्वथा खण्डित होता है।

इधर यहां वादीको यह भी जानना चाहिए कि विदुर दासीपुत्र थे। एतदर्थ 'महाभारत' में कहा है—"शूद्रयोनावहं जातो नातो वक्तुमिहोत्सहे" (उद्योगपर्व० ४१।५) 'तेन शापेन धर्मोपि शूद्रयोनौ प्रजायत। विद्वान् विदुररूपेण' (१।६३। ९६-११४) वह विदुर दुर्योधनकी अपेक्षा निकृष्ट-वर्ण थे। क्या लोग आयु में बड़े 'भङ्गी' आदिको चाचा-बावा आदि नहीं कहते ? फिर वह हमें नमस्कार करता है, हम उसे नमस्कार नहीं करते। जैसा कि 'मनुस्मृति'में कहा है—'ब्राह्मणं दश-

वर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्। पितापुत्रौ विजानीयात् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता" (२।१३५) यहां उत्तम वर्णवाले ब्राह्मणके दश वर्ष तथा उससे हीन-वर्णवाले क्षत्रियके सौ वर्ष होनेपर भी ब्राह्मणको पिता तथा क्षत्रियको पुत्र कहा गया है। वैसे ही यहां पर भी समझना चाहिए। इस प्रकार विदुरने अपनेसे उत्कृष्ट वर्णवाले तथा राजा दुर्योधनको यदि नमस्कार भी कहा है, तो भी हमारे पक्षकी कोई क्षति नहीं।

(१०) "श्रेष्ठो राजन्! वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ !" (सभापर्व अ० ६४) पर यह लिखकर वादी लिखता है—"शकुनिने युधिष्ठिरको नमस्ते कहा।" परन्तु यहां तो आक्षेप्ताका पक्ष ही खण्डित होता है। 'श्रेष्ठः वरिष्ठश्च असि, अत एव ते नमः' अर्थात् तू श्रेष्ठ तथा वरिष्ठ है, इससे तुझे नमः हो। इससे सिद्ध होता है कि अपनी अपेक्षा वर्ण, विद्या या आयु से श्रेष्ठ को नमस्कार होता है, निकृष्टको नहीं: इसलिए 'महाभारत' में अन्यत्र भी कहा है—"अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्यः तेनाभिवादं भवतां न प्रयुञ्जे। यो विद्यया, तपसा जन्मना वा वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम्" (१।८६।२) अर्थात् 'मैं आप लोगोंसे आयुमें बड़ा हूं, इसलिए मैंने आप लोगोंको नमस्कार नहीं किया। जो विद्या, तपस्या अथवा आयुमें बड़ा है, द्विजों में वही नमस्कारयोग्य होता है।' कितना स्पष्ट वचन है ? यदि कहा जावे कि शकुनि युधिष्ठिरका मामा था, अतः पूज्य है, इस पर जानना चाहिये कि—वह युधिष्ठिरका नहीं, किन्तु दुर्योधनका मामा था, जैसेकि सहदेवने

शकुनिको कहा था—'दुर्योधनः कुलाङ्गारः हि शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः' (शल्यपर्व २८।५२) युधिष्ठिर बड़े थे दुर्योधन छोटा था, तब युधिष्ठिरकी अपेक्षा शकुनि गुणों और आयुसे बड़ा नहीं था। तब सब जगह 'नमस्ते' कहते हुए वादीका पक्ष कट गया। 'ते' का उत्तर तो पहले आ चुका है।

(११) "वयं च देशातिथयो गच्छ भद्रे ! नमोऽस्तु ते" (महा० वनपर्व० अ० ७५) यहां पर वादी लिखता है—"राजा नलने दासी को नमस्ते कहा है।" यहां वादीका असत्य-व्यवहार है। हमारे पास आर्यसमाजी श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी द्वारा प्रकाशित 'महाभारत' है। उसमें तो "वयं च देशातिथयो गच्छ भद्रे ! यथासुखम्" (३।७५।२६) यह पाठ है। इस प्रकार लक्ष्मणदास-प्यारेलाल (लाहौर) से प्रकाशित महाभारत में भी यही पाठ है। इस प्रकार गणपत कृष्णाजी मुम्बईसे मुद्रित नीलकण्ठकी टीकावालेमें भी ऐसा ही पाठ है। तब 'यथासुखम्' के स्थान पर 'नमोऽस्तु ते' यह पाठ असार्वत्रिक तथा असम्बद्ध होने से प्रमादपतित है। इधर उसमें भी आप का प्रिय 'नमस्ते' साक्षात् नहीं है। 'अस्तु' का बीच में व्यवधान है। तब भवदभिमत इसकी अखण्डता, अपरिवर्तनीयता तथा इस रूप में अनिवार्यता कट गयी।

(१२) वादी लिखता है—'देवदूत ! नमस्तेऽस्तु गच्छ तात ! यथासुखम्" (महाभा० वनपर्व० २६० (२६१)।४२) महात्मा वेदव्यासने दूतको नमस्ते कहा।" यह आक्षेप भी असत्य है। यहां मुद्गल मुनिने देवदूतको नमस्कार किया है। वह साधारण दूत नहीं, किन्तु देवदूत था। देवता मनुष्य की अपेक्षा उच्चयोनि होते हैं। तब मनुष्य-द्वारा देवताओंको नमन ठीक ही है। श्रीव्यासजी ने यह नमस्कार नहीं किया। लेखक यहां असत्य बोल रहे हैं। आपाततः न देखकर वे सम्यक्तया प्रकरण को देखें। यदि व्यासजी देवदूतको भी नमस्कार करते, तो भी पूर्व कहे प्रकार से हमारे सिद्धान्तकी हानि नहीं थी। 'ते' का उत्तर दिया जा चुका है। इधर सब भाषाएं देवताओंके लिए 'युष्मद्' शब्दके एकवचनका प्रयोग करती हैं और जब वादी 'नमस्तेऽस्तु' का प्रयोग नहीं करता तब वैसा उद्धरण ही व्यर्थ है।

(१६) वादी लिखता है कि "नमोऽस्तु ते शार्ङ्गगदासिपाणे !" (भीष्मपर्व० ५६।९६) भीष्मने कृष्णको नमस्ते कहा।" यहां उनसे प्रष्टव्य है कि क्या वादी 'नमोऽस्तु ते' का प्रयोग करते हैं? यदि नहीं, तब यह प्रमाण उद्धृत क्यों किया? वे तो 'नमस्ते' मात्र मानते हैं, उसके एक अक्षर में भी परिवर्तन तथा व्यवधान नहीं चाहते। इससे 'नमस्ते' शब्द की अपरिवर्तनीयता, अनिवार्यता तथा एकपदता निरस्त हो गयी। नहीं तो 'नमोऽस्तु' यही उन्हें कहना चाहिए? क्या वादी को यह स्वीकृत है? भीष्मने यहां श्रीकृष्णको भगवान्का अवतार मानकर नमस्कार किया है। सम्पूर्ण पद्य इस प्रकार है—"उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं एह्येहि देवेश ! जगन्निवास!

नमोऽस्तु ते माधव ! चक्रपाणे !" (६।५६।१६)। भगवानने के लिए युष्मद् का एकवचन सभी भाषाओंमें प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी-भाषामें भी परमात्मा के लिए Thou 'दाऊ' का प्रयोग हुआ करता है। तब यह विवाद क्यों ?

(१६) "नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि" (वाल्मी. १।५२।१७) इस पर वादी लिखता है-"विश्वामित्रने वसिष्ठको कहा, हे महाराज......आपको नमस्ते करता हूं......पूर्वकाल में ऋषि-लोग आपस में नमस्ते शब्द ही कहते-कहलाते थे।" यहां पर 'आपको नमस्ते करता हूं' इस स्थलमें कहा हुआ 'आपको' यह श्लोक-स्थित किस पद का अनुवाद है ? यदि ऋषिलोग आपस में 'नमस्ते' शब्द कहते थे, तो वसिष्ठ ने विश्वामित्र को 'नमस्ते' कहां कहा है-यह भी वादीको दिखलाना पड़ेगा ? इधर यहां 'नमस्तेस्तु' शब्द है, क्या वादी उसका व्यवहार करते हैं ? यदि नहीं, तो उस का उद्धरण व्यर्थ है।

(२०) "नमस्ते राक्षसोत्तम" (वाल्मी० ३।४।३) सीता ने राक्षस को नमस्ते कहा'—यह वादीकी टिप्पणी है। यहां यह जानना चाहिए कि राक्षसयोनि देवयोनि के अन्तर्गत मानी जाती है। जैसा कि 'अमरकोष' में-"विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षो-गन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" (१।१।११)। इसी प्रकार 'सुश्रुतसंहिता' के उत्तरतन्त्र [६०।७] में भी कहा है। इसीलिए 'सुश्रुत' में भूत, प्रेत आदि को नमस्कार किया गया है। तब मनुष्ययोनिकी अपेक्षा राक्षसयोनि के भी उच्चयोनि होनेसे उसको नमस्कार

करने पर हमारे सिद्धान्तका भङ्ग नहीं। शेष 'ते' के विषय में जानना चाहिए कि परमात्मा, देवता तथा ऋषियोंके लिए सभी भाषाएं 'युष्मद्' के एकवचनका प्रयोग करती ही हैं। इनके लिए कोई विवाद नहीं।

(२३) आगे वादी लिखता है कि—"तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन् ! अतिथिर्नमस्यः। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्! स्वस्ति मेऽस्तु' (कठोपनिषत् २।६) यमाचार्यने अपने शिष्य नचिकेताको नमस्ते की।" यहां वादी जनता को ठग रहा है। यहां तो स्पष्ट कहा है कि 'हे ब्राह्मण, अतिथि नमस्कार के योग्य होता है। तुम तीन रात मेरे घर विना खाये रहे, इस कारण अतिथि हो, तब तुझे नमस्कार हो। नमस्कार यहां अपराधकी क्षमा करानेके लिए है। जैसेकि शांखायन-गृह्यसूत्र में कहा है—'तृणान्यपि उञ्छतो नित्यमग्निहोत्रं च जुह्वतः। सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन्' [२।१७।५२४] यही मनुस्मृतिमें कहा है-(३।१००) हितोपदेशमें ग्रन्थान्तरका पद्य उद्धृत किया गया है-'बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः। तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः (मित्रलाभ ६२) उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोपि गृहमागतः। पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोतिथिः, [१।६५]

इस उपनिषद्में यमको कहीं गुरु नहीं कहा गया, और नचिकेताको कहीं शिष्य नहीं कहा गया। यम सूर्यके पुत्र क्षत्रियवर्ण थे। इसीलिए उपनिषद् में उन्हें वैवस्वत (१।१।७) विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र—कहा गया है। सूर्यवंशीय-क्षत्रि

प्रसिद्ध हैं ही। 'शतपथब्राह्मण' में भी "तच्छ्रेयोरूपमत्य-सृजत् तत् क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणि इन्द्रो···यमो मृत्युः" (१४।४।२।२३) यहां यमको क्षत्रिय कहा गया है। अन्य यह भी ध्यान देना चाहिए कि एक ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणको 'ब्राह्मण !' यह सम्बोधन भी नहीं देता, किन्तु अब्राह्मण क्षत्रिय आदि ही ब्राह्मण को वैसा सम्बोधन देता है। यमने यहां नचिकेताको 'ब्रह्मन् !' कहा है, यह नहीं भूलना चाहिए। 'ब्रह्मन् !' का अर्थ है 'ब्राह्मण !' जैसा कि 'महाभाष्य'में कहा है—"समानार्थौ एतौ ब्रह्मन्शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च, अतश्च समानार्थौ। एवं ह्याह—कुतो नु चरसि ब्रह्मन् ! कुतो नु चरसि ब्राह्मण !' इति। तत्र द्वयोः शब्दयोः समानार्थयोरेकेन विग्रहः" (५।१।७)।

क्षत्रिय यम ब्रह्मविद्याके अभिज्ञ थे। तब तद्विषयक प्रश्न नचिकेताने भी पूछे थे। इससे गुरुशिष्यभाव नहीं हो जाता। बहुतसी छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि उपनिषदोंमें यह वर्णन आता है कि ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके ज्ञानके लिए तदभिज्ञ क्षत्रियोंके पास, जिन्होंने उस विद्यामें नवीन अन्वेषण कर रखे थे, जाते थे। जैसा कि "यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति। तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासन-मभूत्" (५।३।७)। वे क्षत्रिय ब्राह्मणोंको उच्चवर्णका होने से नमस्कार भी करते थे। जैसा कि 'छान्दोग्योपनिषद्' में—"स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय। तस्मै ह प्राप्ताय अर्हाञ्चकार (ननाम)" (५।३।६), "तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथग् अर्हाणि-

कारयांचकार" (५।११,५)

उक्त स्थलोंमें उन ब्राह्मण-क्षत्रियोंका कहीं गुरुशिष्यभाव नहीं कहा गया। इसलिए अश्वपति-राजाने ब्राह्मणोंको वैश्वानर-विद्याके प्रतिपादनके अवसरमें, विना ही उनका उपनयन किये, वह विद्या कही। जैसा कि 'छान्दोग्य-उपनिषद्'में-'तान् (ब्राह्मणान्) ह अनुपनीयैव (अन्तेवासिनोऽकृत्वैव राजा अश्वपतिः) एतदुवाच' (५।११।७) 'वेदान्तदर्शन'-के १।३।३६ सूत्रकी 'कल्पतरुपरिमल' टीकामें इस विषयमें कहा गया है-'ननु समीपप्रापणनिषेधे कथं विद्योपदेशलाभः ? (उ०) नैष दोषः, शिष्यभावतत्कार्यशुश्रूषाद्यनुमतिपूर्वकं वैध-मुपनयनं निषिध्यते, न तु समीपप्रापणमात्रं लौकिकमपि।" इस प्रकार अनुपनयनका यह भाव हुआ कि उपनयन हो जाने पर उपनेता तथा उपनेयमें आचार्य-शिष्यभाव हो जाया करता है, जैसा कि 'सम्माननोत्सञ्जनाऽऽचार्यकरण' (पा० १।३।३६) इस सूत्रके 'आचार्यकरण' प्रतीकको लेकर 'सिद्धान्तकौमुदी'में श्रीभट्टोजिदीक्षितने आत्मनेपदप्रक्रियामें कहा है-"माणवकमुप-नयते, विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेण अध्यापनेन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते।" परन्तु यहां राजा अश्वपतिके ब्राह्मणकी अपेक्षा हीनवर्ण (क्षत्रिय) होने से गुरुशिष्यभाव नहीं हुआ। तब अश्वपतिने ब्राह्मणोंसे जिज्ञा-सित विषय उनको, बिना ही गुरुशिष्यभावके, बता दिया, जैसा कि 'बृहदारण्यक'में आया है-'स होवाच गार्ग्यः (ब्राह्मणः) उप त्वा (अजातशत्रुं क्षत्रियम्) आयानि इति"

(२।१।१४) (ब्राह्मण गार्ग्यने क्षत्रिय-अजातशत्रु से कहा कि मैं विद्याध्ययन के लिए तेरा अन्तेवासी अर्थात् शिष्य होता हूँ)। परन्तु क्षत्रिय-अजातशत्रुने उत्तर दिया कि "स होवाच अजातशत्रुः—प्रतिलोमं चैतद् यद् ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयात्" (ब्राह्मणका क्षत्रियका शिष्य नहीं हो सकता) (२।१।१५)।

जहां इस प्रकरणसे गुणकर्मकृत वर्णव्यवस्था खण्डित हो रही है, वहां यह भी सिद्ध हो रहा है कि यमने हीनवर्ण वाले होनेसे अपनेसे उच्चवर्णवाले नचिकेताका उपनयन कहीं नहीं किया। अतः उनका आपसमें उपनिषत्को आचार्य-शिष्यभाव भी इष्ट नहीं है। तभी तो यमने ब्राह्मण नचिकेता-को नमस्कार किया, अपने लिए स्वस्तिका आशीर्वाद मांगा। क्या आर्यसमाजी गुरु अपने शिष्यसे स्वस्तिकी प्रार्थना मांगते हैं? संस्कार-चन्द्रिकाके संस्कार-काण्डमें अभिवादन-प्रकरणमें कहा है—'नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कदाचन। ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः। अभिवाद्यो नमस्कार्यो शिरसा वन्द्य एव च। ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैस्तु श्रीकामैः सादरं सदा (शातातपः) अतएव क्षत्रियाद्यभिवादने प्रायश्चित्तम-प्याह स एव शातातपः—क्षत्रं वैश्यं वाभिवाद्य प्रायश्चित्तं कथं भवेदित्यादि।' शेष रहा 'ते' का कथन, सो आयु तथा अनुभव में छोटे होनेके कारण था। इधर यहां 'नमस्तेऽस्तु' कहा गया है, आप लोग वैसा प्रयोग नहीं करते। यदि नहीं करते, तो वैसा उद्धरण ढूंढना व्यर्थ है। इधर नचिकेताने यमको नमस्कार नहीं किया, अतः यह स्थल वादीके पक्षको सर्वथा

काटनेवाला बन गया। उक्त-स्थलमें विद्वान् भी क्षत्रियको ब्राह्मण नहीं माना गया, उस विद्याके अज्ञाता ब्राह्मणको शूद्र नहीं माना गया, किन्तु ब्राह्मण ही माना गया है। इस प्रकार वर्णव्यवस्था भी जन्मसे ही सिद्ध हो रही है तथा यह भी सिद्ध हो रहा है कि हीनवर्ण उच्चवर्णकी अपेक्षा अवस्था वा योग्यतामें उच्च होता हुआ भी आयु वा योग्यतासे न्यून भी उच्चवर्णको नमस्कार करे और उससे आशीर्वाद मांगे, नमस्कार नहीं। इसलिए २।१३५ मनुस्मृतिके पद्यकी व्याख्यामें श्री मेधातिथिने कहा है—"चिरवृद्धेनापि क्षत्रियेण स्वल्पवर्षोऽपि ब्राह्मणः प्रत्युत्थाय अभिवाद्य इति प्रकरणार्थः"। इस प्रकार प्रतिपक्षी यहाँ परास्त हो गये। वह इस प्रमाण को बड़े सरंम्भ से देते हैं; पर पाठकोंने देखा होगा कि यह प्रमाण उनके पक्षका विघातक है।

(२४) 'नमस्ते राजन्! वरुणास्तु' (अथर्व० १।१०।२) यहां पर वादी अपनी टिप्पणी चढ़ाता है—"हे श्रेष्ठ राजन्! तुम्हें नमस्ते हो।" यहां उन से प्रष्टव्य है कि 'तुम्हें' यह मन्त्र के किस पद का अर्थ है? यदि 'ते' पदका, तो 'नमस्ते हो' यह कैसे लिखा? 'तुम्हें नमः हो' यह क्यों नहीं लिखा? वास्तव में यहां राजाको नमस्कार नहीं, किन्तु 'यासां (अपां) राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्' (ऋ० ७।४९।३) इस मन्त्रके अनुसार जलके राजा वरुणदेव के मन्युको नमस्कार किया गया है। क्योंकि मन्त्रमें ही 'मन्यवे' लिखा है, यहां 'ते'का अर्थ 'तव' है 'तुभ्य' नहीं।

तब वादीका अर्थ अशुद्ध सिद्ध हुआ। देवताओंके लिए तो 'युष्मद्'का एकवचन प्रयुक्त होता ही है, और नमस्कार भी; इससे हमारे पक्षकी कोई हानि नहीं।

(२५) वादी लिखता है कि "नमस्ते भगवन्! रुद्र! भास्करामिततेजसे" (शिवपुराण वायुसंहिता ७।१।१२।४१) ब्रह्माजीने अपने पुत्र रुद्रको नमस्ते की" यह लिखकर वादी टिप्पणी चढ़ाते हैं—"सनातनधर्मी—भाइयो! आपके ऋषि, देवता अपने पुत्रको नमस्ते कहते हैं।" इसपर वे उत्तर सुनें—'शिवपुराण' दूसरे देवताओंकी अपेक्षा शिवका महत्त्व बतलाता है, यह वादी भी जानते होंगे। वहांपर रुद्रका ब्रह्मासे अधिक प्रभाव तथा अधिक सामर्थ्य दिखलाया गया है। ब्रह्माको वहां रुद्रकी अपेक्षा गौण बतलाया गया है। रुद्र भगवान्का अवतार तथा महान् देव हैं, तब वहां ब्रह्माजीने भगवान्के अवतार होने एवं महा-देव होनेसे ही रुद्रको नमस्कार किया है, पुत्र होने से नहीं। इसीलिए वहीं—"रुद्रमाह पितामहः" (१।२२।१६), "नमस्ते देवदेवेश! मा स्राक्षीरीदृशीः प्रजाः" (१।१२।१७) ब्रह्माजीने रुद्रको 'देव-देवेश' कहा है। तब देवदेवेशको नमस्कार उचित ही है। श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकीके पुत्र थे, श्रीराम कौशल्याके पुत्र थे। परन्तु ये दोनों विष्णुके अवतार तथा देवदेव थे, इसलिए जन्मसमयमें माता-पिताने इन्हें नमस्कार किया है। जैसे कि 'अध्यात्म-रामायण'में कौशल्या रामको जन्मसमयमें कहती हैं "देवदेव! नमस्तेस्तु" (३।२०)। श्रीमद्भागवत' (१० स्कन्ध, ३ अ० में देवकी-वसुदेव ने उत्पन्न हुए श्रीकृष्णकी स्तुति की है।

ब्राह्मणलोग क्षत्रिय श्रीराम तथा श्रीकृष्णको जो नमस्कार करते हैं, सो क्षत्रिय होने से नहीं, किन्तु भगवान्के अवतार वा देवदेव होने से ही। पहले किसी समयमें पिता-लोग अपनी कन्याको आशीर्वाद दिया करते थे और कन्या पिता को नमस्कार किया करती थी, देखो—'नैषध-चरित्र' चतुर्थ सर्गके अन्तमें और अभिज्ञानशाकुन्तलमें। परन्तु अब कन्याएँ पिताको नमस्कार नहीं करतीं, पिता भी उनको आशीर्वाद नहीं देता। इसमें कारण यह है कि आजकल कन्याओंको देवीका अंश माना जाता है। तब उसे ही नमस्कार किया जाता है। उसका नमस्करण पुत्री होनेसे नहीं, किन्तु देवीके अवतार माननेसे ही किया जाता है। इस प्रकार रुद्रको नमस्कार करनेके विषयमें भी जानना चाहिए, क्योंकि किसी पुराण आदिमें सर्वसाधारण पुत्र आदिको पिता आदिने कहीं भी नमस्कार नहीं किया। 'शिवपुराण' में "एवं घोरमहारूपो ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः। विज्ञानं ब्रह्मणे दत्त्वा सर्गं सह करोति च" (१।१२।१२)। इस प्रकार महेश्वरने ब्रह्माको ज्ञान दिया है। तब वहां 'पुत्र' शब्द लाक्षणिक ही है, वास्तविक पिता-पुत्रभाव नहीं है यह जानना चाहिए। ज्ञानप्रदको धर्मपिता माना जाता है, जैसे कि—मनुस्मृतिमें—'स्वधर्मस्य च शासिता बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः। (२।१५०।१५१) अज्ञो भवति वै बालः, पिता भवति

मन्त्र (ज्ञान)दः (१५३) तब वादीका यहां भी पतन हो गया।

(२६-२७) यहां पर वादी लिखता है—"यद्येष ते स्थिरो भावस्तिष्ठ देव ! नमोस्तु ते' (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड १७० अ०) सावित्रीने ब्रह्मासे नमस्ते कहा, जिसके उत्तरमें 'न चापराधं भूयोन्यं करिष्ये तव सुव्रते ! पादयोः पतितस्तेहं क्षम देवि ! नमोस्तु ते' (पद्म० सृष्टि० १७।१५०) ब्रह्माने अपनी पत्नी सावित्री के चरणोंमें गिरकर नमस्ते की। यहां नमस्ते के उत्तरमें दूसरी ओरसे नमस्तेका प्रयोग मिलता है।" यहां वादी से प्रष्टव्य है कि यहां पर तो 'नमोस्तु ते' है, तो क्या आप 'नमोस्तु ते' का प्रयोग करते हैं ? आपलोग तो 'नमस्ते' को एकपद मानते हैं, तब अखण्ड-पद में 'अस्तु' का व्यवधान कैसा ? यदि 'नमोस्तु ते' का प्रयोग आप लोग नहीं करते, तो आप का यह उद्धरण व्यर्थ है, क्योंकि आपका केवल 'नमस्ते' में आग्रह है, उससे भिन्न शब्दके प्रयोगको आप नहीं मानते। यदि मानते हैं, तो फिर 'नमस्ते'की अन्त्येष्टि हो गयी। अन्य यह भी बताइये कि आपलोग पत्नी-के चरणोंमें गिरना क्या शिष्टाचार मानते हैं तथा गिरते हैं ? स्वा. द. जीने संस्कारविधिमें (विवाहप्र.) लिखा है—'स्त्री पतिके चरण-स्पर्श, पादप्रक्षालन, आसन-दान करे' (पृ. १३३) यहां स्त्रीद्वारा पतिका चरण-स्पर्श कहा है; पतिद्वारा पत्नीका चरण-स्पर्श नहीं कहा। वास्तवमें यहां पांवपर गिरना वा नमस्कार शिष्टाचारके विचारसे नहीं किया गयाहै, किन्तु यहां अन्य रहस्य है। कविलोग अपने ग्रन्थोंमें कभी नायक-नायिका

के मान वा क्रोधका वर्णन करते हैं। नायक कभी नायिकाका अपराध—अन्य स्त्रीको देखना आदि—करता है, जिससे वह नायिका मानावलम्बन कर नायकसे रूठ बैठती है, उससे बोलती नहीं। तब नायक उसे जिस-किसी प्रकारसे प्रसन्न करना चाहता है। कभी उसके पैरों पर गिरता है या प्रणाम (झुकना) करता है। वह भी मानिनी कभी पादप्रहार भी करती है, नायक भी रसभङ्गके भयसे इसे सह लेता है। इसके उदाहरण 'काव्यप्रकाश' आदिमें सुलभ हैं, जैसाकि "प्रणतिपरे दयिते प्रसीद मुग्धे !" (४ उल्लास, रसनिरूपण), 'किं चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपाय्यते" (वहीं)। "नायिकापादप्रहारादिना नायककोप-वर्णनमनुचितं रसभङ्गकारणं च" (७ उल्लास, रसदोषोंके अन्त में) इत्यादि। परन्तु यह शिष्टाचार नहीं होता, किन्तु कामियोंका 'प्राइवेट' व्यवहार होता है। वह धर्मशास्त्र-सम्मत नहीं होता, क्योंकि तब परस्पर नमस्कार-आशीर्वाद का अवसर ही कैसे हो ? वहां तो जिस-किसी प्रकारसे नायिकाको प्रसन्न करना पड़ता है। जैसाकि 'वाल्मीकि-रामायण' में श्रीरामने सीतासे कहा है—"अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे' (२।१२।१५)। इसपर श्री-रामाभिराम-टीकामें कहा है—"धर्मशास्त्रतः अत्यनुचित-मपि कामशास्त्रमर्यादया त्वत्प्रीत्यर्थमिति शेषः।" इससे यह व्यवहार धर्मशास्त्रसे विरुद्ध सिद्ध हुआ। श्रीमद्भागवतमें कहा है—'न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाऽङ्घ्र्यभिवादनम्।

छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् ! वयोज्यैष्ठ्यस्य कारणम् (६।७।३३)। अर्थात् लोकमें काम पड़नेपर छोटेके पांव पर पड़कर झुकना भी निन्दित नहीं होता। इस प्रकार कहीं पुराणोंमें देव-देवियोंमें भी साहित्यिक-व्यवहार लोककी तरह दिखलाया जाता है। परन्तु वह धर्म्मशास्त्रसम्मत न होनेसे अनुकरणीय नहीं होता।

यहां हम 'पद्मपुराण'का वही प्रकरण दिखलाते हैं, जिससे हमारे मतकी पुष्टि होती है। जैसेकि ब्रह्माने देवताओंके कहनेसे एक यज्ञ किया था। यज्ञमें पत्नीकी आवश्यकता होती है, क्योंकि वहां ऐसी विधि है, परन्तु ब्रह्माकी पत्नी सावित्री वहां निकटमें नहीं थी। तब इन्द्र, विष्णु आदिके कथनसे ब्रह्माने पत्नीके स्थानमें एक गोपकन्याको बैठाया। देखिये—"ब्रह्मपार्श्वे स्थिता तत्र किन्तु वै गोपकन्यका। (पद्म-पुराण सृष्टिखण्ड १७।१२२) मौनीभूता तु शृण्वाना सर्वेषां वदतां गिरः। अध्वर्युणा समाहूता नागता वरवर्णिनी (१२३)॥ शक्रेण चाहूताऽऽभीरा दत्ता सा विष्णुना स्वयम्। अनुमोदिता च रुद्रेण पित्राऽदत्ता स्वयं तथा' (१२४)। उस समय ब्रह्माकी पत्नी सावित्री भी यज्ञस्थानमें पहुँची। उसे देखकर सब देव घबरा गये। उसने ब्रह्माको आड़े हाथों लिया कि मेरी विद्यमानतामें तुमने स्त्रीके स्थानपर एक गोपकन्याको कैसे रखा?—"सावित्रीमागतां दृष्ट्वा भीतस्तत्र पुरन्दरः। अधोमुखः स्थितो ब्रह्मा किमेषा मां वदिष्यति' (१७।११९)। वास्तवमें यह पत्नीका क्रोधावसर था भी ठीक। "उवाच

देवी ब्रह्माणं सदोमध्ये तु मौनिनम्। किमेतद् युज्यते देव ! कर्तुमेतद् विचेष्टितम्? ॥ (१३४) मां परित्यज्य यत् कामात् कृतवानसि किल्बिषम्। न तुल्या पादरजसा ममैषा या शिरःकृता (१३५)॥ भवता रूपलोभेन कृतं लोकविगर्हितम्। पुत्रेषु न कृता लज्जा पौत्रेषु च न ते प्रभो! (१३७)॥ कामकारकृतं मन्ये एतत् कर्म विगर्हितम्। पितामहोसि देवानामृषीणां प्रपितामहः॥ (१३८) कथं न ते त्रपा जाता आत्मनः पश्यतस्तनुम्। लोकमध्ये कृतं हास्यमहं चापकृता प्रभो! (१३९) यद्येष ते स्थिरो भावस्तिष्ठ देव! नमोस्तु ते। अहं कथं सखीनां तु दर्शयिष्यामि वै मुखम् (१७, १४०)॥ भर्त्रा मे विधृता पत्नी कथमेतद् अहं वदे।" सावित्रीके इस वाक्यमें 'नमोस्तु' है। यह वाक्य शिष्टाचार-वाचक नहीं किन्तु क्रोध-व्यञ्जक है। जैसे—'राम-राम' इस शब्दसे अपने इष्टदेवका कीर्तन किया जाता है, पर 'राम-राम! यह तुमने क्या कर डाला?' यहां जैसे 'राम-राम' शब्द इष्टदेव के नामसदृश होता हुता भी 'आश्चर्य' वा खेद अर्थमें है शिष्टाचारमें नहीं, वैसे यह भी 'नमोस्तु' यह शब्द क्रोधव्यञ्जक है, यद्यपि पत्नी-द्वारा पतिको प्रणाम करनेसे हमारे पक्षकी क्षति नहीं। अब यह स्पष्ट हो गया कि उस समय सावित्री क्रुद्ध थी। तब ब्रह्मा सावित्रीको उस गोपकन्याके बैठानेकी वस्तुस्थिति समझाते हैं—"ऋत्विग्भिरुदितश्चाहं दीक्षाकालादनन्तरम् ।१४१। पत्नीं विना न होमोऽत्र शीघ्रं पत्नीमिहानय। शक्रेणैषा समानीता दत्तेयं मम विष्णुना। (१७।१४२) गृहीता च मया सुभ्रु! क्षमस्वैतद्

मया कृतम् । न चापराधं भूयोऽहं करिष्ये तव सुव्रते ! पादयोः पतितस्तेऽहं क्षमस्वेह नमोस्तु ते" (१७।१४३) । आगे सावित्री ने इन्द्र, विष्णु आदि देवताओंको क्रोधवश शाप दिया। इससे स्पष्ट है कि यहांपर 'नमस्ते'के प्रत्युत्तर में 'नमस्ते' नहीं। यहां पर 'नमस्ते' यह साक्षात् शब्द भी नहीं, यह यहांपर शिष्टाचारवाचक भी नहीं । ब्रह्माने तो अपनी पत्नीकी अविद्यमानतामें यज्ञमें अन्य-अपनेसे अविवाहिता स्त्रीको बैठा दिया, इससे हुए सावित्रीके क्रोधको हटानेके लिए ब्रह्मा उसके आगे झुके। तब यहां साधारण शिष्टाचार-व्यवहार न होने से इससे वादीको कोई भी इष्टसिद्धि नहीं।

'न्यायदर्शन'के (४।१।६२ सूत्रके) वात्स्यायनभाष्यमें इतिहास-पुराणका प्रधान विषय 'लोकवृत्त' बतलाया है, लोक-व्यवहारकी व्यवस्थापना उसका मुख्य विषय नहीं बतलाया। लोकव्यवहारकी व्यवस्था तो धर्मशास्त्रोंका ही प्रधान विषय बतलाया गया है, इतिहास-पुराणका नहीं। तब पुराणेतिहास-वर्णित लोकवृत्त धर्मशास्त्रसे विरुद्ध होनेपर बाधित हो जाता है। इसीलिए 'व्यासस्मृति' में कहा है—"श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते । तत्र श्रौतं प्रमाणं तु द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा" (१।४) अर्थात्—स्मृति तथा पुराणके विरोधमें स्मृतिवचन ही आदरणीय होता है। शिष्टाचार या औत्सर्गिक आचारमें कहीं पुत्र वा पत्नी या शिष्यके प्रति नमस्कार किया जाना न तो दिखलाया गया है, न आदिष्ट ही किया गया है। नहीं तो वादी को वह सार्वत्रिक-व्यवहार रामायण-पुराण महाभारत

आदिसे दिखलाना चाहिए।

क्वाचित्क-व्यवहारसे सार्वत्रिकता नहीं हुआ करती। वादी ने अन्य प्रमाणोंसे छोटे-बड़ोंका परस्परमें नमस्कार नहीं दिख-लाया। भय आदिके अवसरपर अथवा दूसरेके क्रोधको हटानेके लिए उसको चाटुकारिता (खुशामद) भी करनी पड़ जाती है। चोरके भी पैरोंपर गिरकर कभी अपना जीवन मांगना पड़ता है। पुलिसमैनके अपमानसे बचावके लिए उसके मुसलमान होने पर भी कभी उसे हाथ जोड़ने पड़ जाते हैं अथवा झुककर उसकी खुशामद करनी पड़ जाती है। पर वह न तो शिष्टाचार माना जाता है, न औत्सर्गिक व्यवहार ही। क्या 'नमस्ते'वादी पूर्व कहे अनुसार अपनी पत्नीके कोपको हटानेके लिए ही उसे 'नमस्ते' कहते हैं ? यदि नहीं, तो उक्त उद्धरणसे उनकी इष्टसिद्धि कुछ भी नहीं। इधर यहां 'नमस्ते'के उत्तरमें वह 'नमस्ते' नहीं; जैसा कि वादीलोग एक-दूसरेसे मिलते ही करने लग पड़ते हैं।

(क) आगे वादीने 'नमस्ते'के 'ते'को ज्येष्ठोंके प्रति प्रयोग करनेमें रामायण, महाभारत आदिसे प्रमाण दिये हैं; पर उनका उल्लेख व्यर्थ है। हम रामायण, महाभारत आदि सें बड़ेको त्वं, त्वां, त्वया, तव,' इत्यादिको भी प्रयुक्त हुआ दिखला सकते हैं; परन्तु आपलोग बड़ेको 'त्वं, त्वया, तुभ्यं त्वयि' आदि क्यों नहीं कहते ? 'नमस्ते' के अतिरिक्त 'ते' का भी प्रयोग बड़ेके लिए क्यों नहीं करते ? हिन्दीमें भी माताके लिए 'तू, तेरा, तुझे' आदिका प्रयोग क्यों नहीं करते ?

वास्तवमें बड़ेको 'तू' कहना इतिहासमें भले ही आता हो, पर धर्मशास्त्रसे विरुद्ध है, जैसे कि 'महाभारत'में स्वयं धर्मशासन कहा है—"न जातु त्वमिति ब्रूयाद् आपन्नोपि महत्तरम्। त्वङ्कारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते। अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत्" (अनुशासनपर्व १६२।५३) अर्थात् बड़ेको 'तूं' न कहे, छोटोंको या शिष्योंको या समानोंको 'तू' कहे। बल्कि 'तू' कहना बड़ोंके मारनेके समान होता है। देखिए 'महाभारत'—"त्वम् इत्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत!" (कर्णपर्व ६९।८३), "अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः" (६९।८६)। केवल यह साधारण-रूप से नहीं कहा गया किन्तु 'अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः (७०।८५) इस व्यवहारको अथर्ववेदकी श्रुतिके अनुकूल कहा है। तब यह वैदिक सिद्ध हुआ। तब श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा—'त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः। हत्वा तु नृपतिं पार्थ! अकरिष्यः किमुत्तरम्' '(कर्ण-पर्व ७१।५१)' यहां सातवलेकरने अर्थ लिखा है—'उन धर्मात्माको केवल 'तुम' ('तू'?) कहनेसे मलिन हो रहे हो; जिन बड़े भाईको 'तुम' कह कर तुम्हारी यह दशा हो रही है उनके मारनेसे तुम्हारी क्या दशा होती।' इससे बड़ेकेलिए 'त्वं' का व्यवहार अनुचित सिद्ध हुआ।

याज्ञवल्क्यस्मृति'में प्रायश्चित्ताध्यायमें प्रायश्चित्त-प्रकरणमें इसका प्रायश्चित्त भी कहा है—'गुरुं हुँकृत्य त्वंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। बद्ध्वा वा वाससा क्षिप्रं प्रसाद्योपवसेद् दिनम्" (२९१ पद्य) इसीप्रकार 'पराशरस्मृति' (११।५३) शङ्ख-

स्मृति' (१७।६०) में भी कहा है। 'त्वम्' यह 'युष्मद्' शब्द की सभी विभक्तियोंके एकवचनका उपलक्षण है, यह 'याज्ञवल्क्यस्मृति'के उक्त पद्यकी मिताक्षरामें कहा है। बृहत्पराशर-स्मृतिमें भी कहा है—'त्वंकारं तु गुरोरुक्त्वा हुंकारं तु गरीयसः। प्रसाद्यैतौ अनश्नंस्तु स्नात्वा शुध्येद् द्विजोत्तमः'। (६।२७४) वादिप्रतिज्ञादि स्मृतिमें लिखा है—'हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वकारं च गरीयसः। स्नात्वानश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् (११।२०३)

यहां मेधातिथिने लिखा है—"गरीयसः त्वंकारमुक्त्वा 'त्वमेवमात्थ, त्वया इदं कृतम्—इति एकवचनान्तयुष्मच्छब्दोच्चारणे प्रायश्चित्तमेतत्। प्रथमादिविभक्तिर्न विवक्षिता। तथा च समाचारो गुरौ—'युष्मासु' इत्यादि बहुवचनं प्रयोक्तव्यम्।" यहां बड़ेके लिए एकवचनान्त युष्मद्-शब्दके प्रयोगकी स्पष्ट निन्दा की है। आर्यसमाजके श्रीतुलसीराम स्वामीने भी यही 'अर्थ किया है—"ब्राह्मणको 'हुम' ऐसा कह कर और विद्यादिमें बड़ेको 'तू' ऐसा कह करके सूखा रह. दिन भर हाथ जोड़ कर अभिवादनसे प्रसन्न करना।" यहां आर्यसमाजी श्रीगङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० लिखते हैं :—"अपने से बड़ेको 'तू' कह कर पुकारनेके दोषका प्रायश्चित्त यह है कि—स्नान करके उपवास करे, और दिन भर उससे प्रणाम करके प्रसन्न करनेका यत्न करे।"

मनुस्मृति मान्यके लिए 'भवत्' शब्दके प्रयोग को आदिष्ट करती है। जैसेकि 'अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीया-

नपि यो भवेत् । भोभवत्-पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्' (२।१२८) । इसमें श्रीगङ्गाप्रसाद उपाध्यायने लिखा है—"यदि कोई पुरुष दीक्षित हो चुका हो तो उसका आदर करे, नाम न ले और 'भो भवान्' ऐसा कहे; चाहे वह आयु में छोटा ही क्यों न हो।" यहीं श्रीतुलसीरामने लिखा है–"यदि दीक्षित कनिष्ठ भी हो, तथापि उसका नाम लेकर न बोले; जो कुछ बोलना हो तो 'भो दीक्षित ! वा आप (भवान्) कह कर बोले।"

इससे सिद्ध होता है कि बड़ेका आदर करे। उसके लिए 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे। यह है भी ठीक। 'तू' से दूसरेको मुखातिब (अभिमुख) किया जाता है; अतः उसे मध्यम-पुरुषकी क्रिया दी जाती है। पर बड़ेको मुखातिब नहीं किया जाता, किन्तु उसे 'भवान्' 'श्रीमान्' आदि कहा जाता है। बड़ा होनेके कारण मुखातिब न करनेसे ही उसे मध्यम-पुरुषकी प्रत्यक्ष क्रिया न देकर प्रथम पुरुषकी परोक्ष क्रिया दी जाती है। अतः बड़ेको 'तू' कहकर मुखातिब करना उसे छोटा बनाना है। 'ज्यायांसमभिवादयन्' (मनु २।१२२) यहां अभिवादन भी बड़ेको ही सिद्धहोता है, छोटेको नहीं।

इतिहासमें, लोकवृत्तमें यदि इससे विरुद्धता दिखलाई पड़े, तो वह ग्राह्य नहीं होती। लोक में कभी शास्त्रविरुद्ध व्यवहार भी चल पड़ते हैं, पर वे ग्राह्य नहीं हो जाते। इसीलिए 'महाभारत' शान्तिपर्वमें कहा है—"कारणाद् धर्म-मन्विष्येद् न लोकाचरितं चरेत्" (२६२।५३) 'न लोकवृत्तं

वर्तेत (मनु ४।११) 'न विरुद्धेन कर्मणा' (४।१५) ऐसे सैंकड़ों ही इतिहासों वा आचरणोंको एक विधिवाक्य निराकृत कर सकता है; चाहे वे आचरण उसी ही पुस्तकमें लिखे क्यों न हों ? तब हमें धर्मशास्त्रसम्मत धर्म ही इस विषयमें ढूंढना चाहिए। 'लोकमें यह प्रचलित है' यह सोचकर उसका आचरण नहीं करना चाहिए। तब इतिहासके आचरणसे धर्मशास्त्रका वचन किसी प्रकार बाधित नहीं हो जाता। इधर 'न्यायदर्शन' (४।१।६२) के कथनानुसार लोकव्यवहारकी व्यवस्था धर्मशास्त्राधीन होती है, इतिहासके अधीन नहीं हुआ करती। आर्यसमाजका वेद है स्वामि-दयानन्दकृत वेदभाष्य। आर्यसमाजकी स्मृति है 'सत्यार्थप्रकाश'। आर्यसमाजका पुराणेतिहास है स्वामी दयानन्दका जीवनचरित्र। तब क्या स्वामि-दयानन्दजीके जीवनचरित्रमें वर्णित उनके हुक्कापान, नसवार सूंघना इत्यादि विरुद्धाचरणोंका आर्यसमाजी अनुकरण करते हैं ? यदि नहीं, तो यहाँ भी वैसे जान लेना चाहिए। इस प्रकार वादीको उत्तर मिल गया।

(ख) आगे वादीने 'नमस्ते'का शब्दार्थ 'तेरा आदर करता हूँ' यह माना है। तो क्या वादी हिन्दीमें किसी मान्यको 'तेरा' यह प्रयोग देते हैं ? यदि नहीं, तो 'नमस्ते'में से भी 'ते'का बहिष्कार कर देना चाहिए। मान्यके लिए 'नमः' शब्दका प्रयोग करें। फिर 'ते'में आग्रह कैसा ? वास्तवमें यह उनकी साम्प्रदायिक-दृष्टि है, तभी तो इतना आग्रह करते हैं। जो कि लिखते हैं कि "यह आदर-मान, बिना किसी भेद-भावके प्रत्येक

का किया जाना चाहिए" तो नमस्कार प्रकाशन करनेके लिए चरणोंपर भी गिरना पड़ता है। तब क्या आर्यसमाजी गुरु, शिष्यकी भी चरणवन्दना करते हैं? क्या आर्यसमाजी पिता, अपने पुत्रके भी चरणोंको पकड़ते हैं? यदि नहीं, तब ज्येष्ठ-कनिष्ठमें व्यवहार-भेद स्वतःसिद्ध हो गया। तब 'उसीसे सामाजिक सङ्गठन और प्रेम बना रहता है' यह उनकी बात कट गयी।

इसीलिए प्राचीनकालमें ज्येष्ठ, कनिष्ठ, समानोंसे मिलनेके समय व्यवहारभेद भी किया जाता था। उदाहरण-स्वरूप पहले महाभारतादिके प्रमाण हम दे चुके हैं। श्रीबाणभट्टकृत 'श्रीहर्षचरित्र'के तृतीयोच्छ्वासके आरम्भमें जब श्रीबाणभट्ट बन्धुओंके पास पहुँचे, तब वहां जो आचार हुआ, वह उन्हींके शब्दोंमें देखिए—'क्रमेण कांश्चिद् (ज्येष्ठान्) अभिवादयमानः कैश्चिद् (कनिष्ठैः) अभिवाद्यमानः कैश्चित् (वृद्धैः) शिरसि चुम्ब्यमानः, कांश्चित् (शिशून्) मूर्ध्नि समाजिघ्रन्, कैश्चिद् (समानैः) आलिङ्ग्यमानः, कांश्चिद् (समानान्) आलिङ्गन्, अन्यैः (ज्येष्ठैः) आशिषाऽनुगृह्यमाणः, परान् (कनिष्ठान् आशिषा) अनुगृह्णन्, बहुबन्धुमध्यवर्ती परं मुमुदे।" यहां पर 'नमस्ते' शब्द भी नहीं है और व्यवहार-भेद भी है, तब नमस्तेवाद भी दूषित सिद्ध हुआ।

(ग) अन्तमें वादी एक वेद-मन्त्र अर्पण करते हैं—'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय च अपरजाय च। नमो मध्यमाय चापरजाय च, नमो जघन्याय च बुध्न्याय च' (यजुः

१६।३२) और यहां पर वे टिप्पणी करते हैं—"बूढ़े-बालक, बड़े-छोटे, बराबर-शिशु, नीच-उच्च सब परस्परमें नमस्तेका व्यवहार करें।"

यहां भी वादीकी कपोलकल्पना है। उक्त मन्त्रका यह अर्थ नहीं है। इधर उक्त मन्त्रमें 'नमस्ते' शब्द ही नहीं; तब उक्त शब्द कहांसे निकाला गया? 'नमस्ते' इन दो पदोंके मध्य या व्यवधानमें जब आपलोग थोड़ा-सा भी भेद या थोड़ा-सा भी परिवर्तन नहीं चाहते; तब उसके सिद्ध करनेके लिए उससे भिन्न-पद वाला प्रमाण देनेसे आपका पक्ष पुष्ट नहीं हो सकता; बल्कि खण्डित हो जाता है। उक्त-मन्त्रमें यह भी नहीं लिखा गया कि ज्येष्ठ कनिष्ठको नमस्कार करे, बड़ा छोटेको नमस्कार करे। यदि ज्येष्ठ-द्वारा कनिष्ठको नमस्कार करना वेदको अभीष्ट होता; तो प्राचीन-साहित्यमें कनिष्ठ-द्वारा ज्येष्ठकी तरह, ज्येष्ठके द्वारा कनिष्ठ भी नमस्कृत किया जाता; पर ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। अतः वेदमन्त्रका वादिसम्मत अर्थ भी ठीक नहीं।

वेदमन्त्रोंके अर्थ स्वेच्छानुसार नहीं हुआ करते; किन्तु देवतावादके अनुसार ही होते हैं। यजुर्वेदके १६ वें अध्यायमें १६वें मन्त्रतक एकरुद्र देवता है; १७ मन्त्र से ४६ मन्त्र तक बहुरुद्र देवता हैं। एकरुद्र में एक रुद्र की स्तुति है, बहुरुद्रवाले मन्त्रोंमें रुद्र के २४० संख्यावाले रुद्ररूप-गणों की बहुवचनरूपमें और पृथक्-पृथक् रूपमें स्तुति है। एक-एक मन्त्र में आठ-आठ रुद्रके गणोंको नमस्कार किया गया है। 'नमो गणेभ्यो

गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो···विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमः" (यजुः १६।२५) यहां पर रुद्रके गण तरह-तरह के रूपवाले तथा बहुवचनमें दिखलाये गये हैं। उनमें शान्तरूपों को दोनों ओरसे तथा घोररूपोंको एक ओर से नमस्कार कहा गया है। बहुवचनमें 'गणेभ्यो नमस्ते' न कहकर 'नमो वः' वेदने बतलाया है; जिससे 'नमस्ते' इसकी वादियोंसे अभीष्ट अपरिवर्तनीयता, अनिवार्यता तथा सार्वत्रिकता वेद ने स्वयं काट दी है।

आगे वेदने उन गणोंके विविधरूप दिखलाएं हैं। कहीं वे गण कुत्तेके रूपवाले, कहीं कुत्तेके स्वामीके रूपवाले, कहीं चोरोंके स्वामीके रूपवाले कहे गये हैं, यह १६ वें अध्यायमें स्पष्ट है, उनको नमस्कार भी किया गया है। जैसेकि 'नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो, नमो' (यजुः १६।२८) किरात-वेषधारी रुद्रके अनुचर श्वा तथा श्वपति थे। 'तस्कराणां पतये नमो नमः' (यजुः १६।२१) रुद्रके किरात-वेषतामें उसका तस्करपतित्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वे ही रुद्रके गण जो बड़े हैं, जो उनसे छोटे हैं, जो परिमाणमें बड़े हैं, या जो छोटे हैं, जो मध्यम हैं, जो उत्तम हैं, जो अधम हैं, जो वामन हैं, जो लम्बे हैं, जो सेनापति हैं, रथी तथा तक्षा हैं, उनका उस अध्यायके आगे के मन्त्रोंमें वर्णन किया गया है। रुद्रदेवके गण होनेसे उनको नमस्कार भी किया गया है। जैसे कि–'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च' (यजुः १६।३२) यही वादीका दिया हुआ

मन्त्र है। इसी प्रकार 'नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमो नमः' (यजुः १६।२७) नमो ह्रस्वाय च वामनाय च (यजुः १६।३०) में भी जान लेना चाहिये। तब वे रुद्रके गण आपसमें छोटे-बड़े होते हुए भी हमारी अपेक्षा योनिकी प्रधानता होनेसे श्रेष्ठ हैं, इसलिए नमस्करणीय हैं। जैसे कि मान लीजिये–आर्यसमाजमें बड़े स्वामी दयानन्दजी थे, तथा छोटे स्वामी तुलसीराम थे। वे चाहे आपसमें बड़े तथा छोटे हैं, तथापि वादी उन दोनों से छोटा है, तब वादी कहे कि–ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं। अब बताइये–इस में हमारे पक्षकी हानि क्या है ? यही अर्थ वादीके दिये मन्त्र का है। तब वादीका अभीष्ट खण्डित हो गया। हमारे पक्षकी कुछ भी क्षति न हुई।

यह अर्थ हुआ रुद्रके गणोंके पक्षमें। रुद्रके पक्षमें भी उक्त मन्त्रका अर्थ जान लेना चाहिए। रुद्रपक्ष में उसकी ज्येष्ठता 'महिमा' नामक सिद्धि का उद्देश्य करके तथा कनिष्ठता उसकी 'अणिमा' नामक सिद्धिका विचार करके होती है। क्योंकि वह 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' (श्वेताश्वः ३। २०) होनेसे ज्येष्ठभी है कनिष्ठ भी है। इसलिए वायुपुराण 'शर्वस्तुति'में 'नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय' (२४।६२) कहा है और 'शिवसहस्रनाम'में 'कनिष्ठाय नमोनमः मध्यमाय' (४८) पूर्व इसलिए है कि सृष्टिके आदिमें प्रकट होता है–हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे' (यजुः वा० सं० १३।४)। अपरज इसलिए है कि प्रलयमें कालाग्निरूपसे प्रकट होता है। 'वः' यह बहुवचन

रुद्रके आदरार्थ है। इस प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए। तब इससे वादीकी अर्थ-सिद्धि कैसे हो सकती है? वेदमें स्वेच्छानुसार अर्थ नहीं हुआ करते, किन्तु देवतावादका ही अनुसरण करके अर्थ हुआ करते हैं—यह बात वादीको नहीं भूलनी चाहिए। तब उनका पक्ष भी असिद्ध हो गया। तभी तो उन्होंने जो २६ प्रमाण उद्धृत किये हैं, उनमें इतरेतरके प्रति 'नमस्ते' नहीं की गई है। तब 'बाल-वृद्ध एक-दूसरे को नमस्ते करें'—यह पक्ष भी उनका असिद्ध हो गया।

(घ) आगे वादीने 'जय श्रीराम, जय श्रीकृष्ण, नमो नारायण, एतदादिक शब्द आक्षेपयोग्य माने हैं, तथा प्राचीन-ग्रन्थोंमें इनका अभाव माना है, तथा उन्हें कपोल-कल्पित माना है, परन्तु उन्हें यह जानना चाहिए कि एतदादिक शब्द प्रणाम-आशीर्वादवाचक नहीं, किन्तु अपने इष्टदेवके कीर्तनवाचक हैं। परस्पर सम्मेलनके समय प्रणाम-आशीर्वाद ही आवश्यक नहीं होता, किन्तु तब कुशलप्रश्न या इष्टदेवका कीर्तन एवं स्मरण भी हुआ करता है। जैसे कि—'सततं कीर्तयन्तो माम् (श्रीकृष्णम्)' (९।१४) इससे सब इष्टदेवोंका कीर्तन हो सकता है, क्योंकि—कृष्ण यहां उपलक्षणार्थ है। 'मामनुस्मर युध्य च' (गीता ८।७) यहां 'जयश्रीकृष्ण' इत्यादिसे श्रीकृष्णका स्मरण तथा युद्ध अर्थात् व्यापक अर्थमें कार्यक्षेत्रमें आना बताया है। वेदमें नामस्मरणकी भी आज्ञा है, जैसे—'सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि' (ऋ० ७।२२।५) इत्यादि। यहां स्थान नहीं है कि हम उन मन्त्रोंको उद्धृत करें।

सबका इष्टदेव रुचिवैलक्षण्यसे भिन्न-भिन्न भी हुआ करता

है। जैसे कि वर्णमालाके एक होने पर भी कोई संस्कृत, कोई अंग्रेजी, कोई उर्दू, दूसरा बङ्गाली, कोई गुजराती, दूसरा आन्ध्रकी वर्णमालाको अपनी रुच्यनुसार सेवित करता है। इसलिए श्रीकृष्णादिके भक्त अपने इष्टदेव-श्रीकृष्ण आदिका नाम लेते हैं, देशभक्त 'वन्दे मातरम्' या 'जय-भारत' या 'जय हिन्द' कहते हैं। राष्ट्रभाषाके भक्त 'जय राष्ट्रभाषाकी', धार्मिक लोग 'जय धर्मकी' कहते हैं। इनमें कई शब्द हिन्दी भाषाके भी होते हैं। 'मत्था टेकना' यह 'नमः' शब्दका देश-भाषामें अनुवाद है। यदि श्रीकृष्ण आदि परमात्माके नाम वेदादिमें नहीं हैं, अतएव अवैदिक होनेसे त्यक्तव्य हैं, तब स्वा०दयानन्दसे 'सत्यार्थप्रकाश'के प्रथम-समुल्लासमें कहे गये परमात्माके 'सच्चिदानन्द, भौम, शनैश्चर, केतु' ये नाम वेदादि में कहां हैं? फिर तो वेदमें न होनेसे 'संन्यासी, गुरुकुल' आदि शब्दों को भी अवैदिक होने से छोड़िये। यदि वादी 'जय-श्रीकृष्ण' आदि शब्दोंको प्राचीन-ग्रन्थोंमें व्यवहृत नहीं मानते, इसीलिए अव्यवहार्य मानते हैं, तब 'नमस्ते' यह जो आपके अनुसार एक-पद है अथवा रूढ है, तथा प्रणाम एवं आशीर्वादमें और समानोंके साथ 'नमस्ते' इस अखण्डरूपमें आपसे व्यवहृत है, ऐसा 'नमस्ते' शब्द प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं नहीं पाया जाता। यदि 'नमस्ते' एक-पद होता, तो वेदादि प्राचीन ग्रन्थोंमें 'नमो वः पितरः' (अथर्व० १८।४।८५) यहां पर भी 'नमस्ते पितरः' होता। अखण्ड-पद होने पर 'नमोस्तुते (महा० सभा० ६३ अ०, वनपर्व० ७५।२६, भीष्म पर्व (५८।

६६) पद्मपुराण० सृष्टि० १७।१५०) इत्यादि वादीके ही दिये प्रमाणोंमें 'अस्तु' आदि पदोंका व्यवधान न होना चाहिए था, और 'नमो ज्येष्ठाय च' (यजुः १६।३२) इस वादीके दिये मन्त्र में 'ते' से रहित 'नमः' कभी न रखा जाता, और वादीने जो २६ प्रमाण दिये हैं, वहां दूसरी ओरसे भी 'नमस्ते' कहा जाता, समानों में भी परस्पर 'नमस्ते' होता, पर वेदादिमें इस प्रकार कहीं नहीं। तब यदि 'जय श्रीकृष्ण' आदि शब्द अर्वाचीन होनेसे हेय हैं, तब वादियोंका 'रूढ' तथा प्रणामाशीर्वादमें समान, समानोंमें भी समान, यह 'नमस्ते' शब्द भी अर्वाचीन होनेसे त्यक्तव्य है। यदि आजकल व्यवहृत होनेसे 'नमस्ते शब्द माननीय हैं; तब 'जय श्रीकृष्ण' आदि भी बहुत व्यवहृत होनेसे आप मानिये।

अथवा यदि 'नमो वः पितरो रसाय' (यजुः २।३२) इत्यादि वेदके अनुसार 'नमस्ते' इसे दो पद मानकर बहुवचनमें 'नमो वः' इस प्रकार आप परिवर्तन कर देंगे, तो फिर आप का अपरिवर्तनीय 'नमस्ते-वाद' कट गया, क्योंकि अपरिवर्तनीय होने से उसकी अखण्डता नष्ट हो गई।

(ङ) यदि 'जय श्रीकृष्ण' आदि शब्द वादीके अनुसार साम्प्रदायिकताके सूचक हैं, तब 'नमस्ते' शब्द भी आर्यसमाज सम्प्रदायका 'ट्रेडमार्क' होनेसे साम्प्रदायिक ही है। नहीं तो वेदमें तो 'नमः' (यजुः १६।२२), 'नमोस्तु' (यजु १६।८), 'नमो वः' (अथर्व० १८।४।८५) 'नमामि' (अ० ३।८।५), 'वन्दे' (यजुः १२।४२), 'नमस्कारः' (अथर्व० ४।३६।६), 'अभिवादये' (अथर्व० ६।६।४) इत्यादि शब्द भी प्रयुक्त किये जाते हैं, आर्यसमाज इनका प्रयोग क्यों नहीं करता? 'नमस्ते' में क्यों थोड़ा भी परिवर्तन नहीं चाहता? तब यह स्पष्ट साम्प्रदायिकता है। बल्कि 'नमस्ते'के प्रयोगसे बहुत स्थलोंमें अशुद्धि भी हो जाती है, जैसे कि 'मम भवद्भ्यो नमस्ते' 'मान्यवराः! 'नमस्ते' इत्यादि। इधर आशीर्वादमें 'नमस्ते'का प्रयोग कहीं नहीं होता। तब 'नमस्तेवाद' दूषित सिद्ध हुआ।

इधर गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नीका समान व्यवहार नहीं होता। शिष्य यदि गुरुके पैरोंमें गिरता है, तो गुरु शिष्यके पैरोंमें नहीं पड़ता। गुरु यदि शिष्यको आशीर्वाद देता है, तो शिष्य गुरुको आशीर्वाद नहीं देता। इस तरह जब व्यवहारभेद है, तब 'नमस्ते' इसका कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि समानपदसे व्यवहारभेद प्रतीत नहीं होता। यदि शिष्य-द्वारा कहे 'नमः'का नमस्कार तथा गुरु-द्वारा कहे 'नमः'का 'यथायोग्य सत्कार' अर्थ मानें, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि उद्दिष्ट तथा प्रतिनिर्दिष्ट शब्दमें थोड़ा भी अर्थ-भेद नहीं होता। नहीं तो फिर 'उदये सविता रक्तस्ताम्र एवास्तमेति च'में भग्नप्रक्रम दोष नहीं होना चाहिए। तब उद्दिष्ट-प्रतिनिर्दिष्ट 'नमस्ते' पदकी समानतामें थोड़ा भी अर्थभेद नहीं हो सकता। अतः 'नमस्ते' यह दूषित सिद्ध हुआ, इष्टदेव-सङ्कीर्तन विषयमें तो परस्पर भेद नहीं होता, क्योंकि वहां प्रणाम-आशीर्वाद भी नहीं होता। हां तब हाथ जोड़ने तथा 'आशीर्वादके संकेत

भेद तो किया ही जाता है। परन्तु 'नमः' शब्द प्रणाम-सूचक होता है, आशीःसूचक नहीं। तब दोनों ओरसे उसका प्रयोग अशुद्ध है। अतः 'नमस्तेवाद' भी दूषित सिद्ध हुआ ! 'अवोचाम नमो अस्मै' (ऋ० १।११४।११) यहां दयानन्दभाष्यमें 'इस मान करने योग्य सभाध्यक्षके लिए नमः—नमस्ते' ऐसे वाक्य को 'अवोचाम' कहें' 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय' (यजुः १६।३२) परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इसका उच्चारण करके छोटे-बड़ोंका निरन्तर सत्कार करें' यह कहते हुए स्वा०दयानन्द जीका मत भी निराकृत हो गया; इन मन्त्रोंमें "नमः" कहा है, 'नमस्ते' नहीं।

(८) 'नमस्ते-व्याख्याका निरीक्षण।

(१) 'मान्य-लोगोंको नमस्कार बालक लोग करें' (पृ० २८ पं. ६) 'जहां किसीके पास जाय; वहां उसको पहले ही नमस्कार करे' (पृ० ३४ पं० ८) यह स्वा. द.जीके आदिम-सत्यार्थप्रकाशके वाक्य हैं। 'यजुः' १६।६२ के भाष्यमें स्वामीजी ने पितरों अथवा गुरुजनोंको भूमिपर घुटने टेककर नमस्कार करना लिखा है' (सविता. १२।१ में एक आर्यसमाजी)- इससे स्पष्ट है कि-स्वा. द. जीने सन् १८७५ तक 'नमस्ते'का आविष्कार नहीं किया था। वे संन्यासी होनेके नाते सबको आशीर्वाद देते हुए प्रायः अपने पत्र-व्यवहारमें 'आनन्दित रहो' लिखा करतेथे, 'नमस्ते' नहीं। फिर अन्तकालमें उन्हें 'नमस्ते' की सूझ हुई। मुन्शी-इन्द्रमणिने इसमें स्थित 'ते' की उन्हें बुराई बताई। इसपर निरुत्तर होकर भी उन्होंने कोई विशेष

निर्णय नहीं किया, पर चेलोंको यह शब्द वैदिक प्रतीत हुआ; और उन्होंने इसका प्रचार प्रारम्भ कर दिया। स्वा०द०जीके स.प्र., सं.वि., वेदभाष्य आदिमें भी 'नमस्ते'का प्रक्षेप कर दिया।

अंग्रेजी पढ़े-लिखोंने जोकि-सर्विसमें थे, और संस्कृतानभिज्ञ थे, इसे अपनाया। जनताको उन सर्वेण्टोंसे प्रतिसमय काम पड़ता था। इस 'नमस्ते'के कहनेसे वे प्रसन्न होकर उनका काम शीघ्र कर देते थे; तब जनतामें भी यह चल निकला। जब सनातनधर्मी विद्वान्ोंने, अशुद्धता आजानेसे इसका विरोध किया, तो आर्य-समाजियोंने इसकी सिद्धिकेलिए कई निबन्ध लिखे। हमने सभीका उत्तर लिख रखा है। इस पुष्पमें इस विषयके कई निबन्ध दिये जा चुके हैं। शेष अन्य पुष्पोंमें देंगे।

इस विषयकी एक छोटीसी पुस्तक 'नमस्तेकी व्याख्या' हमें मिली है, जिसके लेखक काङ्गड़ी गुरुकलके दर्शनाध्यापक श्रीसुखदेव विद्यावाचस्पति हैं। इन्हींका अन्धानुसरण बिना उनका नाम लिये किसी श्री राजेन्द्र-नामक आर्यसमाजीने 'भारतीय-संस्कृति के तीन प्रतीक' में किया है; जब हमने उस की अशुद्धताएं दिखलाईं; तब उस महाशयने उन दोषोंको 'आर्य' पत्रमें स्वीकृत किया। अस्तु। हम यहां 'उक्त नमस्ते-व्याख्या'का निरीक्षण करते हैं; जिससे 'आलोक'-पाठकोंको 'नमस्ते' के विषयमें दिये जानेवाले प्रमाणोंकी निस्सारता प्रतीत हो जाए। हम लेखकका 'वादी' अथवा 'प्रतिपक्षी' नामसे निर्देश करेंगे।

(२) आरम्भमें लेखकने एकताकेलिए उपाय बताते हुए अनेकताकी निन्दा की है। वे लिखते हैं—'कोई कहता है 'नमस्ते', तो दूसरा चिल्लाता है [वादीने कैसे अच्छे शब्दका प्रयोग किया है।] 'जय गोपालकी'। एकने कहा सीताराम, तो दूसरा भन्नाके बोलता है [यहां भी वही असभ्यता की गई है] 'राधेश्याम', और लगे दोनों लड़ने। एकने किया 'राम-राम', तो दूसरेने उत्तर दिया—'जय श्रीकृष्ण'। कुछ समझमें नहीं आता कि-कौन ठीक कहता है। (पृ० २)

यहां यह जानना चाहिये कि जो लोग 'जयश्रीकृष्ण' आदि बोलते हैं, वह परमात्माके नाम होनेसे ही। उनके मतमें यह नाम परमात्माके हैं। परमात्माके नामका कहना भी वेदने ही आदिष्ट किया है, 'जैसेकि—'रुद्र ! यत् ते क्रिवि परं नाम' (यजुर्वेद सं. १०।२०) यहां स्वा. दयानन्दजीने अर्थ किया है—'आपका जो दुःखोंसे छुडानेका हेतु उत्तम नाम है'। अथर्ववेद सं.में भी कहा है'—'नामानि ते शतक्रतो ! विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे' (२०।१९।३) यहां 'नामानि'में बहुवचन है शतक्रतु इन्द्रको कहते हैं, और 'इन्द्रो वै सर्वे देवाः' (शत. १३।२।७।४) इन्द्रसे सब देवताओंका ग्रहण हो जाता है। उक्त मन्त्रका अर्थ आर्य-समाजके विद्वान् श्रीराजाराम शास्त्री इसप्रकार करते हैं—'हे शतक्रतो इन्द्र ! हम सारी स्तुतियोंके साथ तेरे नामोंको बुलाते हैं'। इस प्रकार अन्य भी बहुतसे मन्त्र हैं; उन्हें हम नाम-कीर्तन विषयमें लिखेंगे। इस प्रकार जब परमात्माके नाम बहुत हैं, और उनका सभी वाणियोंसे कीर्तन वैदिक है;

तब यहां आक्षेपकी क्या बात है ? वादियोंके मतमें भी वेदमें परमात्माके इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा, अग्नि, यम आदि बहुतसे नाम हैं, बल्कि-स्वामी दयानन्द के मतमें तो शनैश्चर, राहु, केतु, मङ्गल, बुध आदि भी परमात्माके नाम हैं। तब यदि कोई अपनी रुचिके अनुकूल परमात्माका कोई नाम लेता है, दूसरा दूसरे नामको; तब इसमें आक्षेप क्या ? स्वा. दयानन्दने तो परमात्माके १०० नाम स.प्र. में लिख डाले हैं। शेष है परस्पर कलह; सो वह तो अज्ञानियोंमें ही हुआ करता है। क्या एक 'नमस्ते' ही के कहने वालोंके, परस्पर कलह, पार्टीबाजियां वा दल बन्दियां नहीं हुआ करतीं ?

यदि कहा जावे कि-कृष्ण, राम आदि वैदिक नाम नहीं हैं, तो क्या सर्वत्र वैदिक-नाम-स्थापन आवश्यक है ? यदि ऐसा है; तो 'गुरुकुल' शब्दका तथा 'संन्यासी' शब्दका बहिष्कार कीजिये; क्योंकि-वह वेदमें नहीं। वादीके स्वामीजीने सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, परमेश्वर, गणेश, शनैश्चर आदि नाम जो परमात्माके (स.प्र. १म समु.) लिखे हैं; तब सत्यार्थप्रकाशसे उन्हें बहिष्कृत कर दीजिये। राम-कृष्ण आदि नाम भी वेदमें सुलभ हैं। नाम-कीर्तन वैदिक ही है; उसमें आक्षेप क्या ?

कहा जाता है कि—'क्या महाराजा रामचन्द्रजी अपने पिता दशरथको भी सत्कार करते समय 'राम-राम' ही करते थे, और राजा दशरथ भी अपने बेटेको 'राम-राम' कहकर ही उत्तर देते थे ?' (पृ० २-३) इसपर वादीको भी कहना चाहिये

कि श्रीराम दशरथको और दशरथ श्रीरामको उभयपक्षसे 'नमस्ते' कहा करते थे क्या ? यदि इसमें कोई प्रमाण हो तो दिया जाय ! । नमस्कार तो हाथ जोड़नेसे भी होता है, जैसेकि वेदमें कहा है—'उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्' (ऋ० ६।१६।४६) यहां श्रीसायणने लिखा है—'उत्तानहस्तः कृताञ्जलिपुटः सन् नमसा-नमस्कारेण आविवासेत्-परिचरेत्' । 'उत्तानहस्तो... ववन्दा' (ऋ. ६।६३।३) यहां भी श्रीसायणाचार्य लिखते हैं—उत्तानहस्तः कृताञ्जलिः ववन्द-स्तौति' । अथवा पांव छूनेसे भी नमस्कार हो जाया करता है—'श्रीमनुने कहा है—'व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यः दक्षिणेन च दक्षिणः । (२।७२) स्वा० दयानन्दजीकी संस्कारविधिमें भी लिखा है—'स्त्री पतिके चरणस्पर्श, पादप्रक्षालन, आसनदान करे' (विवाह० पृ० १३३) । और आशीर्वाद भी हाथके इशारेसे, बिना भी किसी शब्द-विशेषको बोले हो सकता है । इस प्रकार राधा और कृष्णका भी वादी परस्पर 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग दिखलावे । (राधाके विषयमें हमारा निबन्ध छठे पुष्पमें द्रष्टव्य है—जिसमें वादीका—'राधाके बारेमें सुना गया है कि—वह श्रीकृष्णकी विवाहिता पत्नी नहीं थी'—यह आक्षेप परिहृत किया गया है) यदि वादी वैसा प्रमाण नहीं दिखला सकता ; तब उसका पक्ष भी असिद्ध हो गया ।

जोकि वादीका कथन है कि—'मिलें परस्पर सम्मान करने के लिए, या आशीर्वाद लेनेके लिए, और बोलें किसी स्त्री और पुरुषका नाम, यह कैसी अप्रासङ्गिक बात है', इसका

उत्तर वादीने ही स्वयं पूर्वपक्षीके द्वारा दिलवाया है कि 'राम और कृष्ण विष्णुके अवतार थे, अतः वे साक्षात् परमात्मा थे, परस्पर मिलते समय यदि परमात्माका नाम लिया जाय; तो उसमें दोष क्या है ?

फिर इसका प्रत्युत्तर वादी लिखता है कि—'परमात्मा अवतार लेता ही नहीं' । पर यह गलत है, इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' का चतुर्थ पुष्प देखना चाहिए । वादी भले ही अवतार न मानता हो, पर जो उक्त नाम कहते हैं, वे तो परमात्माका अवतार मानते हैं, और उसीका नाम-कीर्तन 'जय श्रीराम' आदि शब्दसे लेते हैं; फिर इसमें दोष ही क्या रहा ? । वादी अवतार न भी मानें ; पर राम और कृष्ण परमात्माके नाम तो मान ही सकते हैं—'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्, कर्षति भक्तान्' तब भी कोई दोष न रहा ; क्योंकि—नाम-वचन भी वैदिक है ।

जोकि कहा जाता है—'मान भी लिया जाय कि—परमात्मा अवतार लेता है, उस पुरुष बने परमात्माका नाम लेना आपके मतमें बुरा नहीं, अच्छा है, तो ठीक रहा । ऐसे परमात्माका नाम हर स्थानपर बिना प्रसंगके भी ले लिया करो ? ।' यह पूर्वपक्षका प्रत्युत्तर बहुत निर्बल है, इसमें कुछ भी दम नहीं । आपसके मिलनेमें हमारी स्थिति एवं पालन करनेवाले भगवान्का आदिमें नाम लेकर फिर प्राकरणिक बात चलाना अप्रासंगिक कैसे हो ? पुस्तकके आरम्भमें भगवान्का नाम—कीर्तन करके उसके बाद ही तो प्रासंगिक-

लेखन प्रारम्भ करना पड़ता है। वेद तो कहता है—'सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि' (ऋ. ७।२२।५) इस मन्त्रमें स्थित 'सदा' शब्द भगवान्‌के नामकी वादीसे उपक्षिप्त अप्रासंगिकता को काट देता है, भगवान्‌के नामका सदा ही प्रसंग है, क्या पता—कब आंखें मुंद जाएं ? 'जयश्रीकृष्ण' के वाच्य भगवान् कृष्ण स्वयं ही उक्त वेदवाक्यका अनुवाद देते हैं—'सततं कीर्तयन्तो माम्, (गीता ९।१४) 'मामनु स्मर युध्य च' (८।७) मेरा स्मरण भी करो, और संसारी व्यवहार-रूप युद्ध भी करो। तब जो कहा जाता है कि 'परमात्माका नाम लेनेसे शायद पाप तो न हो ; पर व्यवहार तो नहीं चलेगा। एक मालिक को पानीकी प्यास लगी हो, और वह नौकरसे कहता है—'राम-राम'। इस स्थान पर आपके कथनानुसार सम्भवतः 'राम-राम' कहना पाप तो नहीं ; पर इतना कहने मात्रसे तो मालिक प्यासा मरेगा, भूखा पति 'राधाकृष्ण' कहता हुआ भूखा मरेगा' (पृ० ४) यह कथन 'मामनुस्मर युध्य च' इस भगवद् वचनसे ही कट गया। इस वादीके वचनको उससे प्रमाणित वेद भी अच्छी तरह काटता है। देखिये—'इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोवसितास इन्द्रम्। इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते' (ऋ. ४।२५।८) अर्थात्—छोटे, बड़े और मध्यम इन्द्र (परमेश्वर)को बुलाते हैं। रास्तेमें जाते-आते, उठते-बैठते, निवास करते हुए भी उसे ही बुलाते हैं। लड़ते हुए, वा खाना-पोना चाहते हुए भी उसी ऐश्वर्यशाली अपने इष्टदेवको बुलाते वा स्मरण करते-कराते हैं।

'इन्द्रं वयमनुराधं हवामहे' (अथर्व० १९।१५।२) राधा-सहित इन्द्र-ऐश्वर्यशाली कृष्णको हम बुलाते हैं। तब क्या वादीके कथनानुसार उस समय 'नमस्ते' कहनेमात्रसे दोनोंकी भूख-प्यास मिट जावेगी ? क्या उस समय 'पानी लाओ' इस कथनका कोई निषेध करता है ?

जोकि कहा जाता है कि—'छोटा अपने बड़ेका सत्कार करने गया, और कहने लगा—राम-राम। बड़ेने भी आशीर्वादमें दोहरा दिया—राम-राम। तो इससे क्या सत्कार और आशीर्वाद सूचित हो गये ? कदापि नहीं। इन शब्दोंसे सत्कार एवं आशीर्वादकी भूख नहीं बुझती' (पृ० ४-५) यह कहते हुए वादीने अपने पक्ष (दोनों ओरसे 'नमस्ते' शब्द कहना) पर भी कुल्हाड़ी चलाई है। इस अपने किये आक्षेपका उत्तर वादीने स्वयं भी दिया है—'थोड़ीसी भी बुद्धि का यदि प्रयोग किया जाय तो यह उलझन भी आसानीसे सुलझ सकती है। प्रकरण, समय तथा स्थानादिको देखकर यह बात बड़ी आसानीसे पहचानी जा सकती है।' (पृ० १०) वादी स्वयं जानता है कि—छोटा राम-राम कहता हुआ बड़ेके आगे 'हाथ जोड़ता है, और बड़ा वैसा कहता हुआ हाथके इशारेसे आशीर्वाद देता है। तात्पर्य यह है कि—नमस्कार-आशीर्वाद तो संकेतोंसे जाने जाते हैं, साथ ही अपने इष्टदेवके कीर्तनार्थ राम-राम, वन्दे मातरम्, जयहिन्द, जयश्रीकृष्ण आदि भी कह दिया जाता है—इसमें दोष क्या ? दोनों हाथ जोड़नेसे नमस्कारकी भूख दूर होती है, दाहिना हाथ ऊपर

करनेसे आशीर्वाद की भूख दूर हो जाती है।

ऊपर दिया गया दोष तो दोनों नमस्ते-वादियोंमें घटता है। उसमें पता नहीं लगता कि—आशीर्वाद देनेवाला इनमें कौन है, और नमस्कार करने वाला कौन; क्योंकि—दोनों ही एक ही शब्दका प्रयोग करते हैं—नमस्ते-नमस्ते! यदि आप भी दोनोंका छोटा-बड़ापन जानकर अथवा हाथ जोड़ने वा एक-हाथके इशारेसे जान जाते हैं कि-यह नमस्कर्ता है; और यह आशीर्वाददाता; तब 'राम-राम' आदि शब्द-प्रयोगमें भी जान लेना चाहिये।

आश्चर्य है कि—वादी अपने पक्षमें तो दोष देखता नहीं; परन्तु दूसरे पर वही दोष दे देता है—यह क्या बात? क्या 'पर-उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात है; ! वादीके पक्षमें यह एक महान् दोष पड़ता है कि—आशीर्वादकी भूख 'नमः' शब्दसे नहीं बुझती, क्योंकि—'नमः' शब्द नमस्कार एवं अभिवादन अर्थवाला है, आशीर्वादार्थक नहीं। इसमें वे अपने स्वामीकी साक्षी भी सुन लें—'नमस्ते' इस वेदोक्त वाक्यसे परस्पर नमस्कार कर' (सं०वि० पृ० १३३) 'नमस्ते' यह वेदोक्त वाक्य अभिवादनके लिए......है.... इसी वाक्यसे परस्पर वन्दन करें' (सं०वि० पृ० १७५ की टिप्पणी)। वेदने भी ऐसा ही माना है—'वन्दध्यै नमोभिः' (ऋ० १।२७।१) यहां पर 'नमः'से 'वन्दना' मानी है। 'वदि' धातु 'अभिवादनस्तुत्योः' अभिवादन अर्थमें प्रसिद्ध है। तब आशीर्वाद की भूखको 'नमः शब्द कैसे मिटा सकता है? छोटे-बड़ेका

परस्पर नमस्कार नहीं होता, किन्तु नमस्कार और आशीर्वाद ही होता है।

जोकि वादीका कहना है—"वेदोंमें तो क्या, आप सारे प्राचीन संस्कृत-साहित्यको भी पढ़ जाइये, कहीं एक-दूसरेके साथ राम-राम या राधा-कृष्ण आदि शब्दोंका प्रयोग नहीं है" इस पर वे याद रखें—जबकि—'सततं कीर्तयन्तो माम् (श्रीकृष्णम्)' (गीता ९।१४) 'सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि' (ऋ० सं० ७।२२।५) इत्यादि रूपसे सदा ही भगवान्के नाम का कीर्तन सभी शास्त्र कहते हैं, तब सभी स्थान उसका उल्लेख स्पष्ट न होने पर भी उसका प्रयोग सिद्ध हो ही जाता है। वेदमें भी बीज-रूपसे श्यामरंग वाले राम आदिका वर्णन आता है—यह दिङ्मात्र 'श्रीसनातनधर्मालोक' पञ्चम पुष्पमें देखें। तब उनकी नित्यशक्ति सीता और राधा भी स्वतः गृहीत हो जाएगी। 'इन्द्रं वयमनुराधं हवामहे' (अ० १९।१५।२) यहां पर राधासे अनुगत इन्द्र (ऐश्वर्ययुक्त श्रीकृष्ण) का आह्वान संकेतित किया गया है। सार्वदिक व्यवहार जहां-तहां स्पष्टरूपसे नहीं मिला करता। विधिसे उसकी कर्तव्यता सिद्ध हो जानेसे उसकी कृतताका भी अनुमान कर लिया जाता है।

कहा जाता है—'शब्द ऐसा कहो जो वेद-प्रतिपादित हो, सभी वेद, पुराण, इतिहास तथा स्मृति आदि ग्रन्थ एक और ही शब्दकी आज्ञा देते हैं, आर्य-समाज इसी शब्दका प्रचार करना चाहता है—(प्रश्न) वह शब्द क्या है? (उत्तर) वेदादि

सत्यशास्त्र तथा पुराणादि ग्रन्थ सभी एक स्वरसे यही कहते हैं कि–परस्पर 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग होना चाहिए'।

यह बात निष्प्रमाण है, किसी भी वेद वा स्मृति-पुराणादिमें कहीं भी आदेश नहीं दिया गया कि–परस्परमें 'नमस्ते' शब्द ही कहना चाहिए। वादीने भी वेद वा इतिहास का कोई प्रमाण नहीं दिया, और न वैसा प्रमाण दिखलाया जा सकता है–जहां परस्पर 'नमस्ते' शब्द कहने की आज्ञा हो; न ही कहीं परस्पर 'नमस्ते' किया ही जाता है। न प्राचीन-कालमें कभी किया ही गया है। न 'नमस्ते'से भिन्न शब्द कभी नहीं कहना चाहिए' यह कहीं कहा गया है। 'नमस्ते'–दिखलानेमें वादी याज्ञवल्क्य-गार्गी, यम और नचिकेता, श्रीकृष्ण और अर्जुन, राम–और सीता, पृथिवी और वराह, केतकी-महादेव, इस प्रकार उदाहरण दिखलाते हुए भी उभयपक्षसे 'नमस्ते' नहीं दिखला सका; इससे उसका "परस्पर नमस्ते' कहना" ही असिद्ध हो गया। 'शर्म मे यच्छ, नमस्तेऽस्तु,' (यजुः ४।६) 'नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्! स्वस्ति मेऽस्तु' (कठोपनिषद् १।९) इत्यादिमें जिसे नमस्कार किया गया है, उससे नमस्कार न मांगकर शर्म वा स्वस्ति (कल्याण) का आशीर्वाद मांगा गया है, तब परस्पर दोनों ओरसे 'नमः' शब्दका प्रयोग खण्डित हो गया।

(१) छोटे-बड़े, पूर्वज एवं अपरज तथा नीच तथा मध्यम आदि सबके लिए 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग दिखलाते हुए वादीने (पृ० १४में) 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च, नमः पूर्व-

जायापरजाय च, नमो मध्यमाय चापगल्भाय च, नमो जघन्याय बुध्न्याय च' (यजुः १६।३२) यह मन्त्र दिखलाया है, पर इस मन्त्रमें तो 'नमस्ते' शब्द ही नहीं सुन पड़ता; किन्तु 'नमः' शब्द ही। तब वादी 'नमः' शब्दका तो प्रचार करे, 'नमस्ते' शब्दको वह वेदसे आदिष्ट कैसे कहता है? क्या वादी यह स्वीकार करनेके लिए तैयार है?

वस्तुतः उक्त मन्त्रका वादीसे विवक्षित अर्थ ही ठीक नहीं–इस पर हम 'नमस्ते-विधानके प्रतिविधान'में विवेचना दे चुके हैं। संक्षेपमें यहां यह जानना चाहिए कि–यहां ज्येष्ठ और कनिष्ठ दोनों आपसमें नमस्कार नहीं कर रहे हैं, किन्तु एक ही नमस्कर्ता, अपनेसे बड़े परन्तु आपसमें छोटे-बड़े दोनोंको नमस्कार कर रहा है। वस्तुतः यहां ज्येष्ठ-कनिष्ठ-शब्दका भी वादीसे विवक्षित अर्थ ठीक नहीं; यदि ज्येष्ठ-कनिष्ठका अर्थ छोटा-बड़ा है, तो आगे 'पूर्वजाय च अपरजाय च' में पुनरुक्ति जा पड़ती है। इस कारण यहां छोटे-बड़ेका अर्थ न होकर 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' इस अर्थमें महादेवको ही ज्येष्ठ-कनिष्ठ शब्दसे कहकर नमस्कृत किया गया है। इसलिए वायु-पुराणमें 'नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय' (२४।९२) आदि कहा गया है।

वेदमें 'उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्' (ऋ० ६।१६।४६) इस मन्त्रमें बद्धाञ्जलि होकर 'नमः शब्द' कहना कहा गया है। 'यजाम (पूजयामः) इद् नमसा (नमः-शब्देन) वृद्धमिन्द्रं' (ऋ० ३।३२।७) यहां 'नमः' का प्रयोग अपनेसे बड़ेको दिख-

लाया गया है; तब छोटेके प्रति उसके वृद्ध न होनेसे 'नमः'का प्रयोग भी खण्डित हो गया; क्योंकि उसके आगे हाथ नहीं जोड़े जाते। अतः उस (छोटे) को 'नमः' कहना भी वेदशास्त्र-विरुद्ध ही प्रतिफलित हुआ।

(२) वादी कहता है—'नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः' (यजुः १६।१७) यहां तो तरखान, राजमिस्त्री, रथकार, कुम्हार, चाण्डाल, तथा कुत्तोंके शिक्षक आदि सबके लिए 'नमस्ते'का प्रयोग है अर्थात्—इनके लिए अन्नादि भोग्य-सामग्रीका विधान है' (पृ० १४-१५)।

पर इस मन्त्रमें जब 'नमस्ते' शब्द ही नहीं हैं; तब वादी का पक्ष ही असिद्ध हो गया। यहां पर 'नमो वः' है; क्या वादी लोग उसका प्रयोग करते हैं? यदि नहीं; तो वे वेदसे विरुद्ध भी सिद्ध हो गये। यदि 'नमो वः' का प्रयोग करते हैं; तो "नमस्ते' शब्दका ही प्रयोग सदा करना चाहिए" यह वादी का पक्ष ही खण्डित होगया। यदि उक्त मन्त्रमें बढ़ई आदिको नमस्कार अप्रासङ्गिक होनेसे यहां' नमस्कार अर्थ न होकर वादीके तथा उसके स्वामीके अनुसार भी उन्हें भोग्य-सामग्री देनेका विधान वैदिक है; तो इन्हें नमस्कार करना तो वादी के मतमें भी निषिद्ध सिद्ध हो गया। हम उन्हें अन्नदानका निषेध नहीं करते, किन्तु नमस्कारका ही निषेध करते हैं।

(३) वादी आगे कहता है—'नमो वञ्चते, परिवञ्चते, स्तायूनां पतये नमो नमः' (यजुः १६।२१) इस मन्त्रमें छली, कपटी, चोरोंके सरदार, हिंसक, लुटेरे तथा गठकतरे आदि सभी के

लिए 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग है अर्थात् उन्हें नमः-वज्रसे मारनेका विधान है' (पृ० १५) यहां भी जब 'नमस्ते' शब्द सुनाई नहीं पड़ता, तो दर्शनाध्यापक-महाशयने वेदमें प्रक्षेप कर दिया—यह स्पष्ट हो रहा है, जब वे यहां चोरोंको वज्रसे मारनेका विधान बताते हैं; तो वहां शिष्टाचार-वाचक 'नमस्ते' शब्द कहाँ सिद्ध हुआ? क्या वादी लोग घरमें आये चोरको 'नमस्ते' करके उसका स्वागत किया करते हैं? यदि नहीं; तब उन्हींका पक्ष उन्हींसे कट गया।

जोकि वादीका कहना है कि—'यजुर्वेदके १६ वें अध्यायके हमने तीन ही मन्त्र केवल दिखावेमात्रके लिये लिखे हैं; यह तो सारा अध्याय नमस्ते शब्दसे भरा पड़ा है' (पृ० १५) पर इन तीन मन्त्रोंमें भी 'नमस्ते' शब्द नहीं दीखता, 'नमः'को 'नमस्ते' पढ़ते हुए वादीकी आंखें कलुषित मालूम पड़ती हैं। तब वादीका पक्ष भी कट गया; यहां तो 'नमः' शब्द ही सिद्ध होता है, उसीका वे प्रचार करें। अभिवादनार्थक भी 'नमः' ही शब्द है, 'ते' शब्द अभिवादनार्थक नहीं। अवशिष्ट है सर्व-नाम; उसमें स्वतन्त्रता है जो रखा जावे 'तत्रभवत्' आदि अथवा 'श्रीमत्'का प्रयोग। यह भी वादीका कथन गलत है कि—यह सारा अध्याय ही 'नमस्ते' शब्दसे भरा हुआ है। इस सम्पूर्ण ही अध्यायमें 'नमः' शब्द है 'नमस्ते' शब्द नहीं। केवल 'नमस्ते रुद्र! मन्यवे' (१६।१) 'नमस्ते आयुधाय' (१६।१४) इन दो ही मन्त्रोंमें 'नमस्ते' देखा जाता है, इसमें भी 'ते' शब्द 'नमः'से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता; किन्तु वहां 'ते—तव

मन्यवे, ते-तव आयुधाय'से सम्बन्ध है; यहां भी 'नमः' शब्द ही सिद्ध हुआ, 'नमस्ते' नहीं; तब यह वादीका कथन जहां असत्य है, वहां उसके पक्षका खण्डक भी है।

आगे वादी इस रुद्राध्यायमें 'रुद्रको नमस्कार' सिद्ध करने वाले सनातनधर्मियों पर आक्षेप करता है-'हमारे पौराणिक भाई कहते हैं कि—'यह तो रुद्राध्याय है, इसमें परमात्माके प्रति नमस्ते है यथा-'नमस्ते रुद्र ! मन्यवे' (यजुः १६।१); मैं अपने उन पौराणिक भाइयोंसे पूछता हूँ कि-यदि वस्तुतः इस अध्यायमें सर्वत्र रुद्र (परमात्मा)को ही नमस्ते है, तब तो इस अध्यायमें चोर, लुटेरे, डाकू, कुत्ते, शूद्र तथा चाण्डालादि सभी प्राणी परमात्माके ही रूप हो गए, जिनको भिन्न-भिन्न अभिप्रायसे 'नमस्ते' किया गया है, तब तो भाई ! जब तुम्हारे घरमें चोर, लुटेरे, कसाई या चाण्डाल घुस आवें; तब तुम उनकी अर्घ आदि देकर पूजा किया करो' (पृ० १६)

यह वादीका कथन व्यर्थ है। किरातरूपधारी भगवान् रुद्रने तत्कालानुरूप गणोंके साथ वैसा घोर रूप धारण किया-कराया था। इससे उन रूपोंके धारण करने वाले रुद्रको नमस्कार है, उसके उन घोर रूपोंको नमस्कार है, जैसेकि-'रुद्राष्टाध्यायीमें कहा है-'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेस्तु रुद्ररूपेभ्यः' (१०।८) (तैत्तिरीयाण्यकके दशमप्रपाठकके ४५ वें अनुवाकमें) यहां उसके अघोररूप सात्त्विक होनेसे शान्त हैं, और घोर राजस होनेसे

उग्र हैं, और घोर-घोरतररूप तामस होनेसे भयङ्कर संकेतित किये गये हैं। सो वहां किरातरूपधारी उस रुद्रके उन घोर-घोरतर रूपोंको नमस्कार है, आधुनिक चोर-डाकुओंको नमस्कार नहीं। मत्स्य-कूर्म और वाराहादिरूपधारी परमात्माको नमस्कार करना हो तो आजकलके वाराह कच्छप आदिको नमस्कार कोई भी नहीं करता। तब वादीका यह तथा अन्तिम आक्षेप निरस्त होगया।

आगे (४) 'नमस्ते हरसे, (४) नमस्ते यातुधानेभ्यः, (६) नमस्ते राजन् ! वरुण ! (७) नमस्ते अग्न ! ओजसे, इन वादिप्रदत्त मन्त्रोंमें परमात्माके रूपोंको नमस्कार है, क्योंकि-वहां अग्निके तेज, मृत्यु, वरुण और अग्निको नमस्कार किया गया है। यह परमात्माकी अग्नि आदि मूर्तियोंकी पूजा है। इनके लिए ते (तुभ्यम्)का प्रयोग होता ही है। तब यह उद्धरण व्यर्थ हैं। (९) 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' इस मन्त्रके विषयमें हम गत-निबन्धमें पर्याप्त स्पष्टता कर ही चुके हैं।

(८)पूर्वपक्ष—'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः। (ऋ० १।२७।१३) यहांपर क्रमशः बड़े-छोटे, जवान तथा बूढ़े सबके लिए नमस्ते किया गया है'।

समीक्षा-यहां दिन-दहाड़े आंखोंमें धूल झोंकी जाती है, इस मन्त्रमें 'नमस्ते' है कहां ? यहांपर इसप्रकारके परिमाण वाले देवताओंको नमस्कार किया गया है, सर्वसाधारणको नहीं। यहां वादीने इस मन्त्रके उत्तरार्धको छिपा दिया है।

यह प्रमाण श्रीसन्तरामके 'नमस्ते-प्रचार' से लिया गया है। इस मन्त्रका सम्यक् विवेचन हमने 'नमस्ते और हठवाद'में किया है।

(९) पूर्वपक्ष—शतपथब्राह्मणमें आता है—'गार्गी अपने पति याज्ञवल्क्यको नमस्ते करती है—'सा हो वाच—नमस्ते याज्ञवल्क्य' (१४।६।८।५)

समीक्षा—यह है वादियोंका अनुसन्धान—श्री शेरसिंहकी 'नमस्तेकी प्राचीनता'से यह प्रमाण बिना विचारे दर्शनाध्यापकजीने उद्धृत कर लिया है; और 'नमस्तेकी व्याख्या'से भारतीय संस्कृति' निबन्धमें उसके लेखक श्रीराजेन्द्रजीने उद्धृत कर दिया है। इन लोगोंको 'नमस्ते'के कहीं दीख जाने से इतनी मस्ती हो जाती है कि फिर आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचते। याज्ञवल्क्यकी तो दो स्त्रियां थीं एक कात्यायनी दूसरी मैत्रेयी। देखिये इसपर शतपथ—ब्राह्मण (१४।७।३।१) क्या अब वादी गार्गीको उसकी तीसरी पत्नी बनाना चाहता है? तब क्या वे एक पुरुषकी बहुत स्त्रियां मानते हैं?' जब गार्गी ब्रह्मवादिनी कुमारी थी; और उसका विवाह ही नहीं माना जाता; तब याज्ञवल्क्य गार्गीके पति कैसे हुए?।

स्त्रीका पतिको नमस्कार हो—इसमें किसीका वैमत्य नहीं'; 'ते'में वैमत्य अवश्य है, पर उसने तो याज्ञवल्क्यको—'सा होवाच—अहं वै त्वा याज्ञवल्क्य!......अहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोपस्थाम्, तौ मे [त्वं] ब्रूहीति' (१४।६।८।२) यहां त्वं, त्वाम् आदि भी कहा है; तब क्या वादी मान्यको 'त्वं-त्वां' आदि कहते हैं? यदि नहीं; तब यह उद्धरण व्यर्थ है। 'सा होवाच—'ब्राह्मणा भगवन्तः! तदेव बहुमन्यध्वं यद्-अस्माद (याज्ञवल्क्यात्) नमस्कारेण मुच्याध्वै, न वै युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेता' (१४।६।८।१२) यहां 'नमस्कार' शब्द आया है; वही गार्गीको अभिमत है; तब वादी भी 'नमस्कार' शब्दका प्रयोग करें। जब नमस्कार-वाचक पद 'नमः' ही है, 'ते' नहीं; तब उसमें वादियोंका आग्रह क्यों? 'नमः श्रीमते! क्यों नहीं कहते?। अथवा मान्यको युष्मद्की सभी विभक्तियोंके एक वचनका प्रयोग क्यों नहीं देते?। और फिर उक्त प्रमाणमें दोनों ओरसे भी 'नमस्ते' नहीं। कहां कही है नमस्ते याज्ञवल्क्यने गार्गीको; यह वादी बतावें; पर वे कभी बता नहीं सकते; तब वादीका पक्ष खण्डित हो गया।

(१०) पूर्व पक्ष—याज्ञवल्क्य यद्यपि ऋषि थे; वे पदवीमें अपनेसे छोटे राजा जनकको नमस्ते करते हैं—'स होवाच जनको वैदेहो—नमस्ते' (शत०)

समीक्षा—यह महा असत्य है। यहां तो वैदेह जनकने ही याज्ञवल्क्यको नमस्कार किया है—'प्रत्यक्षे कि प्रमाणान्तरेण'। यहांपर 'जनको वैदेहः' कर्ता है, कर्म नहीं। तब यहां वादी कर्ताका अर्थ कर्मका कैसे करता है?। उसने यह प्रमाण श्री शेरसिहकी पुस्तकसे ही बिना विचारके उद्धृत कर लिया है? 'नमस्ते करते हैं' यह वाक्य वादी कैसे प्रयुक्त करता है, क्या 'नमस्ते' यह वादीके मतमें एकपद है? यहां "नमः' करते हैं' यह कहना चाहिए वा 'नमस्ते कहते हैं' यह

लिखना चाहिए—अन्यथा एक पद माननेमें निर्मूलता है।

वादीने यहां भी शतपथके पाठको छिपा लिया है। देखिए वहांका पाठ—'अभयं वै जनक! प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः। स होवाच जनको वैदेहः—'नमस्ते याज्ञवल्क्य! अभयं त्वा' (शत० १४।६।११।६)। यहां वादीने 'नमस्ते'के आगे 'याज्ञवल्क्य' पदको छिपा दिया। तब यहां याज्ञवल्क्य ब्राह्मण है, उसे क्षत्रिय जनकके द्वारा किया हुआ नमस्कार हमारे पक्षमें विरुद्ध नहीं; शेष है 'ते'; वहां तो याज्ञवल्क्यको जनकने 'अभयं, त्वा' भी कहा है, किमर्थमचारीः [त्वम्] (१४।६।१०।१)में 'त्वं' भी कहा है, तो वादी मान्यको 'त्वं' त्वाम्' इत्यादि कहते हैं? यदि नहीं, तब 'नमः'के साथ 'ते' की अनिवार्यता सिद्ध न हुई; 'नमः श्रीमते' भी प्रयुक्त किया जा सकता है। यहां भी दोनों पक्षोंमें 'नमस्ते' नहीं है। इससे भी वादीके पक्षका खण्डन है।

(११) पूर्वपक्ष—महर्षि यम जोकि—नचिकेताके आचार्य होनेके कारण अपने शिष्यसे बड़े थे, अपने शिष्य नचिकेताको 'नमस्ते' करते हैं—'नमस्तेस्तु ब्रह्मन्! स्वस्ति मेऽस्तु' (कठोप० १।९)।

समीक्षा—यहां शिष्य-आचार्यभाव नहीं कहा, उसे तो अतिथि एवं ब्राह्मण होनेके कारण नमस्कार किया गया। तभी तो उसे 'ब्रह्मन्! अतिथिर्नमस्यः' कहा गया है। यम क्षत्रिय, नचिकेता ब्राह्मण थे। जैसेकि—शङ्करदिग्विजय (१४।२८) के १८३ टीका पद्यमें लिखा है—'पुरा पितुः शापवशाद्धि कश्चिद् द्विजः पुरं प्राप्य यमस्य गेहम्' (१८२) 'युक्तं यमः प्रेक्ष्य सुवेपमानः प्रोवाच भूदेवमतीव नम्रः' (१८३) यहां नचिकेताको द्विज एवं 'भूदेव' कहा गया है। 'इत्येवं तु यमेनाऽसौ नमः पूर्वमुदीरितः। नचिकेता उवाचैनम्' (१८५)। तभी तो उन्होंने अपने लिए 'स्वस्ति मेस्तु' यहां 'स्वस्ति' (कल्याण) मांगी, 'नमस्ते' नहीं। इसी प्रमाणको 'भारतीय-संस्कृति'के लेखकने भी दिया है। उसका उत्तर भी यही है कि—यहां गुरु-शिष्य-भाव कुछ भी नहीं। यहां वर्णका छोटा-बड़ापन है। यद्यपि नचिकेता, क्षत्रिय—यमसे आयु तथा ज्ञानमें छोटा था, तथापि ब्राह्मण होनेके नाते 'ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्। पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता' (२।१३५) इस मनुके वचनसे नमस्करणीय था; अतः ब्राह्मणत्व एवं अतिथित्वके कारण श्रीयमने उसे नमस्कार किया। जैसेकि-स्वामी श्रीवेदानन्दजीने स० प्र० (पृ०३६) की टिप्पणीमें माना है—'ब्राह्मण बड़ा माना जाता है, वह अपनेसे छोटे क्षत्रियको''। अनुभवमें छोटा तथा अभी लड़का होनेसे उसे 'ते' (तुभ्यं) कहा; ब्राह्मण नचिकेताने यमको क्षत्रिय होनेके कारण उसे नमस्कार नहीं की। तब आर्य-समाजके ग्रन्थ साहित्य-संस्करण स० प्र०की टिप्पणीमें—'यह बड़ेका छोटेको नमस्ते है' यह लिखते हुए स्वा० वेदानन्दजीका भी खण्डन हो गया। यद्यपि इसपर गत एक निबन्धमें प्रकाश डाला जा चुका है, तथापि वादियोंका इस प्रमाणपर बहुत बल होनेसे हमने भी इसपर फिर लिख दिया है। तब उभयपक्षसे

'नमस्ते'की असिद्धि होनेसे वादीका पक्ष खण्डित होगया। वादीके अनुसार जब तक दोनों ओरसे 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग न मिले, तब तक वादीका पक्ष असिद्ध ही रहेगा। वादीने जितने भी प्रमाण दिये हैं; उनमें दोनों ओरसे 'नमस्ते' नहीं कहा गया। तब उसकी 'भारतीय-संस्कृति'का यह स्तम्भ भी टूटा-फूटा है। क्षत्रिय-आचार्य भी ब्राह्मण-शिष्यको नमस्कार करे—इससे वर्णकी ज्येष्ठता होनेके कारण ऐसा होनेसे वादीका आक्षेप असिद्ध हो गया। इसके विषयमें हमने गत-निबन्धमें स्पष्टता की है, पाठक वहीं देखें।

(१२) आगे अर्जुन द्वारा श्रीकृष्णको किये हुए नमस्कार में हमारे पक्षकी कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि श्रीकृष्ण बड़े थे। शेष है 'ते' वहां अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णको 'त्वत्तः' (११।२) 'त्वत्प्रसादात्' (१८।७३) 'त्वया' (६।३३) 'तव' (१८।७३) यह युष्मद्के अन्य-विभक्तियोंके एकवचनके प्रयोग भी प्रयुक्त किए गए हैं; पर वादी लोग क्या मान्यको त्वं, त्वया, तव आदिका प्रयोग करते हैं? यदि नहीं; तो 'नमस्ते'में 'ते' की अप्रयोज्यता भी सिद्ध हो गई।

(१३) पूर्वपक्ष—भवभूति-महाकविलिखित ग्रन्थ 'उत्तर-रामचरित' में रामने सीताको नमस्ते किया है 'भगवति! नमस्ते।

समीक्षा—यह महा-असत्य है। यह बात श्रीशेरसिंह आर्यसमाजीकी पुस्तक से वादीने बिना विचारे उद्धृत की है। वादी लोग अपनेसे पहलेकी पुस्तकमें लिखे हुए प्रमाणोंको देख

कर अपने पक्षको सिद्धि होगई हुई समझ लेते हैं; पर मूल-पुस्तकमें देखते नहीं कि-वहां यह है भी सही, वा नहीं। शेरसिंहने अपने 'नमस्तेकी प्राचीनता' ट्रैक्टमें इस प्रकारके बहुतसे असत्य उद्धरण दे डाले हैं—यह लोग परमात्मासे भी नहीं डरते। वहां तो भागीरथी-गङ्गाको श्रीरामका नमस्कार है, सीताको नहीं है। और जहां सीताको 'देवि सीते! नमस्ते स्तु' (७।१०) कहा भी है; वहां श्रीरामने ऐसा नहीं कहा; किन्तु पृथिवीने देवी होने के नाते सीताकी पूज्यताके कारण कहा है और 'ते' उसे छोटे होनेके कारण कहा है।

(ख) 'भारतीय-संस्कृति' के प्रणेताने 'नलका दासीको 'नमो-स्तु ते' कहना बताया है, पर यहां तो 'नमोस्तु ते' है 'नमस्ते' नहीं; तब क्या वादी 'नमोस्तु ते'का प्रयोग करते हैं? आप लोग 'नमः—ते'में कोई व्यवधान सहन नहीं करते, बल्कि 'नमस्तुभ्यम्' भी नहीं कहते। तब वादीका इससे अपना पक्ष सिद्ध न हुआ। वस्तुतः वादीके दिये हुए प्रमाणमें यह पाठ ही नहीं। वहां तो 'गच्छ भद्रे'! यथासुखम्' यह पाठ है। देखिये महाभारत (३।७५।२९) तब वादीका पक्ष सिद्ध न हुआ।

(१४) पूर्वपक्ष-'देवदेव! जगन्नाथ! नमस्ते भुवनेश्वर!' (लिङ्ग पुराण ३।२७।७) 'महादेव तुझे नमस्ते हो'।

समीक्षा—जबकि वादी अपने इस ट्रैक्टके १४ पृष्ठमें 'नमस्ते' में दो पद मानकर उसमें के 'ते' का 'तुझे' अर्थ मानता है, तब यहां 'तुझे नमस्ते' कहकर उसे एकपदकी भान्ति कैसे लिखता है? उसे 'तुझे नमः हो' यह लिखना चाहिये था। पर

वैसा लिखनेसे फिर 'नमस्ते' टूटता है—इसलिए वह पुनरुक्ति-दोषसे भी नहीं डरता। भगवान्‌को 'नमस्ते' कहनेमें हमारे पक्षमें कोई क्षति नहीं पड़ती। उसे 'नमः' तो कहा ही जाता है और 'ते' भी। सभी भाषाएं भगवान्‌को 'युष्मद्' का एक वचन देती हैं। जैसे अङ्ग्रेज़ीमें उसे Thou और हिन्दी-उर्दू में—'जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है' इत्यादिमें 'तू' कहा जाता है।

(१५) पूर्वपक्ष—पृथ्वी वराह भगवान्‌को बोली-'नमस्ते सर्वदेवेश, नमस्ते मोक्षकारिणे (वाराह पु०) भगवान्‌को और मोक्षदाताको नमस्ते हो।

समीक्षा—जब वादीने 'नमस्ते' को दो पद माना है; तब उसको एक पदकी तरह व्यवहृत क्यों किया? भगवान्‌को नमस्कार करने और 'तें' के कहनेमें हमारे पक्षमें कोई क्षति नहीं पड़ती। भगवान्‌को सभी भाषायें युष्मद्‌का एकवचन कहती हैं।

(१६) पूर्वपक्ष—'वाराहकी पृथिवीको 'नमस्ते'—'नमोस्तु विष्णवे नित्यं नमस्ते जलशायिने' पीतवस्त्रधारीको नित्य नमस्ते हो'।

समीक्षा—यहां भी पूर्ववत् उत्तर है। वाराहने यह पृथिवी को नहीं कहा। वादीने यह प्रकरण अशुद्ध दिया है—'प्रत्यक्षे किं प्रमाणान्तरेण'। यहां नमस्कार विष्णुको है, पृथिवी को नहीं।

(१७-१८) पूर्व—'केतकीका फूल जड़ होता हुआ भी महादेवको नमस्ते करता है—'नमस्ते नाथ! मैं आपको नमस्ते करता हूँ'।

स०—यहां भी हमारे पक्षकी क्षति नहीं। उत्तर पूर्ववत् है। 'मैं आपको नमस्ते करता हूँ' यह वादीका अर्थ अशुद्ध है-और 'नमस्ते'को दो पद माननेके अपने पक्षके विरुद्ध है-'आपको' यह—किस शब्दका अर्थ है? यदि 'ते'का; तो शेष 'नमः' बचा; तब 'आपको नमस्ते' अर्थ कैसे?। इस प्रकार (१८) संख्यामें भी जान लेना चाहिये। 'शिवके लिए नमस्ते हो' यह अशुद्ध अर्थ है; 'तुझ शिवके लिये नमः हो' यह अर्थ करना चाहिये था।

(१९) पूर्व—पुराणोंमें नीच, स्त्री और शूद्रोंके लिए भी 'नमस्ते'का प्रयोग है—'द्विजानां च नमःपूर्वमन्येषां च नमोन्तकम्। स्त्रीणां च केचिदिच्छन्ति नमोन्तं च यथाविधि' (शिव-पु० विद्येश्वरसं० १।४२)। परिणामतः पौराणिकोंका यह कहना कि—नीचोंके लिए नमस्ते नहीं होता—ठीक नहीं।

उत्तरपक्ष—यह दर्शनाचार्यजीका असत्य है। यहां 'नमस्ते' है कहां? यहां तो 'नमः' है; तब वादी यह जबर्दस्ती कैसे करता है? यहां तो यह अर्थ भी नहीं। यहां तो यह आशय है कि—'भवत्पूर्वं चरेद् भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः। भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्' (मनु० २।४९) जैसे यहां 'भवती भिक्षां ददातु' में ब्राह्मण 'भवती' पहले कहता है, और क्षत्रिय 'भिक्षां भवती ददातु' मध्यमें कहता है। 'भिक्षां ददातु

भवती' वैश्य अन्तमें कहता है; वैसे शिव-नमस्कारके विषयमें भी जान लेना चाहिये कि–द्विज 'नमः' पहले कहे–'नमः शिवाय'। दूसरे लोग 'नमः' अन्तमें कहे–'शिवाय नमः'। तब वादीने यहां 'नमस्ते' का अर्थ कैसे निकाल लिया ? तब वादीका यह अर्थ कि–'द्विजोंके लिए पूर्व 'नमः' शब्दका प्रयोग करना चाहिए, तथा अन्योंके लिए अन्तमें 'नमः' शब्द प्रयुक्त होना चाहिये—यह वादीका अर्थ असङ्गत है। 'पूर्व तथा अन्तमें' इसका क्या अर्थ है ? क्या यह कि–'द्विज नमस्ते' कहें और शूद्र 'ते नमः' कहें, और स्त्रियां भी 'ते नमः' कहें। क्या आप इस अर्थको कभी उक्त पद्य से निकाल सकते हैं ? तब क्या अद्विज लोग 'ते नमः' यह अशुद्ध बोलें ? 'नमस्ते' न कहें ? 'तस्माद् ह नायज्ञियं ब्रूयाद् नमस्ते इति' इस ६ पृष्ठमें आपसे उद्धृत वचनसे अयज्ञिय (यज्ञाधिकार-विरहित) कोई भी 'नमस्ते' न कहे। तब वादीके पक्षमें भी स्त्री-शूद्रादि नीच सिद्ध हुए। तब उनका वेदानध्ययन भी शास्त्रीय सिद्ध हुआ, इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मलोक'का तृतीय पुष्प देखना चाहिये। शास्त्रोंमें स्त्री-शूद्रोंके साहचर्यसे दोनोंका द्विज-पुरुषकी अपेक्षा निम्नत्व न्याय्य ही है। स्त्री पुरुषके समान नहीं होती, शूद्र द्विज के समान नहीं होता; तब उनकी अवरता स्वतः सिद्ध हो गई।

(२०) पूर्व–दक्ष अपनी पुत्री सतीको नमस्ते करता है—'दक्षस्तां जगदम्बिकाम्। नमस्कृत्य करौ बद्ध्वा बहु तुष्टाव भक्तितः' (शिवपुराण) दक्षने जगत्की माता उस सतीको दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते करके'......।

उत्तर–जब यहां 'नमस्कृत्य' है; 'नमस्ते इति कृत्वा' नहीं, तब 'नमस्ते करके' यह वादीसे किया हुआ अर्थ अशुद्ध ही सिद्ध हुआ।

(ख) पूर्वपक्ष–'पौराणिक भाई इसका उत्तर दें कि–यदि पिता अपनी पुत्रीको नमस्कार या नमस्ते करके सत्कार करे; क्या यह अपनेसे छोटेको 'नमस्ते' कहनेका प्रमाण नहीं है ?' (पृ० २२)

उत्तर पक्ष–यहां नमस्कार साधारण पुत्री होनेके नाते नहीं किया गया; यद्यपि देवीका अंश मानकर आजकल कोई लड़कीका नमस्कार नहीं लेता; बल्कि उसे नमस्कार ही किया जाता है; अतः यह 'छोटेको नमस्ते' कहनेका सबूत नहीं। यहां तो सतीके जगदम्बिका होने से–जिसका अर्थ वादीने भी जगत्की माता किया है–उसे नमस्कार किया गया है; अतएव यह प्रश्न व्यर्थ है। तभी यहां 'भक्तितस्तुष्टाव' कहा गया है कि–भक्तिसे उस सतीकी स्तुति की। कोई अपनी सन्तानकी भक्ति नहीं करता; जगदम्बा–देवीकी तो सब भक्ति करते हैं। तभी कहा है–'गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः। वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः' वसुदेवको कोई नमस्कार नहीं करता; वासुदेवको सब नमस्कार करते हैं; पूजा गुणोंकी होती है। तब सतीके नमस्कारसे किसी छोटेको नमस्कार करना सिद्ध-प्रमाण नहीं।

(२१) पूर्व–एक ब्राह्मणकी लड़कीमें क्षत्रियके द्वारा पैदा सन्तानको 'सूत' कहते हैं (मनु० १०।११)। पौराणिकोंके

सिद्धान्तमें सूत एक वर्णसङ्कर शूद्र होता है; उसी सूत नामवाले वर्णसङ्कर शूद्रको भी ऋषियोंने नमस्ते किया—'सूत ! सूत ! महाभाग ! व्यासशिष्य ! नमोस्तु ते' (शिवपु० विद्येश्वरसं० १।२३) । क्या यहां बड़ेने छोटेको 'नमस्ते' नहीं किया ? ।

उत्तर—पौराणिक सूत तो उच्च-ब्राह्मण है, वह तो पुराणानुसार अग्निसे उत्पन्न है, वह सूत जातिवाला नहीं । इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' (तृतीय पुष्पमें) देखना चाहिए । तब हमारे पक्षमें उसे नमस्कार करनेसे कोई भी दोष नहीं आता । इसके अतिरिक्त यहां 'नमोस्तु ते' है, 'अस्तु' का मध्यमें व्यवधान है; क्या वादी 'नमोस्तु' का प्रयोग करते हैं ? यदि नहीं; तब इससे 'नमस्ते'की सिद्धि न हुई । वादिगण तो 'नमस्ते'से भिन्न कथनको अनेकता करनेवाला तथा विद्वेष का प्रसारक मानते हैं; तब उससे भिन्न शब्दोंको कैसे प्रमाणित करते हैं ?

जोकि कहा जाता है कि—'पुराणोंके अनुसार इन सूतजीं ने जोकि—शूद्रसे भी पतित हैं [यह बात गलत है—इसपर उक्त तृतीय-पुष्प देखिए) पुराणोंको गा-गाकर सुनाया है; तो पुराण अवश्यमेव शूद्रोंके लिए हैं; इसीलिए भागवतमें आया है—'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा । इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्' (पृ० २४)

समीक्षा—यह भी कथन ठीक नहीं । यदि एकमात्र शूद्रों के लिए ही पुराण होते; तो सूतजीके श्रोता भी शूद्र-अन्त्यज आदि होते; पर वहां तो 'ऋषयः शौनकादयः' शौनकादि ऋषि

मुनि श्रोता थे । हां, वेदकी भांति पुराणोंमें शूद्रोंका अनधिकार नहीं; अतः वे भी पुराणोंको 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' ब्राह्मणसे सुन सकते हैं । पर यह नहीं कि पुराण हैं भी शूद्रोंके लिए ही । स्वा० दयानन्दने संस्कृतभाषानभिज्ञ तथा वेदानभिज्ञ-शूद्रोंके लिए 'सत्यार्थप्रकाश' आप लोगोंके अनुसार वैदिक सिद्धान्तों के प्रदर्शनार्थ बनाया था; तब क्या 'सत्यार्थप्रकाश'के द्रष्टा तथा उसे गा-गाकर सुनाने तथा प्रचार करने वाले—आप लोग शूद्र हैं, जो वेद छोड़कर 'सत्यार्थ-प्रकाश'में लगे हुए हैं ? यदि स०प्र०को द्विज भी पढ़ते हैं, और शूद्र भी; इस प्रकार पुराणोंके लिए भी समझ लेना चाहिए ।

(२२) पूर्वपक्ष—'विष्णुका दधीचको नमस्ते—'नमस्तव... प्रणनाम मुनिं हरिः' (शिव पु०) मैं तुझे नमस्ते करता हूँ' ।

समीक्षा—यहां 'नमस्ते' शब्द कहां है ? । यहां 'मैं तुझे' यह किसका अर्थ है ? यहां तो 'प्रणनाम' प्रणाम करना आया है । आप लोग संस्कृतानभिज्ञ जनताको इस प्रकार प्रतारित कर रहे हैं ।

(२३) पूर्वपक्ष—ब्रह्माने अपने पुत्रको नमस्ते किया-'नमस्ते भगवन् ! रुद्र ! भास्करामिततेजसे । भगवन् ! भूतभव्येश ! मम पुत्र महेश्वर !' (शिवपुराण)

समीक्षा—यहां पुत्र होनेसे नहीं, किन्तु भूतभव्येश भगवान् होनेसे ही नमस्कार है; तभी वादी स्वयं भी कहता है-'यहां वस्तुतः पिता अपने पुत्रको नमस्ते नहीं करता; यहां पर परमेश्वर स्वयं ही पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं, अतः 'नमस्ते, यहां परमेश्वरको ही है, (पृ.२५) इस वास्तविक बातका वादीको

प्रत्युत्तर तो स्फुरित नहीं हुआ; पर वह इसपर कहता है–'पौराणिक-सम्मत वेदान्तके अनुसार तो सारा संसार ही ब्रह्मरूप है; लौकिक माता, पिता, पुत्रादि भी ब्रह्मरूप ही हैं; अतः यदि वे परस्पर नमस्ते करें; तो क्या दोष; ब्रह्म ही ब्रह्मको नमस्ते करेगा'।

पाठकोंने देख लिया कि–यह क्या पूर्वोक्त 'वास्तविक बात' का प्रत्युत्तर है कि–यह अद्वैतवाद है ? अद्वैतवादमें अभेदबुद्धि होती है; अभेद होनेपर तो नमस्कार वा उपासना भी नहीं हो सकती। इसलिए अद्वैतवादके पूर्ण-ज्ञाता एवं प्रचारक स्वामी शङ्कराचार्यने 'परा पूजा' में कहा है–'प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य अद्वयस्य कुतो नतिः। वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते'। अर्थात्-अद्वैततामें नमस्कार नहीं हो सकती। इसका वादी यह प्रमाण देखे कि–क्या वह अपने आपको कभी 'नमस्ते' कहता है ? यदि नहीं; तब स्पष्ट है कि–अद्वैतवादमें अपनेसे किसीका भी भेद न होनेसे कौन किसको नमस्कार करे; फिर तो उपास्य-उपासकके भी अभेद हो जानेसे उपासनाभी नहीं हो सकती। तब यह वादीका प्रयास अज्ञानमूलक है। स्वामी दयानन्दजीने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा अपने वेदभाष्यमें बहुत वार लिखा है–'परमात्मा जनेभ्य आशीर् (?) ददाति' (परमात्मा मनुष्योंको आशीर्वाद देता है)। पर यह कहीं नहीं लिखा कि–'परमात्मा जनेभ्यो नमस्ते करोति' (कि–परमात्मा मनुष्योंको नमस्ते करता है)। जब ऐसा है; तो 'ब्रह्मकी ब्रह्मको नमस्ते' कैसी ? अतः यह प्रत्युत्तर वादीका

प्रयासमात्र है; उसके पक्षकी दुर्बलता बताता है।

(२४) पूर्व–शिवने अपनी स्त्री पार्वतीको नमस्ते किया–'तथा प्रणयभङ्गेन भीतो भूतपतिः स्वयम्। पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत' (शिव. वायु. सं.)।

समीक्षा—यहां तो 'नमस्ते' शब्द ही नहीं; तब यह वादीने झूठा उद्धरण कैसे दिया ? यहां जो 'प्रणाम' शब्द है; वादी इस 'प्रणाम' शब्दका प्रचार क्यों नहीं करते ? यह प्रणाम भी यहां शिष्टाचार-वाचक नहीं, किन्तु मानिनीके मानको दूर करने के लिए कवि-कल्पित काम-व्यवहार है। उसे इस नमस्तेमें कैसे उद्धृत किया जा सकता है ? क्या वादीलोग 'नमस्ते'का प्रयोग मानिनी (रुठी हुई) स्त्री के मानको दूर करने के लिए उसके चरणोंमें करते हैं ?

(२५) पूर्वपक्ष-'ब्रह्माने अपनी धर्मपत्नी सावित्रीके चरणों में गिरकर नमस्ते किया—'पादयोः पतितस्तेऽहं क्षम देवि ! नमोऽस्तु ते' (पद्मपु०) तुम्हें नमस्ते हो।

उत्तर–यहां 'नमोऽस्तु ते' है, 'नमस्ते' नहीं; वादियोंका 'नमस्ते'में ही आग्रह है। तब यह उद्धरण व्यर्थ है ! क्या वादी भी यह मानकर स्त्री के पांव पड़कर उसे 'नमस्ते' कहते हैं ? रुठी हुई स्त्रीको मनानेके लिए उसके पैरोंपर गिरना कामशास्त्रका व्यवहार है, शिष्टाचार नहीं। तब शिष्टाचारमें वादी इसका उद्धरण कैसे दे सकता है ?

पूर्व—'ऊपरके दो श्लोकोंमें तो पति अपनी स्त्रियोंके पैरोंपर गिर कर नमस्ते कर रहे हैं; यह अपनी स्त्रीके चरणों-

में गिरकर 'नमस्ते' करना तो वेद-विरुद्ध पौराणिक लीला है। (पृ० २७)

उत्तर—वास्तवमें यह शिष्टाचार नहीं है; किन्तु कामाचार है। तब कामाचार शिष्टाचारमें कैसे प्रवृत्त हो सकता है? यहां 'नमस्ते' शब्द भी नहीं है। पुराण-इतिहासमें भी कभी साहित्य की तरह दम्पतियोंका व्यवहार दिखलाया जाता है। वहां पर रसभङ्गके भयसे नायक नायिका को यथा-कथञ्चित् प्रसन्न ही करता है, डाँटता नहीं। इस विषयमें स्पष्टता गत निबन्धमें देखनी चाहिए।

पूर्व-परन्तु पति-पत्नीका परस्पर प्रेमसे सत्कारार्थ नमस्ते करना आर्यसमाजका वैदिक सिद्धान्त है।

उत्तर-तब क्या पैरोंमें गिरना दूसरेका सत्कार नहीं होता? तिरस्कार होता है? वादीके स्वामीजी कहते हैं—'वधूवर 'नमस्ते' इस वाक्यसे परस्पर नमस्कार कर, स्त्री पतिके चरण-स्पर्श, पाद-प्रक्षालन करे' (संस्कार-विधि विवाह० पृ० १३३)। यहां स्त्रीके द्वारा पतिका चरण-स्पर्श सत्कारके लिए ही तो है—यह स्पष्ट है। तब यदि परस्पर सत्कार करना दोनोंका ही आप लोगोंके अनुसार कर्तव्य है, तब वादी लोग पतिरूपमें अपनी स्त्री के चरणों पर भी गिरें, जैसाकि वादीने स्वयं कहा भी है—"यदि तुम स्वयं सत्कार चाहते हो तो औरोंका भी सत्कार करो। जितना तुम छोटे का सत्कार करोगे' उतनाही वह तुम्हारा भी सत्कार करेगा' (पृ० १३) यदि यह वेद-विरुद्ध है, तो स्त्रीको नमस्कार करना भी वेद-विरुद्ध है, क्योंकि अवर होनेसे जैसे उसके पांवपर गिरना अयोग्य है, वैसे नमस्कार भी अयोग्य ही है। तब अपने कथनानुसार वेद-विरुद्ध इस प्रमाणसे वादी अपने पक्षको किस प्रकार सिद्ध कर सकता है?

(२६) पूर्व—'वासुदेव ! नमोस्तु ते' (विष्णु-सहस्र०) वासुदेवको नमस्ते किया गया है।

उत्तर—यहां हमारे पक्षमें थोड़ी भी क्षति नहीं आती; परमात्माको 'ते (तुभ्यं)' भी कहा जाता है, 'नमः' भी। विष्णु-सहस्रनाम होनेसे यहां परमात्माके अवतार श्रीकृष्ण लिये जाते हैं। फिर भी यहां 'नमस्ते' शब्द नहीं; आप लोगोंका उसीमें आग्रह है; तब यह प्रमाण कैसे उद्धृत किया? इस प्रकार (२७) 'नमस्ते भगवान् रुद्र' यहां रुद्रको नमस्ते किया गया है। (२८) 'गोविन्द ! नमो नमस्ते' गोविन्द ! तुझे नमस्ते हो। (२९) 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै, जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे नमस्ते' यहां दुर्गाको नमस्ते किया गया है। (३०) 'नमस्ते भगवन् भूयो ! 'हे भगवन्, तुझे वार-वार नमस्ते हो।' इन प्रमाणोंका उत्तर भी जान लेना चाहिये। इनमें 'तुम्हें नमस्ते हो' यह लिखना अशुद्ध है, और 'नमस्ते यह दो पद हैं' इस वादीके पक्षको काटने वाला है। और उनमें 'नमस्ते' से भिन्न 'तुभ्यम्' पद भी पृथक् नहीं है—जोकि 'तुम्हें नमस्ते हो' यह अर्थ किसी प्रकार हो सके।

(३१) पूर्व—'नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपाय' (सत्यनारा०)

प्रभुको नमस्ते हो।

उत्तर—यहां तो सभी पुस्तकोंमें 'नमो वाङ्मनसातीतरूपायानन्तशक्तये' यह पाठ है; वह ठीक भी है, क्योंकि—'अचतुरविचतुर' (पा. ५।४।७७) इस सूत्र से 'वाङ्मनस' शब्द अकारान्त है, ऐसा होनेपर आठ अक्षर वाले पादमें 'ते' शब्द अधिक हो जाता है, उससे ९ अक्षर हो जाते हैं, छन्दोभङ्ग हो जाता है। इसलिए वहां पर 'नमो वाङ्' यही पाठ है। वादीके कहे पाठमें भी हमारे पक्षकी कोई क्षति नहीं; क्योंकि-परमात्माको नमस्कार तथा युष्मद् शब्दका एकवचन कहना सर्वसम्मत है। इस प्रकार (३२) दुर्गापाठके ५।१६-७९ श्लोकोंमें 'नमस्ते' शब्द आया है'—यह वादीकी बात बिल्कुल गलत है, इन सभी पदों में 'नमस्तस्यै' आया है 'नमस्ते' नहीं आया। इतना असत्य व्यवहार क्यों ? (३३) 'नमस्ते स्वात्मवादिने' हे प्रभो ! तुम्हें नमस्ते हो' यहां 'तुभ्यं नमस्ते' कहां है; जो कि-वादीने 'तुम्हें नमस्ते हो' यह अर्थ किया ? असत्य-व्यवहारकी सीमातीतता है। तुझ स्वात्मवेदीको नमस्कार है, यह अर्थ है; वादीका अर्थ निर्मूल है।

(३४) पूर्व—श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने उत्तम-ब्राह्मणोंको नमस्ते किया है—'विप्रान् स्वालाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान्। निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ते शिरसाऽसकृत्।' विप्रों को बार-बार नमस्ते हो।

उत्तर—अपने अशुद्ध पक्षको सिद्ध करनेके लिए वादी पुस्तकके पाठको बदलनेमें भी नहीं हिचकिचाते। अथवा वहां

प्रक्षेप कर दिया करते हैं—यह महान् खेद है। वस्तुतः यह छल है, छलियों के लिए वादीने कहा है-'छलीको वेदमें वज्रसे मारनेका विधान है' [पृ० १४]। यह छल वादीने [१] [२] [३] [८] [१०] [१३] [१९] [२०] [२१] [२४] [२५] [२६] [३४], [३८] संख्या वाले प्रमाणोंमें तो विशेषकर किया है। यदि आर्यराज्य होता तो वादीकी इच्छा [छलीको वज्रसे मारनेकी] पूर्ण होती। उक्त श्रीमद्भागवतके वचनमें तो 'नमस्ये शिरसाऽसकृत्' [१०।५२।३३] यह 'नमस्ये' पाठ है, 'नमस्ते' नहीं। 'भारतीय-संस्कृति' के प्रणेताने भी 'नमस्ते' ही पाठ दे डाला है। 'नमस्ये' का अर्थ है—'पूजयामि'।

वादीके अनुसारभी यहां 'नमस्ते' यह पाठ अशुद्ध है; क्योंकि-वादी 'नमस्ते' में 'नमः-ते' यह दो पद मानता है [पृ० ६] और 'ते' को वह 'वैदिक साहित्यज्ञोंने एकवचनानन्तशब्द [नमस्ते] का सबके लिए प्रयोग करना उचित समझा और युक्तियुक्त भी है' [पृ० ३५] इन शब्दोंसे एकवचन मानता है; तब 'विप्रान्...नमः ते' इस द्वितीयाके बहुवचनान्त 'विप्र' शब्द से उस एकवचनान्त चतुर्थीके 'ते' शब्दकी सङ्गति क्या हो सकती है ?। इसके अतिरिक्त 'नमस्' पदके योगमें उपपदविभक्ति चतुर्थी होती है; पर यहां तो 'विप्रान्' में द्वितीया है। 'नमस्ये' तो सकर्मक-क्रिया है, तब उसके योगमें कारकविभक्ति द्वितीया ठीक ही है।

(३५) पू०-राजा जनकने अपने आसनसे उठकर मुनि-

याज्ञवल्क्यको नमस्ते किया-'जनको ह वैदेहः कूर्चादुपासर्पन् उवाच-नमस्ते [बृहदा०]

उत्तर--वहां तो जनकने याज्ञवल्क्यको युष्मद्-शब्दकी अन्य-विभक्तियोंके एक वचन भी दिये हैं; जैसेकि हम पहले दिखला चुके हैं, तब वादी मान्यको उन युष्मद्के सभी विभक्तियोंके एकवचनका प्रयोग क्यों नहीं देते? यह एक वादीके पक्षमें आपत्ति है; और फिर यहां 'नमस्ते' के उत्तरमें याज्ञवल्क्यने भी जनकको 'नमस्ते' नहीं कहा-यह वादी के पक्षमें दूसरी आपत्ति है। वर्ण एवं योग्यतामें उच्चको नमस्कार करना तो हमारे पक्षमें भी विरुद्ध नहीं, तब वादीने यह उद्धरण व्यर्थ दिया है।

[३६] वाल्मी. में विश्वामित्रने 'नमस्तेस्तु' आपको मेरा नमस्ते हो' कहा है। यह गलत है; यहां 'मम तुभ्यं नमस्ते' पाठ नहीं है, जो कि यह अर्थ किया है। इसीका नाम होता है असत्य।

[३७] पूर्व-सीता विराध-राक्षसको नमस्ते करती है।

उत्तर—यहां हमारे पक्षमें कुछ भी हानि नहीं। राक्षस-जाति देवजातिमें अन्तर्भूत होनेसे मनुष्यकी अपेक्षा उच्च है; तब उसको नमस्कार हो सकती है, और मानुषी व्यवहारसे भिन्न होनेसे वहां 'ते' का प्रयोग भी हो सकता है; अतः इस प्रमाणसे प्रतिपक्षीका कुछ भी सिद्ध न होनेसे यह उद्धरण व्यर्थ है।

(३८) पूर्व—अथर्ववेदमें स्त्रीजातिके लिए नमस्तेका प्रयोग

है—'नमस्ते जायमानायै जातायै उत ते नमः।' (अ.१०।१०।१)

उत्तर—यह वादीका छल है; उसने इसका उत्तरार्ध छिपा दिया है। वहां 'अघ्न्ये' यह सम्बोधन है। 'अघ्न्या' निघण्टु (२।११४) तथा वेद (यजुः ८।४३) के अनुसार गायका नाम है। सो यह पैदा होरही वा पैदा हुई गायको नमस्कार किया गया है, स्त्री-जातिको नहीं। गायको 'ते' कहना व्यवहारसे विरुद्ध नहीं। यह प्रमाण वादीने घरौण्डाके 'नमस्ते-प्रदीप' से बिना विचारे ले लिया है।

(ख) पूर्व—'मैं समझता हूँ कि इतने विवेचनसे हमारे पण्डितम्मन्य पौराणिक-भाइयोंकी आंखें अवश्य खुली होंगी।'

समीक्षा—यहां वादी इस प्रकार परिवर्तन कर दे—'मैं समझता हूँ कि—इतने विवेचनसे पण्डितम्मन्य दयानन्दी दर्शना-ध्यापकजीकी आंखें अवश्य खुल गई होंगी, उन्होंने अपने असत्य व्यवहारसे अपना महल गिरता हुआ देख लिया होगा। फलतः वे अग्रिम-संस्करणमें इस क्षुद्र-पुस्तकका संशोधन कर लेंगे।'

पूर्व—पृष्ठ ६ में वादी कहता है—'नमस्ते' शब्दको दो टुकड़ोंमें बांटा जा सकता है— नमः–'ते'। व्याकरणके जानने वाले जानते हैं कि 'ते' शब्दका अर्थ है— 'तुभ्यं' अर्थात् 'तुम्हारे लिए'। अब 'नमस्ते' शब्दका अर्थ यह हुआ कि—'तुम्हारे लिए नमः।'

समीक्षा—यह कथन अशुद्ध है। 'ते—तुभ्यम्' का अर्थ है-'तेरे लिए'। क्योंकि 'तेमयावेकवचनस्य' (पा. ८-१-२२)। एकवचनमें 'ते' होता है—बहुवचनमें युष्मद्को 'ते' नहीं होता।

'वः' होता है। 'तुम्हारे लिए' यह वहुवचन है, तब वादीने 'तुम्हारे लिए' यह' बहुवचनका अर्थ कैसे किया ? वादीसे दिए गये प्रमाणोंमें जब 'नमो वः' नहीं है, तब; 'तुम्हारे लिए' अर्थ नहीं हो सकता। 'तेरे लिए' ही अर्थ होगा। यदि 'ते' का अर्थ 'तुम्हारे लिए' है तब 'वः' का क्या अर्थ होगा ? और 'तेरे लिए' की क्या संस्कृत होगी ? यदि 'तुभ्यं' होगी, तो 'तुभ्यं' के स्थानापन्न 'ते' में अर्थभेद कैसे होगा ? स्वामी वेदानन्दजीने आर्यसमाजके ग्रन्थसाहिब स. प्र. की पृष्ठ ३६ की टिप्पणीमें 'तुझे नमस्कार' अर्थ किया है; यह ठीक है। पर आप लोग क्या मान्यको 'तुझे' कहते हैं ? यदि नहीं तो बड़े के लिए छोटे-द्वारा किया हुआ 'नमस्ते' ठीक नहीं हुआ।

इसके अतिरिक्त क्या आप लोग मान्यको भी 'तुम्हारे लिए' यह शब्द कभी कहते हैं ? यदि नहीं; तो क्यों ? यदि इस कथनसे मान्यका अपमान है; तो 'ते' से भी मान्यका अपमान सिद्ध हुआ। तब आप लोग 'नमस्ते' कहकर मान्य-का अपमान क्यों करते हैं ? जब वादीके मतमें 'नमस्ते' का अर्थ 'तुम्हारेलिये नमः' है; तो वादीने 'नमस्ते स्वात्मवेदिने' (३३) (२८) (२५) (२२) (२१) (१७) (१४) आदि प्रमाणोंमें 'तेरे लिए नमः हो' यह न कहकर 'तुम्हें नमस्ते' 'आपको नमस्ते' यह अर्थ कैसे किया ? क्या यह 'नमस्ते' एक पद है—जो उक्त अर्थ किया ? इससे वादीके सारे ट्रैक्टका उसीके 'नमस्ते' में द्विपदत्वके सिद्धान्तसे खण्डन होगया। इसके अतिरिक्त उसके दो पद होनेसे उनकी अनित्यता होगई; क्यों-

कि एकत्व भी जब नित्य और अनित्य है; तो द्वित्वादि तो सर्वत्र अनित्य ही होता है।

आगे वादी ३३-३४ पृष्ठमें पूर्वपक्ष उपस्थित करता है—(पू०) 'नमस्ते' शब्दको दो टुकड़ोंमें बांटा जाता है—'नमः-ते'। 'ते' शब्द 'तुभ्यं' के स्थानपर आदेश होता है, परन्तु विचारणीय बात यहांपर यह है कि— तुभ्यं' शब्द युष्मद्-शब्द की चतुर्थी-विभक्तिके एक-वचनका रूप है, इसका अर्थ है—'तेरे लिए'। ऐसे अवस्थामें यह कैसा असभ्य व्यवहार होगा कि—पुत्र अपने पिताको यह कहे कि—तेरे लिए नमः हो'। अतः आदरके लिए उसको कहना तो यह तो चाहिये था कि—'आपके लिए नमः हो'। अतः समझमें यही आता है कि—आर्यसमाजमें 'नमस्ते' शब्दका व्यवहार अनुपयुक्त है'।

यह बात अत्यन्त उपयुक्त है; इसका उत्तर आर्यसमाज त्रिकालमें भी नहीं दे सकता। वादीने भी इसका उत्तर नहीं दिया। उसपर लेखनी चला देना उत्तर नहीं होता। हम वादीका उत्तराभास उद्धृत करते हैं; और उसके प्रत्येक वाक्य का निराकरण करते हैं। वादी कहता है—

(क) यह कोई आवश्यक नहीं कि—'ते' एकवचनका रूप प्रयोग करनेसे वड़ोंका अनादर होता है' (पृ० ३४)

(प्रत्युत्तर) यह उत्तर अशुद्ध है। पूर्वपक्षमें एकवचनसे मान्यका अनादर नहीं कहा गया, किन्तु युष्मद्के एक-वचनसे मान्यका अनादर कहा गया है। यह ठीक भी है, हम इस विषयमें गत-निबन्धोंमें स्मृति एवं महाभारत आदिके प्रमाण

दे चुके हैं। यदि युष्मद्की सब विभक्तियोंका एक वचन वादी के मतमें अनादरावह नहीं; तो वे लोग संस्कृतमें मान्यको 'त्वं, त्वाम्, त्वया, तव' आदि क्यों नहीं लिखते। हिन्दी भाषा में भी बड़ेको 'तू, तुझे, तेरा' क्यों नहीं लिखते ?।

[ख] यह तो प्रत्येक भाषाका अपना-अपना तरीका होता है—अङ्ग्रेजीमें 'ही' [He] इस एक-वचनके रूपका अर्थ है 'वह', परन्तु इसका प्रयोग छोटे-बड़े सबके लिए समान रूपसे होता है।

[प्रत्यु०]—यह दृष्टान्त विषम है, बात 'युष्मद्'के एक वचनकी चल रही है 'तद्' शब्दके एक वचनकी नहीं। वादीसे दिये हुए पूर्वपक्षमें केवल युष्मद्-शब्दके एक-वचनको आक्षिप्त किया है, अन्य शब्दोंके एक वचन नहीं। वादीने अंग्रेजी शब्द 'He' का उद्धरण दिया है, वह प्रकृतोपयुक्त नहीं; वादी अंग्रेजीमें युष्मद्के एक वचन Thou, Thy, Thine, और Thee इन प्रयोगोंको देखें। क्या वह इनका प्रयोग कभी मान्यके लिए अंग्रेजी भाषामें व्यवहृत दिखला सकता है ?। परमात्माके लिए, देवताओंके लिए, प्राचीन ऋषि-मुनियोंके लिए, वृक्ष, नदी तथा पशु-पक्षी एवं जड़ वस्तुओंके लिए तो इसका प्रयोग किया जाता है, पर लौकिक व्यवहारमें तो उसके प्रयोग से तिरस्कार ही बोधित होता है। हम इसीका ही तो विरोध करते हैं। यदि आप 'ते'से अनादर नहीं मानते; तो बड़ेके लिए त्वं, त्वां, त्वया, तुभ्यं, त्वत्, तव, त्वयि'का प्रयोग भी संस्कृतमें, हिन्दी-उर्दू में 'तू, तुझे, तेरे लिए, तेरा आदिका, तथा

अंग्रेजी में Thou, Thy आदिका प्रयोग कीजिए; पर आप भी अनादरवश नहीं करते; तब 'ते' का प्रयोग भी अनादर सूचक होनेसे नहीं करना चाहिए—यह हमारा अभिप्राय है।

[ग] यदि कोई छोटा पुरुष बड़ेके लिए ही एकवचनान्त शब्दका व्यवहार करता है; तो इसमें बड़ा व्यक्ति अपना अपमान नहीं समझता, क्योंकि—यह उसकी भाषाके व्यवहारका तरीका है।

[प्रत्यु०] यदि ऐसा है; तो क्या संस्कृतभाषामें 'त्वं, त्वां, त्वया, तुभ्यम्, त्वत्, तव, त्वयि, इन युष्मद्के एक वचनों से 'तू, तूने, तुझे, तेरा' इत्यादि हिन्दी भाषाके युष्मद्के एक वचनोंसे, इसी प्रकार अंग्रेजीके Thou, Thy, Thine, Thee, आदि युष्मद्के एकवचनोंसे ज्येष्ठ व्यक्ति अपना अपमान नहीं समझता ? क्या वादी अपने लिए इन शब्दोंका प्रयोग अपनेसे कम आयु वाले व्यक्तिके द्वारा स्वीकृत कर सकता है ? तथा अन्य आर्यसमाजी भी क्या युष्मद्का एक-वचन अपने लिए स्वीकार करनेको उद्यत हैं ? यदि ऐसा है; तो उसका प्रयोग आप लोग क्यों नहीं करते; जिससे 'नमस्ते' पर आक्षेपोंका अवसर ही न हो।

(घ) परन्तु हां, यदि हम 'नमस्ते' शब्दमें 'ते' शब्दका हिन्दी अनुवाद करके किसी महापुरुषसे कहें कि-'तेरे लिए नमः' तो यह एक अपमान-सूचक प्रयोग होगा, क्योंकि इस हिन्दीके व्यवहारका यही भाव समझा जाता है।

प्रत्यु—क्या 'ते' का अर्थ 'तेरेलिए' यह नहीं है ? संस्कृतमें

भी क्या उसका 'तुभ्यम्' अर्थ नहीं है ? यदि है; तो 'नमस्ते' में ठहरे 'ते' शब्दसे भी मान्यका अपमान सिद्ध हुआ, और वादीके ही शब्दोंसे वादीका पक्ष खण्डित हो गया। 'जादू वह, जो सिरपर चढ़कर बोले' यदि 'ते' इस युष्मद्‌के एकवचनका हिन्दीमें यह अर्थ है; तो संस्कृतमें भी क्या आप 'त्वं, त्वां, तुभ्यं' का प्रयोग बड़ेको करते हैं ? क्या उसमें बड़ेको युष्मद्‌के एकवचन प्रयुक्त करनेकी शैली है ? क्या आप करते-कराते हैं ? यदि 'ते' इस युष्मद्‌के एकवचनका अपमान अर्थ नहीं हैं; तो आप लोग मान्यको सदा युष्मद्-शब्दका एकवचन क्यों नहीं देते ? क्या प्राचीन समयमें युष्मद्‌का एकवचन 'ते' तो प्रयुक्त होता था; अन्य युष्मद्‌के एक वचन त्वं, त्वाम्, त्वया, तुभ्यम् 'तव' आदि मान्य के लिए प्रयुक्त नहीं किये जाते थे ? यदि किये जाते थे; तो आप लोग उनका प्रयोग न करके केवल 'ते' का प्रयोग क्यों करते हैं ? वादी के पास इसका उत्तर त्रिकाल में भी नहीं है। इसलिए वह संकुचित शब्दोंसे कहता है–

(ङ) थोड़ी देर के लिए यदि हम मान भी लें कि 'ते' शब्द-अपमान सूचक है। [थोड़ी देरके लिए नहीं; यह आपको हर समयमें मानना पड़ेगा] तो पौराणिक-भाइयोंसे-पूछा जा सकता है कि-पूर्व दिये हुए पुराणोंके उदाहरणोंमें परमात्मा के लिए, अपने पिता, गुरु ऋषि तथा अन्य पूज्योंके लिए एक-वचन के 'ते' शब्दका प्रयोग क्यों किया गया है ? क्या वहां अपमान सूचित नहीं होता ?

प्रत्यु–उन प्रमाणोंमें केवल 'ते' शब्द नहीं है, किन्तु त्वं,

त्वां, तुभ्यम्, त्वत्, तव, त्वयि' आदि प्रयोग भी हैं; देखिये उन प्रमाणों के पूर्वोत्तर पद्य; तब वादी लोग बड़ों के लिए उनका प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ? यदि इसमें अपमान विचार कर उनका प्रयोग नहीं करते, किन्तु वहां भवान्, भवन्तं, भवता, भवते, श्रीमते, भवद्भ्यः, आदि का, तथा 'आप, आपको, आपका, आपके लिए, आदिका प्रयोग करते हैं; तब 'नमस्ते' में 'ते' शब्द अपमान-वाचक सिद्ध हुआ।

इसके अतिरिक्त मान्यके लिए युष्मद्‌के एकवचनको देना किसी भी धर्मशास्त्रमें आदिष्ट नहीं, बल्कि–उसका निषेध है; और उसका प्रयोग छोटोंके लिए कहा गया है। जैसेकि–'न जातु त्वमिति ब्रूयाद् आपन्नोऽपि महत्तरम्। त्वङ्कारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते। अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत्' (महाभारत-अनुशासनपर्व १६२।५३) 'आपत्ति में पड़कर भी बड़ेको तू–यह न कहे, क्योंकि–तू-तड़ाक करना और मारना–इनका समझदारोंमें भेद नहीं होता। हां, छोटों तथा शिष्य आदिको कहें'। इत्यादि इस विषयके बहुतसे प्रमाण हैं। मनुस्मृति आदिमें भी ऐसा ही स्वीकृत किया गया है–पाठक यह गत-निबन्धमें देख चुके होंगे। छोटोंके लिए 'ते' शब्दके सिद्ध होने पर भी उनके लिए 'नमः' शब्दका प्रयोग नहीं दिया जाता; क्योंकि–'नमः' शब्दसे सत्कार करने पर सत्क्रियमाण पुरुष बड़ा मालूम देगा। जैसेकि–वादीने भी स्वीकार किया है–'जब मनुष्य दूसरेके सामने ऐसी क्रिया करे–जिससे वह दूसरेसे छोटा प्रतीत हो; वही क्रिया 'नमः' शब्दका

अर्थ है। जैसे जब कोई हाथ जोड़कर माथा नवाकर किसीके सामने झुकता है, तो वह उससे छोटा ही प्रतीत होता है' (पृ० ७) तब 'नमस्ते' शब्द दोनों पक्षोंसे अयुक्त सिद्ध हुआ। तो फिर मान्यके लिए 'ते' शब्दका प्रयोग कैसे हो ? और छोटेके लिए 'नमः' शब्दका प्रयोग कैसे दिया जाए ?

शेष जो किसी इतिहासमें मान्यको युष्मद्‌का एकवचन दीखे, वह भी एक इतिहासका वचन है, ऐसे सैंकड़ों भी वचनों को विधि-निषेधका एक वाक्य भी बाधित कर दिया करता है, निषेध-वाक्य हम अभी-अभी लिख चुके हैं ! कर्णपर्वमें (महाभारत ६९।८३-८६)में भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनको बड़े के प्रति 'त्वं, त्वया' आदि कहना बड़ेका अशस्त्रवध माना है, यह 'नमस्ते हठवाद' निबन्धमें हम आगे देंगे।

फलतः इतिहाससे धर्म-अधर्मका निर्णय नहीं हुआ करता; किन्तु धर्मशास्त्रसे ही धर्माधर्मका निर्णय हुआ करता है। जैसेकि न्यायदर्शनमें कहा है—'यज्ञो मन्त्र-ब्राह्मणस्य (विषयः), लोकवृत्तमितिहास-पुराणस्य, लोक-व्यवहारव्यवस्थापनं च धर्मशास्त्रस्य विषयः। तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यते-इति यथा-विषयमेतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवद्-इति' (४।१।६२) अर्थात् इतिहास-पुराणका विषय है लोकवृत्त बताना कि—उस समय लोगोंका आचरण क्या था; पर लोक-व्यवहारकी व्यवस्था करना यह धर्मशास्त्रका विषय है। पुराण-इतिहास अपने विषयमें प्रधान और धर्मशास्त्र अपने विषय (लोक-व्यवहारकी व्यवस्थापना) में प्रधान प्रमाण होते हैं। पुराण-इतिहासमें जो हुआ, वह तो लोकवृत्त होता है, वह धर्मशास्त्रसे विरुद्ध भी हो सकता है; पर इतिहास-पुराणमें किसी मान्यका अनुसर्तव्य अनुशासन भी हो जाता है, वह 'धर्मशास्त्र' हुआ करता है, उसका अनुशासन ग्राह्य हुआ करता है; पर आचरण सभी ग्राह्य नहीं हो जाते। इसी कारण श्रीमद्भागवतमें कहा है—'ईश्वराणां वचः सत्यं, तथैवाचरितं क्वचित्। तेषां यत् स्ववचो युक्तं (धर्मशास्त्रानुकूलम्), बुद्धिमान् तत् समाचरेत् (१०।३३।३२)

इसका उदाहरण भी देख लीजिए—पुराण-इतिहासमें युधिष्ठिरका द्यूत खेलना आया है, द्रौपदीके पांच पति होना भी बताया है; पर यह ऐतिहासिक-आचरण धर्मशास्त्रसे विरुद्ध होनेसे अनुसर्तव्य नहीं हो जाता। 'पुरुषोंका द्व्यक्षर वा चतुरक्षर सम नाम करना चाहिए, विषमाक्षर नहीं' ऐसा मनुस्मृति, पारस्करगृह्यसूत्र आदि धर्मशास्त्रोंका आदेश है; जैसेकि वादीके स्वामीने भी लिखा है—'पुरुषोंका समाक्षर नाम रखना चाहिए, तथा स्त्रियोंका विषमाक्षर नाम रखें' (संस्कार-विधि-नामकरण-प्रकरणकी टिप्पणी)। पर इतिहासमें इससे विरुद्ध पुरुषोंके नाम अर्जुन, नकुल, लक्ष्मण—यह विषमाक्षर, और स्त्रियोंके नाम कृष्णा (द्रौपदी) 'सीता आदि समाक्षर मिलते हैं; वादीके सम्प्रदायमें भी पुरुषोंके तुलसीराम, छुट्टनलाल, राजेन्द्र आदि विषमाक्षर नाम मिलते हैं; यह आचरण आजके इतिहासमें दीखनेपर भी धर्मशास्त्र-विरुद्ध होनेसे अनुसरणीय नहीं हो जाता। इस प्रकार इतिहासमें युष्मद्‌के

एकवचन 'ते, तव' आदि दीख जाने पर भी मान्यके लिये उसका प्रयोग धर्मशास्त्रके वचनसे विरुद्ध होनेसे अनुसर्तव्य नहीं हो जाता; हम उस धर्मशास्त्रके वचनको गत निबन्धमें तथा ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। अतः वादीका यह प्रयास खण्डित हो गया।

(च) "द्विवचनका प्रयोग तो एकके लिये हो ही नहीं सकता।"

प्रत्यु०—इससे दो पुरुषोंके लिए वादी मतमें भी नमस्तेका प्रयोग न हो सका; वहां पर 'नमो वाम्' कहना पड़ेगा। तब परिवर्तनशील होनेसे 'नमस्ते' पदका ही सर्वत्र कथन स्वयं ही कट गया।

(छ) शेष रह गया बहुवचनका प्रयोग। अब 'यदि 'ते'के स्थानपर बहुवचनका 'वः' शब्द प्रयुक्त कर देते; तो हमारे पौराणिक भाई यह प्रश्न कर बैठते कि—छोटोंको 'नमः' करते समय बहुवचनान्त-शब्दके प्रयोगकी क्या आवश्यकता? बहुत हद तक यह उनका प्रश्न ठीक भी होता।

प्रत्युत्तर—वे [सनातनधर्मी] तो छोटेको 'नमः' कहनेका भी विरोध करते हैं; तब उनकी यह बात वादी क्यों नहीं मान लेते, और छोटेको 'नमस्ते' कहना क्यों बन्द नहीं कर देते? वे बड़ेको सत्कारार्थ बहुवचन देना भी कहते-मानते हैं, और उसे 'ते' कहने में उसका अनादर मानते हैं; तब वादी उनकी बात मानकर बड़ेको भी 'नमस्ते' कहना बन्द कर दें, अथवा उन्हें 'नमो वः' कहकर 'नमस्ते'का बाईकाट कर दें;

तब आप उन पौराणिकोंकी बात क्यों नहीं मान लेते, जबकि—वह बात आपके अनुसार भी ठीक है।

इससे बड़ेको आदरार्थ बहुवचन देना वादीके मतमें भी ठीक सिद्ध हुआ। तो छोटेके लिए वादीके मतमें भी आदर-वाचक-बहुवचनके अयोग्य तथा अप्रयोज्य होनेसे उन्हें आदर-वाचक 'नमः' शब्दका प्रयोग भी (जिससे अपनी अपकृष्टता-छोटेपनका बोध होता है) अयुक्त सिद्ध हुआ। क्योंकि—अभिवादनार्थक 'नमः' शब्दका प्रयोग वृद्ध (बड़े)के लिए होता है, छोटेके लिए नहीं। जैसेकि मनुस्मृतिमें कहा है—'अभिवादयेत वृद्धांश्च' (४।१४८) ज्यायांसमभिवादयन्' (२।१२२)। निरुक्तमें भी 'महान् मंहनीयो भवति, मानेन अन्यान् जहाति इति शाकपूणिः' (३।१३।६) इससे लघुकी बड़ेसे पूजनीयता नहीं होती, अतः 'नमः' शब्द भी उनके लिए नहीं आ सकता है, वह (नमः-शब्द) बड़ेके लिए ही आता है, 'जैसेकि—वेदमें भी कहा है—'यजाम (पूजें) इद् नमसा ['नमः' शब्दसे] वृद्धमिन्द्रम्' [बड़ेको] (ऋ० ३।३१।७) 'गिरा उपब्रुवे नमसा ['नमः' शब्दसे सत्कार करता हूँ] दैव्यं जनम्' [दैवी जनको, दिव्य जनको) [ऋ० २।३०।११)।

इसके अतिरिक्त इससे बहुवचनमें 'नमस्ते'का प्रयोग भी वादीके मतसे अशुद्ध सिद्ध हुआ। क्योंकि—उसके मतसे भी 'ते' एक वचनान्त-शब्दका सबके लिए प्रयोग करना' (पृ० ३५) इन शब्दोंसे 'ते'के एकवचनान्त होनेसे बहुवचनमें उसका प्रयोग नहीं हो सकता। मान्यके लिए आदर—अर्थमें बहुवचन

का प्रयोग करना हो, जैसेकि—स्वा० दयानन्दजीने स०प्र०—आदिके अन्तमें अपने गुरु विरजानन्दजीको बहुवचन दिया है—उसमें भी वादीके मतानुसार 'ते'का प्रयोग न हो सकनेसे वहां 'नमो वः' ऐसा परिवर्तन करना आ पड़नेसे 'नमस्ते' की सार्वत्रिकता और अनिवार्यता तथा अपरिवर्तनीयता खण्डित हो गई।

(ज) इन आपत्तियोंसे बचने के लिए वैदिक-साहित्यज्ञों ने 'ते' इस एकवचनान्त शब्दका सबके लिए प्रयोग करना उचित समझा और यह युक्तियुक्त भी है'।

प्रत्यु—'ते' इस एकवचनान्त शब्दके सर्वत्र प्रयोगसे आप लोगोंकी आपत्तिसे रक्षा नहीं हो सकती। दो पुरुषोंके लिए गोपथब्राह्मणमें 'नमो वां भगवन्तौ !' (१।२।५) आया है; अथर्व सं. में. भी 'उभाभ्यामकरं नमः' (अ. ११।२।१६) 'नमो वाम्' (अ. ११।२।१) यह आया है; वहां 'नमस्ते' यह एकवचन प्रयुक्त नहीं किया गया, यह आप पर आपत्ति पड़ती है। बहुवचनमें 'नमो वः पितरः' (अ. १८।४।८५) 'नम एतेभ्यः (दिव्यास्त्रेभ्यः) (उत्तररामचरित प्रथमाङ्क) यह प्रयोग आया है, यहाँ भी 'नमस्ते' का प्रयोग एकवचनान्त होने से न हो सका—यह दूसरी आपत्ति वादीके पक्षमें आती है। जिसे आदरार्थ बहुवचन देना है, उसे भी 'नमस्ते' यह वादीके मतमें भी एकवचनान्त वाक्य प्रयुक्त न हो सकेगा, यह तीसरी आपत्ति वादी के वैदिक-साहित्यज्ञों पर पड़ती है। वादीके वैदिक-साहित्यज्ञ भी मान्यको युष्मद्का एकवचन त्वं त्वया

आदि नहीं देते तदनुसार भी युष्मद्के एकवचन होनेसे 'नमस्ते' यह प्रयुक्त न हो सकेगा—यह उनपर चौथी आपत्ति आती है। 'ते' का प्रयोग अपनेसे छोटेको यद्यपि दिया जा सकता है; तथापि उनको 'नमः' यह कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि उसे नमस्कार करनेसे वह नमस्कृत हुआ व्यक्ति छोटा प्रतीत नहीं होगा। किन्तु बड़ा हो; जैसे कि-वादीने भी स्वीकार किया है—'जब [छोटा] मनुष्य दूसरे [बड़े] के सामने ऐसी क्रिया करे, जिससे वह उन दूसरे [बड़े] से छोटा प्रतीत हो, वही क्रिया 'नमः' शब्दका अर्थ है, अर्थात् 'नमः' करने वाला [छोटा] दूसरे [बड़े] का सत्कार कर रहा होता है। जैसे-'जब कोई हाथ जोड़कर माथा नवां कर-किसीके सामने [नमः शब्द कहकर] झुकता है, तो वह उससे छोटा ही प्रतीत होता है [और जिसे नमः कहा जाता है, वह उससे बड़ा ही प्रतीत होता है]' ('नमस्ते की व्याख्या' पृ. ७।८), तब वहां भी 'नमस्ते' का प्रयोग न होने से उसकी सार्वत्रिकता और अपरिवर्तनीयता नष्ट हो जाती है, यह वादीके वैदिक-साहित्यज्ञों पर पांचवीं आपत्ति आती है। सब स्थानों पर 'नमस्ते'का प्रयोग युक्तियुक्त भी नहीं है; उसे एकपद माननेकी बहुतसी अशुद्धताएं भी आती हैं, जैसेकि-वादीने अन्तमें कहा है—'मैं भी आपसे सादर नमस्ते करके बिदा होता हूँ' (पृ. ३६) यहां 'आप' इससे सभी लोग बोधित होते हैं; तब वादीके अनुसार भी इसमें बहुवचनमें एकवचनान्त 'ते' का प्रयोग अशुद्ध सिद्ध होगया; तब

'नमस्ते' वाद बहुत आपत्तियोंका लानेवाला, और वेदादि सकल-शास्त्र-विरुद्ध सिद्ध हुआ।

यदि 'नमस्ते' वाद वैदिक होता; और उससे भिन्न शब्द अवैदिक होता, तब वेदमें नमस्ते से भिन्न कोई भी शब्द इन अवसरों पर न होता। वेदमें तो 'नम एवास्तु' (अ. ११।३१।३) 'नम इत् कृणोमि' [अ. ६।२।१६] 'नमो भरन्तः' [अ. ११।१७] 'नम-उक्तिं विधेम' [ऋ. १।११८।१३] 'नम उक्तिम् अहम् अदिक्षि' [ऋसं. ५।४३।१६] 'नम उक्ति जुषस्व' [ऋ. ३।१४।२] 'नमो-वाके' [अ. १३।६।१५] 'नमो अस्तु अस्मै' [अ. ११।२।१८] 'अवोचाम नमो अस्मै' [ऋ. १।११४।११] इत्यादि मन्त्रोंसे 'नम 'की उक्तिका ही मान्यके लिए अनुशासन किया है, 'नमस्ते-उक्ति'का कहीं भी आदेश नहीं किया। 'उपब्रुवे नमसा' (ऋ. ११।८५।७) यहां भी 'नमसा' 'नमः' शब्द से ही मान्यके पास जाकर कहना कहा है। 'नमसा उपसद्यः' [२।२३।१३] यहां भी 'नमः' शब्द से माननीय उपसद्य-प्राप्त होने योग्य बताया गया है। 'यदस्माद् नमस्कारेण मुच्यध्वम्' [बृहदा. ५।८।१२) यहांपर 'नमस्कार' करना कहा है 'नमस्ते' करना नहीं। 'नमः'की उक्ति भी वहां मान्य देव आदिके लिए बताई गई है—'गिरा उपब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्' [ऋ. २।३०। ११] यहां माननीयको 'नमः' की वाणीसे सत्करणीय माना है—'अस्मै...विधेम (पूजें) नमसा' (नमः-शब्दसे) (२।३५।११) छोटेको कहीं 'नमः' कहना नहीं कहा गया। देव आदियोंसे हम छोटोंके लिए तो 'शं' का अथवा 'स्वस्ति'का वचन आदिष्ट

है। जैसेंकि-यजुः [२३।४४] अथर्व. [१।१२।४], ऋ. [१। ८६।६], ऋ. [१०।६३।१५] इत्यादि बहुत स्थानोंमें वर्णित है। तब उभयपक्षोंका समान शब्द भी अवैदिक हैं।

फलतः दोनों ओरसे 'नमस्ते'वाद, तथा 'नमस्ते'की अपरिवर्तनीयताका वाद, तथा 'नमस्ते'से भिन्न 'वन्दे' आदिका अवैदिकतावाद वेदादि सकल-शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेसे त्याज्यही है। न यह चारों वेदोंमें आदिष्ट है, न पञ्चम-वेद पुराण-इतिहास में; जहां वादीने असत्यतासे दिखलाया है हमने उसका सत्य समाधान दिखला दिया है। यह 'नमस्ते' तो ऐकदेशिक सम्प्रदाय-आर्य समाजका ही लिङ्ग है। सनातनधर्मी विद्वान् इससे घृणा करते हैं, अन्य भी साम्प्रदायिक विद्वान् इससे घृणा करते हैं। वैयाकरण उसमें एकपदताकी अशुद्धि होती हुई देखकर उससे घृणा ही करते हैं। तब यह 'नमस्ते'-वाद हेय ही है। यह अनेकताका प्रसारक है, विद्वेषका प्रचारक है, अशुद्धताका तथा अशुद्धार्थ करनेका प्रोत्साहक है। आशीर्वाद में भी यह नहीं हो सकता। 'नमः' शब्दका अन्न-अर्थ वेदमें ही प्रयुक्त होता है, लोकमें नहीं। आशीर्वादमें 'आयुष्मान् भव सौम्य (मनु. २।१२५)' स्वस्त्यस्तु' 'शमस्तु (अ० १।१२। ४) इत्यादि ही शास्त्रोंमें प्रयुक्त होता है, न 'नमस्ते' और न ही अन्न।

'सीताराम', जय श्रीकृष्ण, जय राम, आदि शब्द 'नमो मात्रे पृथिव्यै' (यजु० ६।२२) 'वन्दे मातरम्', 'जयहिन्द' 'जय धर्म' आदिकी भांति इष्ट-देव को कीर्तित करते हैं, असम्बद्ध नहीं।

परस्पर मिलनेके समय नमः-आशीर्वाद तो हाथके संकेतसे ही पूर्ण हो जाता है; इन शब्दोंसे एक-दूसरेसे इष्टदेवका कीर्तन वा स्मरण भी हो जाता है। यदि वैदिक शब्दोंका ही सर्वत्र आग्रह हो; तो वेदमें न कहे गये हुए गुरुकुल, आर्यसमाज, आर्यसमाज-मन्दिर आदि शब्दोंकी भी अवैदिकताका ढंढोरा पीट देना चाहिए और इनका बहिष्कार कर देना चाहिये।

फलतः 'नमस्ते-व्याख्या'के निरीक्षणसे स्पष्ट हो गया कि-उसका लेखक अपने पक्षके सिद्ध करनेमें असफल रहा है, तब 'नमस्ते'-वाद त्याज्य ही है। अन्तमें यह जान रखना चाहिए कि—उक्त ट्रैक्टके लेखकने भी 'नमस्ते'को दो पद माना है। जब एक संख्या भी अनित्य वस्तुमें प्राप्त होकर अनित्य हो जाती है; तब दो संख्या तो स्वतः अनित्य होगी ही। वेदमें जब 'वन्दे' आदि नमस्कारार्थक शब्द मिलते हैं; तब केवल 'नमः' का प्रयोग भी अभिवादनमें अनित्य है। फलतः 'नमस्ते' इन दो पदोंकी तो सर्वथा ही अनित्यता सिद्ध हुई, तब बहुत दोषोंकी उपस्थिति होनेसे 'नमस्ते'का प्रयोग छोड़ ही देना चाहिए; इसका प्रचार तब तक है, जब तक संस्कृत-भाषाका अज्ञान है। अज्ञान दूर होते ही यह शब्द भी अज्ञात हो जायेगा। इस प्रकार 'नमस्ते'को 'भारतीय संस्कृति'का अङ्ग बताते हुए श्री राजेन्द्रजीका भी यह अङ्ग टूटा-फूटा निकला, तब उस टूटे-फूटे 'नमस्ते'से मोह लगाना ठीक नहीं। अन्तमें जोकि-श्रीसुखदेव जीने जो यह लिखा है-'मैं भी आपसे सादर नमस्ते करके विदा होता हूँ' यह वाक्य भी अशुद्ध है।

यहां चाहिए कि-'मैं भी आपसे 'नमः' करके विदा होता हूँ' क्योंकि-जब आपने 'आपसे' शब्द पृथक् कह दिया, तब 'नमस्ते'के दो पद होनेसे 'ते' पद यहां व्यर्थ हुआ। इसका तो यह अर्थ हुआ कि-'मैं आपको तुझे नमः कहकर विदा होता हूँ', तो बताइये कि-यहां 'तुझे' यह पद क्या सम्बद्ध दीख रहा है? इसी पर आपके 'नमस्ते'का फैसला है। आप स्वयं मानेंगे कि—इस वाक्यमें 'आपको' के साथ 'तुझे' शब्द असम्बद्ध है, व्यर्थ है, पुनरुक्त है; इससे 'नमस्तेकी व्याख्या' भी सारीकी सारी गलत ही निकली। तब इस अशुद्धतापादक 'नमस्ते'का बहिष्कार करके 'नमो नमः' शब्दका वन्दनार्थ प्रयोग होना चाहिए और आशीर्वादमें स्वस्ति'।

इस 'नमस्ते' के विषयमें अन्य निबन्ध आगे देखिए।

(१०) 'नमस्ते' के कई अन्य प्रमाणोंपर विचार।

आजकल 'नमस्ते' छोटा-बड़ा दोनोंको कहा जाता है, यह बात शास्त्रविरुद्ध है; पर कई लोग इस बातको सिद्ध करनेके लिए कई प्रमाण दिया करते हैं; उनपर विचार किया जाता है-

(१) पूर्वपक्ष-'स राजन् ! मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात्। कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ !' (महाभा. आश्रमवासिकपर्व १०।५०) इस पद्यमें एक ब्राह्मणने धृतराष्ट्रको 'नमस्ते' कहा है। एक बड़े वर्ण (ब्राह्मण) ने छोटे वर्ण (क्षत्रिय) को नमस्कार की-यदि यह माना जावे; तब भी हमारा (वादीका) पक्ष सिद्ध हुआ कि-छोटेको भी नमस्कार

किया जाता है। अथवा 'नमस्ते' द्वारा एक ब्राह्मणने क्षत्रियको आशीर्वाद दिया-यह माना जावे; तब भी हमारा पक्ष पुष्ट हुआ कि छोटेको प्रयुक्त किया हुआ 'नमस्ते' शब्द आशीर्वाद-वाचक होता है। स. प्र. के ग्रन्थ-साहिब संस्करणकी टिप्पणी (३६ पृ.) में स्वा. वेदानन्दजीने भी लिखा है-धृतराष्ट्र ने वनवासका विचार किया; उसके जानेसे पूर्व हस्तिनापुरकी जनताने महर्षि शाकल्यको अपना प्रतिनिधि बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजा। उसने अन्तमें कहा-'नमस्ते भरतर्षभ!' महर्षि शाकल्य ब्राह्मण हैं; धृतराष्ट्र क्षत्रिय है। ब्राह्मण बड़ा माना जाता है, वह अपने से छोटे क्षत्रियको 'नमस्ते' कह रहा है'। (यह प्रश्न अन्य लोगोंने भी किया है, जैसेकि-पीछे कहा जा चुका है)।

उत्तरपक्ष-यद्यपि इस श्लोकको ब्राह्मणने युद्धसमाप्तिके बाद वनवासके लिए तैयार हुए धृतराष्ट्र को कहा था, तथापि यह श्लोक उसने अपनी ओरसे नहीं कहा, किन्तु क्षत्रिय-प्रजा का वचन ही अनूदित किया था। देखिये-'तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य वाक्यानि करुणानि ते। रुरुदुः सर्वशो राजन् समेताः कुरुजाङ्गलाः (१०।१) हम इन पद्योंका श्रीसातवलेकरका अर्थ देते हैं-वे कुरुजाङ्गलवासी प्रजासमूह धृतराष्ट्रके ऐसे करुणायुक्त वचन को सुन कर सब कोई इकट्ठे होकर रोदन करने लगे'। 'ते विनीय तमायासं धृतराष्ट्रवियोगजम्। शनैः शनैस्तदान्योन्यमब्रुवन् सम्मतान्युत' (१०।६) (उन लोगोंने धृतराष्ट्रके वियोगजनित दुःखको त्यागके धीरे-धीरे आपसमें अपना मत प्रकाश किया।) 'ततः संधाय ते सर्वे वाक्यान्यथ समासतः। एकस्मिन् ब्राह्मणे राजन्! निवेश्योचुर्नराधिपम्' (१०) (अनन्तर उन सब लोगोंने एकत्रित होकर सन्धान करते हुए एक ब्राह्मण के समीप अपना वचन सुनाके, वह सब (वचन) धृतराष्ट्र से कहने के लिए उन्हें (ब्राह्मणको) अनुरोध किया'। 'ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः। साम्वाख्यो बह्वृचो राजन्! वक्तुं समुपचक्रमे' (१०।११) अनन्तर सर्वसम्मत, अर्थविशारद पवित्राचारी वह ऋक्वेत्ता साम्बनामा ब्राह्मण राजासे वह सब वचन कहने लगा'।

बात स्पष्ट होगई। प्रजाओंने जो जो बात धृतराष्ट्रके प्रति कह देनेके लिए ब्राह्मणको कही थी, उस अर्थविशारद ब्राह्मणने वही-वही बात उनकी ओर से धृतराष्ट्रको सुना दी। अब यह ब्राह्मणका अपना वचन सिद्ध न हुआ। यहां यह समझना चाहिए कि-कई क्षत्रियलोग अपने किसी नेताको मानपत्र देना चाहते हैं; वे उस विषयको विशिष्ट-शैलीसे कहनेमें समर्थ किसी ब्राह्मणको बताकर सूचित करते हैं कि-हम सब लोग अलग-अलग अपने भावोंको क्या कहते रहें: आपही हमारी ओर से अमुक-अमुक बातें शृङ्खलाबद्ध करके सुना भर दें। अब उस ब्राह्मणने उन्हींका कथन सुना भर देना है, उस ब्राह्मणका उस कथनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं होता।

हमारे पास कई महोदय अपने किसी आहत नायकके लिए अभिनन्दनपत्र बनवानेके लिए आते हैं। हम उनके अभिप्रायको समझकर वैसे श्लोक बनाकर दे देते हैं; तब क्या उस अभि-

नन्दनपत्रके प्रणेता होनेसे उन भावोंका दायित्व हमपर हो सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि-हमने तो उन्हींके भावोंका अनुवाद भर कर देना है, उन भावोंका हम-व्यक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

तब इससे यह सिद्ध न हुआ कि-उस ब्राह्मणने क्षत्रियको नमस्कार की, बल्कि यह सिद्ध हुआ कि-धृतराष्ट्रको नमस्कार क्षत्रिय आदियोंने ही किया, ब्राह्मणने नहीं। वेद भी राजाका स्वामित्व ब्राह्मण से भिन्न प्रजापर मानता है। तभी तो कहा है-'विश ! एष वोऽमी राजा, सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' (शुक्ल यजुः वा० सं. ६।४०)। ऐ प्रजाओ ! यह राजा तुम लोगोंका है, हम-ब्रह्मणोंका राजा तो सोम (चन्द्र अथवा यज्ञ) है। इसी प्रकार यजुर्वेद-काण्वसंहितामें भी कहा है-'एष वः कुरवो ! राजा, एष वः पञ्चाला ! राजा, सोमोस्माकं ब्राह्मणा-राजा' (११।११) अथर्ववेद सहितामें (२।६) भी कहा है-'सो-मोहि अस्य (ब्राह्मणस्य) दायादः' (५।१८।६)। बोधायनगृह्य० (१।१०।११) में 'सोम एव नो राजा इत्याहुर्ब्राह्मणीः प्रजाः' यह तैत्तिरीय (२।११) का मन्त्र उद्धृत किया है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी 'एष वो भरता राजा, सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजेत्याह, तस्मात् सोमराजानो ब्राह्मणा (१।७।६।७) यही कहा है। इसलिए धृतराष्ट्रके प्रति वे वचन ब्राह्मण भिन्न प्रजावर्गकी ओरसे कहे हुए मानने पड़ेंगे। तब वादीका पक्ष खण्डित हो गया कि-उक्त वचन ब्राह्मणने कहा है, क्योंकि वह व्यक्तिगत वचन नहीं था। सो यहां क्षत्रिय प्रजाने यह उन्हें

नमस्कार किया है। शेष है 'ते' का प्रश्न; सो प्रजाके समष्टि होनेसे उसका प्रयोग भी संगत हो जाता है। इसके अतिरिक्त बड़ेको 'ते' कहना विधिसे विरुद्ध है, यह हम अन्यत्र बता चुके हैं। जो इतिहासमें विधि-विरुद्ध आचार आजावे, वह माननीय नहीं हो सकता।

(२) पूर्वपक्ष—'नमो महद्भ्योस्तु नमोऽर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः' इस भागवतपुराणके पद्यमें बच्चों और बूढ़ों सबको नमस्ते माना गया है; तब सबको 'नमस्ते' कहना ठीक हुआ।' (श्रीधर्मदेव-शास्त्री)

उत्तरपक्ष—पूर्वपक्षियोंकी यह प्रकृति देखी गई है कि—वे जो भी प्रमाण अपने पक्षकी सिद्धयर्थ दिया करते हैं; उनमें पूर्वापर छिपाया गया होता है। छिपा हुआ वह अंश प्रकट कर देनेपर वही प्रमाण उनसे विरुद्ध हो जाता है। यहां भी यही बात है। सम्पूर्ण पद्य यह है—'नमो महद्भ्योस्तु, नमो-ऽर्भकेभ्यो. नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः। ये ब्राह्मणा गामवधूत-लिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम्' (५।१३।१३) इसका वक्ता राजा रहूगण क्षत्रिय है। वह यह पद्य भरतमुनि, जो ब्राह्मणकुलमें थे (श्रीमद्भाग० ५।६) एवं अन्य ब्राह्मणोंको लक्ष्य करके कह रहा है।'

इसका अर्थ यह है कि—जो ब्राह्मण चाहे बड़े हैं वा बालक, युवा हैं या वृद्ध उन सब ब्राह्मणोंको नमस्कार हो। जो ब्राह्मण बाह्य-चिह्नोंको छोड़कर पृथिवीमें घूम रहे हैं; उनसे हम राजाओं (क्षत्रियों) का कल्याण हो'। अब 'आलोक'-

पाठक सोचें कि–इनसे प्रतिपक्षियोंका क्या सिद्ध हुआ ? यहां तो क्षत्रिय (छोटे) द्वारा ब्राह्मणों (बड़े) को नमस्कार की जा रही है, छोटे-बड़े सर्व-साधारणको नहीं। क्षत्रियकी अपेक्षा ब्राह्मण आयुमें चाहे बड़ा हो वा छोटा, बूढ़ा हो, वा बच्चा; वह बड़ा वर्ण होनेसे (पहले उत्पत्ति मुखरूप-ब्राह्मण की होती है; अतः उसे अग्रज, तथा उत्तमाङ्ग होनेसे सर्वोत्तम कहा जाता है। उत्पत्तिके समय पहले पाद शूद्र आदि उत्पन्न होने लगजाएँ, तो जननीका प्राण-संशय उपस्थित हो जाय) तो उस (क्षत्रियादि) से बड़ा है ही, आयुमें छोटा होनेपर भी ब्राह्मण क्षत्रियादिसे बड़ा ही माना जाता है। अतः बड़े आयु वाले भी क्षत्रियका छोटे ब्राह्मण-कुमारसे नमस्कार करना संगत ही है, जिसे क्षत्रिय राजा रहूगणने पूर्ण किया।

इसमें वादि-प्रतिवादि मान्य-मनुस्मृतिका भी निर्णय देखें-'ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् (क्षत्रिय-नृपम्)। पिता-पुत्रौ विजानीयाद् 'ब्राह्मणस्तु तयोः पिता' (२।१३५) यहां प्राचीन भाष्यकार मेधातिथिने लिखा है—' चिरवृद्धेनापि क्षत्रियेण स्वल्पवर्षोऽपि ब्राह्मणः प्रत्युत्थाय अभिवाद्यश्च-इति प्रकरणार्थः'। यहीं राघवानन्दने भी कहा है—'ब्राह्मणस्तु तयोः पिता—पितृवन्मानार्हः'। यहीं राघवानन्दने भी कहा है–'वर्णज्यैष्ठ्यं वयोज्यैष्ठ्ययो 'वर्णज्यैष्ठ्यं' मान्यता-निमित्त-मित्याह'—ब्राह्मणमिति' (वर्णज्येष्ठता और आयु ज्येष्ठतामें वर्ण ज्येष्ठता ही मान्यता का कारण है)। यहीं श्रीरामचन्द्रने लिखा है—'पिता-पितृस्थानीयः'।

यही बात आपस्तम्बधर्मसूत्रमें भी कही है—'दशवर्षश्च ब्राह्मणः, शतवर्षश्च क्षत्रियः। पिता-पुत्रौ स्म तौ विद्धि, तयोस्तु ब्राह्मणः पिता' (१।१४।२२)। इसी को अनुसृत करके 'स्मृति-चन्द्रिका' (संस्कारकाण्ड, अभिवादनप्रकरण) में शातातपका वचन उद्धृत किया है; 'अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा यश्च एव च। ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैस्तु श्री-समैः सादरं सदा'। इसी प्रकार महाभारत (अनुशासनपर्व) में भी कहा है—'क्षत्रियः शतवर्षी च दशवर्षी द्विजोत्तमः। पिता-पुत्रौ तु विज्ञेयौ तयोर्हि ब्राह्मणो गुरुः' (८।२१) अर्थात् ब्राह्मण १० वर्ष का हो, और-क्षत्रिय १०० वर्षका, फिर भी १० वर्षके ब्राह्मण को पितृतुल्य और १०० वर्ष के क्षत्रियादि को भी पुत्रतुल्य ही माना जावेगा।

यही बात महाभारतकारने भी आदिपर्वमें कही है—'बालोपि विप्रो मान्य एवेह राज्ञाम्' (५६।२) ब्राह्मण-बालक भी राजा से नमस्करणीय ही है)। अब 'आलोक' के विद्वान् पाठक विचारें कि-श्रीमद्भागवतके पद्यमें वर्णमें छोटे क्षत्रिय रहूगण द्वारा बड़े वर्णवाला ब्राह्मण नमस्कृत किया गया है; और क्षत्रियोंका ब्राह्मणों से 'शिवमस्तु राज्ञाम्' कल्याण मांगा गया है, नमस्कार करना नहीं। यह आज्ञा सर्वसाधारण बच्चों के लिए नहीं है; किन्तु बड़े वर्णके लड़केकेलिए। और फिर आक्षिप्त पद्यमें 'नमस्ते' शब्द भी कहने की आज्ञा नहीं दी गई तब प्रति-पक्षियों का पक्ष कट गया।

(३) पूर्व पक्ष—वेदमें भी छोटे-बड़े सभीको नमस्ते करना बताया है। देखिये—'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो

नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । (श्रीसन्तराम बी. ए.) ।

उत्तरपक्ष---यहां भी वादियोंका वही छल है । वे इसके उत्तरार्धको जन-दृष्टिमें नहीं आने देते । सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है---'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान् यदि शक्नवाम या ज्यायसः शंस मा वृक्षि देवाः' (ऋसं.१।२७।१३) यहां यह जानना चाहिएकि-वेदके अर्थ अपनी इच्छानुसार नहीं हुआ करते । उसमें यह भी देखना पड़ता है कि---वेदका हस्तरूप अङ्ग कल्प जो अङ्गी वेदके साथ ही परम्परासे चला आ रहा है--उस मन्त्र को किस अर्थमें प्रयुक्त करता है; अर्थात्-वहां ऋषि, देवता तथा छन्द क्या हैं ? उस मन्त्र में जो देवता है; वही उसमें स्तुत होता है । इस विधिको स्वामी दयानन्दजीने भी स्वीकृत किया है; तभी उस-उस मन्त्रपर ऋषि-देवता आदि लिखे ही हैं; यद्यपि फिर अर्थ में अपनी मर्जी ही बरती है।

फलतः 'नमो महद्भ्यः' मन्त्रका त्रिष्टुप् छन्द है, ऋषि (द्रष्टा एवं प्रणेता)शुनःशेप है, और इस मन्त्रके'विश्वे देवा देवता' हैं । तब मन्त्रमें वर्णनीय भी ये देवता ही हुए; मनुष्य नहीं । अग्निसे प्रेरित हुए अजीगर्तके पुत्र शुनःशेपने इस मन्त्रसे विश्वेदेवोंकी स्तुति की है । आर्य समाजकी छपवाई हुई ऋ. सं. में भी उक्त मन्त्रका देवता 'विश्वेदेवाः' ही लिखा है । यदि कोई यह न माने; तो मन्त्रभागके व्याख्यानरूप ब्राह्मणभागका भी प्रमाण हम इस विषयमें देते हैं--

ऐतरेय-ब्राह्मणके (जो ऋग्वेदका ब्राह्मण है) हरिश्चन्द्रो-

पाख्यानमें इस विषयमें कहा है--'तमग्निरुवाच--विश्वान् नु देवान् स्तुहि, अथ त्वा उत्स्रक्ष्यामः [अग्निने शुनःशेपको कहा कि--तुम विश्वेदेवोंकी स्तुति करो, फिर तुम्हें पाशसे छोड़ देंगे। उसने उक्त-मन्त्रसे विश्वेदेवोंकी स्तुति की--] स विश्वान् देवान् तुष्टाव 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य इत्येतया ऋचा (७। (३) १६) । तब उसने 'नमो महद्भ्यः' इस मन्त्रसे विश्वेदेवों-की स्तुति की । इस प्रकार यह मन्त्र देवताओंका सिद्ध हुआ; सर्वसाधारण-मनुष्योंका नहीं । इसीलिए श्रीसायणाचार्यने भी यही व्याख्या की है:--'महान्तो-गुणैरधिकाः, अर्भकाः गुणैर्न्यूनाः युवानः--तरुणाः--वयसा व्याप्ता वृद्धाः, इति यथोक्त-चतुर्विध-देहयुक्तेभ्यो देवेभ्यो नमोस्तु । यदि शक्नवाम-धनादिसम्पत्त्या कथंचित् शक्ताश्चेत्; तदानीं देवान् यजाम । यहां शुनःशेप ऋषिने पूर्वोक्त चार प्रकारके देवताओंको नमस्कार किया है, मनुष्योंको नहीं । देवता मनुष्योंकी अपेक्षा प्रधान-योनि होनेसे सदा ही बड़े होते हैं; चाहे वे आपसमें छोटे-बड़े भी क्यों न हों ?

वस्तुतः यहां 'अर्भकाः' जोकि देवताओंका विशेषण है-का अर्थ है कि 'अल्पदेहपरिमाणा देवाः' अर्थात् छोटे देहवाले देवता । अर्भकके 'अल्प' अर्थमें निरुक्तका प्रमाण देखिये--'दभ्रमर्भकमिति अल्पस्य । अर्भकमवहृतं भवति' । यह कहकर वहां 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' (३।२०।३) यही निगम दिया गया है । वहां श्रीदुर्गाचार्यका भाष्य इस प्रकार है--'नमो महद्भ्य--महत्परिमाणेभ्यो देवेभ्यः । नमो अर्भकेभ्यः--अल्प-

परिमाणेभ्यः, नमो युवभ्यः–यौवनवद्भ्यः, नम आशिनेभ्यः–व्यापिभ्यः। यजाम देवान् एतस्मिन् उपस्थिते महाकाले, यदि शक्नवाम-अल्पश्रुतविज्ञाना वयम्। अतएव ब्रूमो यदि शक्नवामेति। वयमीदृशाः सन्तो युष्मान् ब्रूमहे। हे ज्यायसः ज्यायांसः! देवाः! युष्माकमेव शंस–शंसितारं, मा वृक्षि–मा अस्मान् छिन्त यज्ञफलात्; को हि नाम नापराध्यति-इत्यभिप्रायः' जब ऐसा है; तो छोटे परिमाणवाले देवताओंको योनिकी प्रधानताके कारण नमस्कार करनेमें हमारे पक्षकी कुछ भी क्षति नहीं। प्रत्युत इससे पूर्वपक्षियोंका ही पक्ष कटता है, जो कि मन्त्रका अग्रिम अंश छिपा देते हैं, और फिर उक्त मन्त्रमें 'नमस्ते' शब्द ही नहीं; तब 'नमस्ते'-पक्षियोंका तो पक्ष ही कट गया; तब वे फड़फड़ा नहीं सकते। इससे छोटे-बड़े सबको नमस्ते करना कट गया; क्योंकि यहां तो अपनेसे बड़ेको नमस्कार करना सिद्ध है।

जैसे कोई आर्यसमाजी कहे कि–हम बड़े स्वामी [दयानन्द]को भी नमस्कार करते हैं; और छोटे स्वामी [दर्शनानन्द]को भी। चाहे यह स्वामी आपसमें बड़े-छोटे थे; पर नमस्कार करनेवाला इन दोनोंसे छोटा है; तब वह छोटे स्वामीको भी अपनेसे बड़ा होनेसे ही नमस्कार कर रहा है, अपनेसे छोटा होनेसे नहीं। उक्त मन्त्रमें 'देव' नाम विद्वान्का नहीं; इस विषयमें 'आलोक'का चतुर्थ पुष्प मूल्य ५) देखिए। स्वा.द.ने यजुःके अपने संस्कृतभाष्य [१।२६]में 'द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्' [१४।२।३।८] इस शतपथका

प्रमाण पदार्थमें उद्धृत किया है। इसका अर्थ यह है कि—सब देवताओंका स्थान द्युलोक [जहां सूर्य चन्द्रादि हैं] है। इसलिए निरुक्तमें भी कहा है–'द्युस्थानो भवतीति देवः' [७।१५।१] अथर्ववेद सं०में भी कहा है–'सर्वे दिवि देवाः' [११।७।२७]। द्यौ देवता द्युलोक-स्थित ही माने जाते हैं। द्युलोक 'दिवं च पृथिवीं च' [१०।१९०।३] इस ऋ.सं.के मन्त्रके अनुसार पृथिवीलोकसे भिन्न होता है। पृथिवी-लोकस्थ पुरुष देवता नहीं होते। देवता मनुष्योंसे सर्वथा भिन्न एक योनि है–इस विषयमें 'आलोक' [चतुर्थ पुष्प] देखिए। क्या अर्भक [बच्चे] भी विद्वान् होते हैं? यदि यहां विद्वान्-अर्भकोंके लिए वादीके मतमें नमस्कार हो; अविद्वान्-अर्भकों के लिए नहीं; तब बालकमात्रको वादीसे इष्ट नमस्कार खण्डित हो गया। 'त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्' [गीता ११।४३] इस वचनसे गुरु (बड़े)को ही 'पूज्य कहा है—छोटेको नहीं। अर्जुनने श्रीकृष्णको नमस्कार किया; श्रीकृष्णने अर्जुनको नहीं।

(४) पूर्वपक्ष—'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च' (१६।३२) इस यजुर्वेदके मन्त्रमें छोटे-बड़े सबको नमस्ते करना कहा है।

उत्तरपक्ष–मन्त्रोंके अर्थ अपनी इच्छानुसार नहीं हुआ करते; किन्तु उसके देवताके अनुसार होते हैं। इस मन्त्रका, बलिक सारे सूक्तका, रुद्र देवता है। 'रुद्र'का यहां 'परमात्मा' अर्थ है, जैसेकि स्वा० द० ने लिखा है—'जो दुष्ट कर्म करने वालोंको

रुलाता है, इससे उस परमेश्वरका नाम रुद्र है। (स०प्र० १, पृ० ८)।

(प्र.) रुद्र ज्येष्ठ-कनिष्ठ, पूर्वज-अपरज कैसे है? [उ.] 'माहाभाग्याद् देवतायाः' [७।४।८] इस निरुक्तके तथा 'रूपं रूपं मघवा बोभवीति' [ऋसं० ३।५३।८] इस वेदके प्रमाण से एक भी देवता ऐश्वर्ययुक्त होनेसे अनेक-प्रकारके रूपको धारण कर सकती है। रुद्र 'महिमा' ऐश्वर्यके कारण ज्येष्ठ [सबसे बड़ा] है, लघिमा एवम् अणिमा ऐश्वर्यके कारण वह कनिष्ठ है–'युवाल्पयोः कन्' [पा० ५।३।६४] इस वेदाङ्ग-सूत्रसे अल्प अर्थमें कन् होता है। अर्थात् वह सबसे सूक्ष्म होने से 'कनिष्ठ' है। क्योंकि–'अणोरणीयान् महतो महीयान्' [श्वेता० ३।२०] तभी तो उसके लिए कहा है–'उत एषां-ज्येष्ठः, उत वा कनिष्ठः। एको ह देवो मनसि प्रविष्टः' [अथर्व० १०।८।२८] इस मन्त्रमें परमात्माको ही ज्येष्ठ-कनिष्ठ कहा है।

वस्तुतः उक्त स्थलमें रुद्र-भगवान्‌को नमस्कार किया है, छोटे-बड़े मनुष्यको नहीं। भगवान्‌में 'अणिमा-महिमा, चैव लघिमा-गरिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः।' यह आठ भग-ऐश्वर्य भग-वान्‌में स्वतः ही होते हैं। इसलिए परमात्माका 'भगवान्' नाम प्रसिद्ध है। (प्र०) भगवान् पूर्वज-अपरज कैसे है? [उ.] वह जगत्‌की आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे प्रादुर्भूत होता है। 'पूर्वं-जगदादौ हिरण्यगर्भरूपेण जायते-प्रादुर्भवतीति पूर्वजः' [जनी प्रादुर्भावे]। तभी तो वेदमें

कहा गया है–'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' [यजुः १३।४] 'एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः' [अ० १०।८।२८]।

वही भगवान् 'अपरस्मिन् काले–प्रलये कालाग्निरूपेण जायते-प्रादुर्भवतीति अपरजः' ['स कालाग्निः स चन्द्रमाः' कैवल्योप. १।८] इस प्रकार 'अपरज' है। इसी प्रमाणको स्वा. द. ने भी अपने स.प्र. [१ समु., पृ. ३] में प्रमाण-कोटि में माना है। सो पूर्वोक्त प्रकारका भगवान् रुद्र ही ज्येष्ठ-कनिष्ठ, पूर्वज-अपरजरूपमें नमस्कृत किया गया है, वैसा पुरुष नहीं। और इसमें 'नमस्ते' शब्द भी नहीं। 'नमस्कार' शब्दका प्रचार बड़ोंके लिए कीजिए; क्योंकि बड़े [रुद्र] को ही यहां नमस्कार किया गया है। रुद्र हमसे छोटे नहीं। यह अध्याय रुद्रकी विभूतिका अध्याय है। रुद्र मनुष्य नहीं।

[५] पूर्वपक्ष—'नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः' [यजु. १६।२६] यहां भी छोटे-बड़ेको नमस्ते वेदने कहा है।

उत्तरपक्ष–यह भी उसी रुद्राध्यायका मन्त्र है। सो वही साकार बड़े रूपमें महान् आकार वाला है, और निराकाररूप-में अल्प (सूक्ष्म) आकारवाला है। उसी रुद्रको नमस्कार किया गया है, सर्वसाधारण छोटे बच्चोंको नहीं। इसीलिए परमात्माको कहा जाता है–'अणोरणीयान् महतो महीयान्' (श्वेताश्व. ३।२०)। आक्षिप्त इस मन्त्रमें भी 'नमस्ते' शब्द नहीं। यदि यहां 'ज्येष्ठेभ्यः कनिष्ठेभ्यश्च 'नमस्ते' इति वक्त-व्यम्' ऐसा विधान होता; तो 'नमस्ते' वादियोंकी इष्टसिद्धि

थी; पर ऐसे मन्त्र-रूपमें तो नहीं है।

इस प्रकार 'नमो ह्रस्वाय च वामनाय च' (यजुः १६। ३०) इत्यादि सभी मन्त्रोंमें रुद्र देवता है। यजुर्वेदका १६ वां अध्याय रुद्रका विभूति-अध्याय है। '[परमेश्वर] सब जगत् को बनानेसे ब्रह्मा, सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु, दुष्टोंको दण्ड देकर रुलानेसे रुद्र' (स.प्र. १ स.पृ.३) यहां स्वा.द.ने 'रुद्र' का अर्थ 'परमात्मा' किया है।

तब इसमें वादियोंकी पक्षपुष्टि नहीं। स्वामीने अपने वेद-भाष्यमें छोटे बड़े सबको अभिवादनार्थं नमस्करणमें अनुपपत्ति मानकर छोटोंको अभय-दान अर्थापित किया है; पर फिर किसी पीछेके शिष्यने हिन्दी अर्थमें 'नमस्ते' शब्द भी डाल दिया है; पर जब मन्त्रमें ही 'नमस्ते' नहीं; तब उसमें 'नमस्ते' शब्द घुसेड़ देना यह वेद-विरुद्ध महान् दुस्साहस है।

(प्र०) यदि १६ वें अध्यायमें यह रुद्रके विशेषण हैं; तो 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो' (१६।२५) यह बहुवचन कैसे है? (उ०) यहां 'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (यजुः १६।५४) के कारण बहुत रुद्र देवता हैं। (प्र०) एक रुद्र बहुत कैसे होगा?। (उ०) 'माहाभाग्याद् देवतायाः' (निरुक्त ७।४।८) इस प्रकार वह कई रूप बना लेता है, अतः बहुत भी है। बहुतहोनेपर वहां 'नमो वः' आया है; 'नमस्ते' नहीं, यह भी 'नमस्ते' वादियोंको याद रख लेना चाहिये। अथवा इस रुद्राध्यायमें रुद्रके गणोंका भी वर्णन है, तभी 'गणेभ्यो-गणपतिभ्यश्च वः' कहा गया है। वे बहुत प्रकार

के थे, कई छोटे, कई बड़े, कई मध्यम, कई जघन्य (छोटे कद के) कई किरातरूपधारी रुद्रके गण चोररूप 'कई श्व(कुत्ता) रूप, कई वामन, कई सभापति, कई स्वापशील (सोने वाले), कई जागरूक (कभी न सोने वाले), कई तक्षा (बढ़ई) रूप, कई रथकाररूप इस प्रकार विचित्ररूपधारी होते हैं; उन्हींका वर्णन यजुर्वेदके १६ वें अध्यायमें है, यह श्रीमहीधराचार्य आदिने आपने भाष्यमें स्पष्ट किया है। इसलिए उनकेलिए कहा गया है—'विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः' (१६।२५) तब वह रुद्रके गणोंको नमस्कार किया गया है, न कि छोटे-बड़े मनुष्यों को एक-दूसरे से। यद्यपि यह प्रश्न पहले आ चुका है; तथापि इस मन्त्रपर वादियोंका अधिक बल रहता है; अतः हमने भी इसे पुनः स्पष्ट किया है।

(६) पूर्वपक्ष— 'पत्नि-पत्नि! एष ते लोको नमस्ते अस्तु मा मा हिँसीः' (मैत्रायणी सं० १।४।३।२८) यहां पतिका पत्नीको नमस्ते करना वैदिक सिद्ध होता है। (श्रीधर्मदेव-सिद्धान्तालङ्कार)।

उत्तरपक्ष— यहां देव-पत्नीको नमस्कार किया गया है, पतिका अपनी पत्नीको नमस्कार नहीं है। इसलिए उसके आगे-'या सरस्वती वेशयमनी तस्यै स्वाहा' कहा गया है। यहां देव पत्नी सरस्वतीका वर्णन है। मनुष्योंकेलिए अग्निमें स्वाहा नहीं आता, किन्तु देवताओंके लिए आता है। अतः यहां अपनी पत्नीका वर्णन नहीं। इसीलिए—इस स्थलके लिए आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रमें भी कहा है—'देवानां पत्नीरुपमाह्वयध्वं पत्नि!

पत्नि ! एष ते लोको नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीरिति देवपत्नी-रुपतिष्ठते' (३।५।७) यहां पर श्रीरुद्रदत्तने लिखा है—'अपरेण गार्हपत्यं देवपत्नीनां लोकस्तत्र ता उपतिष्ठते' इति । इस प्रकार देवपत्नीके नमस्कारके ही विवक्षित होने से वादीको इष्ट-सिद्धि नहीं । यह वहां 'यजमान-ब्राह्मण' है; अतः यह यज्ञका वर्णन हुआ । इसलिए शतपथके पत्नीसंयाज-ब्राह्मणमें भी यद्यपि केवल 'पत्नी' शब्द है; तथापि वहां भी देवपत्नी-परक ही है । इसलिए वहां श्रीसायणने भी लिखा है—'पत्नीसंयाजब्राह्मण-मेतत् । 'ते-अध्वर्य्वादयः, पत्नीः-देवानां, संयाजयिष्यन्तः-देवैः सह सङ्गता याजयिष्यन्तः' (शत० १।६।२।१) । इसलिए शतपथके मूलमें भी कहा है—'अथ देवानां पत्नीर्यजति' (१।६।२।११) । इस प्रकार मानव-श्रौतसूत्र (१।२।५।१०) में 'पत्नी' शब्द से 'देव-पत्नी' गृहीत की गई है । इस प्रकार तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें भी 'पत्नीभिः' का श्रीसायणने 'देवपत्नी-मन्त्रैः' (२।३।१०) यह अर्थ किया है; इस प्रकार अन्यत्र भी प्रतिपक्षीकी बात गलत सिद्ध हुई ।

(७) पूर्वपक्ष—'रामकी सीताको नमस्ते'—श्रीरामचन्द्र जीने महायशस्विनी सती सीताको नमस्ते कहा, देखिये 'उत्तर राम चरित' (१।७८) ('नमस्ते की प्राचीनता' में श्रीशेरसिंह पृ० २६)

उत्तरपक्ष—वादीकी यह बात सर्वथा गलत है । इससे वह पतिकी पत्नीको नमस्कार सिद्ध करना चाहता है । तृतीयाङ्क में 'भगवति गोदावरि ! नमस्ते' यह नदीको नमस्कार है, सीताको नहीं । जो कि— 'देवि सीते नमस्तेस्तु' (७।१०) यहां सीताको नमस्कार आया है— यह रामद्वारा नहीं है, किन्तु जृम्भक-अस्त्रों ने उसे नमस्कार किया है इससे वादीका पक्ष कट गया । वे कितना असत्य व्यवहार करते हैं ।

(८) पूर्वपक्ष—रामकी लक्ष्मणको नमस्ते—'रघुकुलदेवते नमस्ते' । (श्रीशेरसिंह 'नमस्तेकी प्राचीनता' पृ० २७ में) ।

उत्तर—वादीका यह कितना असत्य व्यवहार है ! इससे वह बड़े भाईका छोटे भाईको नमस्कार सिद्ध कर रहा है यहां पर तो भागीरथी-नदीको उक्त शब्द कहे गये हैं । देवता होनेसे वहां 'ते' शब्द भी आ सकता है । तभी वहीं 'तुरगविचय-व्यग्रान्' (१।८३) यह पद्य गङ्गाके लिए आया है । तभी वहां आगे लिखा है—'सा त्वमम्ब ! ' तब क्या अम्बा (माता) यह लक्ष्मण वा सीता को कहा गया है ? इन्हीं धूर्तताओंसे उन्होंने संस्कृतानभिज्ञ जनता में 'नमस्ते' का व्यवहार चला दिया है ।

(९) पूर्वपक्ष—जनकको याज्ञवल्क्यकी नमस्ते । 'स होवाच-जनको वैदेहो नमस्ते याज्ञवल्क्य ।' (शत. १४।६।११।६) (श्रीशेरसिंह)

उत्तरपक्ष—इससे प्रतीत होता है कि—शेरसिंहजी-आर्य-समाजी संस्कृतसे कोरे हैं । इससे वे सिद्धकर रहे हैं कि—एक ब्राह्मण-ऋषि क्षत्रियको नमस्कार कर रहा है । यहां तो क्षत्रिय जनक ही ब्राह्मण—याज्ञवल्क्यको 'नमस्कार' कह रहा है । इन्हीं असत्य व्यवहारोंकी रेतीली दीवारोंपर 'नमस्ते'

ठहरा हुआ है। यह तब तक है, जब तक जनता संस्कृतमें शिक्षित नहीं होती।

(१०) पूर्वपक्ष—'नमस्ते याज्ञवल्क्य' यहां सर्पकी याज्ञवल्क्यको नमस्ते' है। (पृ. २७)

उत्तर—यहां जनकके लिये 'कूर्चादुपावसर्पन्' शब्द आया है, उसीको पूर्वपक्षीने सर्प समझ लिया। बलिहारी है संस्कृतज्ञता की। जनक यदि श्रीयाज्ञवल्क्यको नमस्कार करते हैं; तो हमारे पक्षकी हानि नहीं।

(११) पूर्वपक्ष—ऋषिकी राजाको नमस्ते—'स हैनं पप्रच्छ याज्ञवल्क्य ! ब्रह्मिष्ठोसीति। स होवाच नमो ब्रह्मिष्ठाय कुर्मः।' (शतपथ १४।६।४) विदेह जनकका होता अश्वल जनकको पूछता है कि राजन् ! क्या ब्रह्मिष्ठ है, हम सबको नमः करते हैं' (श्रीशेरसिंह पृ० २४)।

उत्तरपक्ष—यह पूर्वपक्षीकी संस्कृतज्ञता है। यहां तो याज्ञवल्क्यको कहा गया है कि—तुम हममें ब्रह्मिष्ठ (ब्रह्मज्ञानी) हो। याज्ञवल्क्यने अपनी निरभिमानितासे कह दिया कि—हम ब्रह्मिष्ठ क्या हैं, हम ब्रह्मिष्ठको नमस्कार करते हैं। यहां वादीका पक्ष गलत सिद्ध हुआ है। यहां याज्ञवल्क्य-ऋषिने राजा जनकको नमस्कार कहां की है, और 'नमस्ते' शब्द ही यहां कहां है !। वस्तुतः इस असत्यकी रेतीली दीवारपर 'नमस्ते' टिका हुआ है। यह तब तक टिकेगा, जब तक जनता संस्कृतमें शिक्षित नहीं होती। यहां ब्रह्मज्ञानीको नमस्कार

किया गया है—राजाको नहीं। हमारी इसमें पक्ष-हानि कुछ भी नहीं।

(१२) पूर्व—पुत्र और शिष्यको नमस्ते।—'नमस्ते भगवन्—इति होवाच' (कठोपनिषत्) 'नमस्ते' ब्रह्मन् ! स्वस्ति मेऽस्तु, (कठोप. १।९) इन दोनों वाक्योंमें महर्षि—यमने उद्दालकके पुत्र और अपने भावी शिष्य नचिकेताको नमस्ते किया है। (श्रीशेरसिंह पृ. २४)

उत्तर—यह भी गलत है। वस्तुतः यम क्षत्रिय थे, और नचिकेता ब्राह्मण अतिथि। सो बड़े वर्णको नमस्कार करनेमें हमारे पक्षकी क्षति नहीं। इस विषयमें विस्तीर्ण उत्तर गत-निबन्धोंमें देखें।

(१३) पूर्व—स्त्रीको नमस्ते।—'इमां तु सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम् (वाल्मी.अरण्य. २।११७।१३) यहां अत्रि-ऋषिने अपनी स्त्रीको रामके प्रति सम्पूर्ण जीवोंमें नमस्कार-योग्य बताया है'। क्या अत्रि ऋषि सर्वभूतोंसे भिन्न हैं ? यदि नहीं, तब स्त्रीको ऋषिने नमस्ते करना स्वीकार किया या नहीं ? [श्रीशेरसिंह नमस्ते की प्राचीनतामें पृ. २६)

उत्तर—बलिहारी है श्रीशेरसिंहजी की !। कैसी तर्क-वाचस्पतिता है ! ऐसे अवसर पर पति अपनेसे भिन्न अन्य पुरुषोंको लेता है। यदि ऋषि पत्नीके लिए कह दे कि—'इयं सर्वभूतानां मातेव' तो क्या उस ऋषिकी पत्नी भी ऋषिकी माता हो जावेगी ? ऐसा कभी नहीं होता। यदि शेरसिंह लैक्चर करते हुए कहें—'मान्य सज्जनो, माताओ, बहिनो !'

तब जनता में बैठी हुई शेरसिंहजीकी स्त्री भी क्या उनकी माता वा बहिन मानी जावेगी ? 'भगवती सीता सब प्राणियों-की माता है, इस वाक्यके अनुसार सीता श्रीरामकी भी माता होजावेगी ? धन्य ! वस्तुतः ऐसे अवसरों पर पति-व्यतिरिक्तता ली जाती है । और फिर उक्त पद्यमें 'नमस्ते' है ही कहां ? ऐसे असत्य-व्यवहारोंपर नमस्ते प्रतिष्ठित है ।

पूर्व—स्त्रीकी पतिको नमस्ते—'सा होवाच नमस्ते याज्ञ-वल्क्य ! [शत. १४।६।५।६] श्रीमती गार्गी-देवी कहती है कि–हे याज्ञवल्क्य ! 'नमस्ते' [शेरसिंह, पृ. २४]

उत्तर—कितना गलत व्यवहार है । याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियां थी–मैत्रेयी और कात्यायनी । यहां शेरसिंहजीने याज्ञ-वल्क्यकी तीसरी स्त्री गार्गी बना दी । धन्य हो ! गार्गी तो कुमारी थी । उसने याज्ञवल्क्यसे कई प्रश्न किए । उसके उत्तर पाकर उसे नमस्कार करती है । इससे हमारे पक्षकी कुछ भी हानि नहीं । 'ते'का उत्तर गत निबन्धोंमें दिया जा चुका है । 'आलोक' पाठक देख रहे हैं कि–यह लोग कैसे गलत व्यवहार करके अपने अशुद्ध पक्षको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करते हैं ।

(१५) पूर्व–'क्या किसी ऋषि ने अपनी स्त्रीको नमस्तेकी है–इसके उत्तरमें आर्य समाजके उपदेशक श्री लोकनाथजीने अलीपुरमें कहा था कि—मालविकाऽग्निमित्र-नाटकमें पति अग्निमित्रने पत्नी मालविकाको नमस्ते किया है ।

उत्तर—क्या वादी नाटकोंको भी प्रमाण मानने लग गये हैं, अग्निमित्र क्या कोई ऋषि था ? वस्तुतः वादी का यह कथन भी बिल्कुल गलत है । उसमें तो मालविकाने अपने भावी-पति अग्निमित्रके चित्रको नमस्कार की है; तब क्या आर्यसमाजी इसे मानकर मूर्तिपूजा सिद्धान्तको मान लेंगे ?

(१०) वेदमें अन्त्यजोंको नमस्ते।

पूर्वपक्ष—वेद ऐसा आदर्श ग्रन्थ है कि–जिसके रुद्राध्याय (यजुः १६।२७) में बढ़ई, सईस, कुम्हार, लोहार, कसाई, चाण्डाल, कुत्तों, और मृगोंको पालनेवाले जंगली भी सबके सब उस रुद्र-भगवान् का रूप माने गये हैं । हमें उन सबको रुद्ररूप मानते हुए, उभयतः (आगे भी और पीछे भी) 'नमस्ते' करना चाहिए ? । (भारतीय-धर्मशास्त्र पृ० २६)

उत्तर–इनमें 'नमस्ते' शब्द कहीं भी नहीं । तब वादियोंका ऐसा अनृत-व्यवहार क्यों ? यदि इस सूक्तमें वादी नमस्कार-योग्य व्यक्तियोंका वर्णन मानें, तो उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों का नाम नहीं ; तो क्या यह रुद्ररूप नहीं ? । वेद उन चार वर्णोंको एक ओरसे भी नमस्कार नहीं करना चाहता–; और अवर्ण–अन्त्यजोंको दोनों ओरसे नमस्कारका आर्डर देता है; यह क्या बात ?

वस्तुतः यह १६वाँ अध्याय रुद्रदेवता का है, यह हम गत-निबन्धोंमें कह चुके हैं ; तब वहां रुद्रको नमस्कार है, बढ़ई आदियोंको नहीं । यहां यह रहस्य है कि–महादेवने किरातका रूप भी धारण किया था–यह महाभारत तथा 'किरातार्जुनीय'में

तथा 'अन्त्यज' का रूप धारण किया था'—यह 'शङ्करदिग्विजय' में स्पष्ट है। इससे सिद्ध है कि—रुद्रके किरातादि-घोर-रूप भी हैं, जिन्हें वह समयपर धारण करता है। सरस्वतीके पीछे दौड़ रहे हुए ब्रह्माके मृगरूपके वधार्थ महादेवने किरातरूप भी धारण किया था, जिसका संकेत 'मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्'—(१।५) इस शाकुन्तलके पद्यमें महाकवि-कालिदासने किया है। अर्जुन-द्वारा वराहके शिकारमें भी रुद्रका किरातरूप प्रसिद्ध है। पुराणोंमें भी 'मृगव्याधाय' (वायुपुराण २४।१३६) मृगेन्द्रकृत्तिकावसनं (३०।१३२) इत्यादि-शिवस्तवों में स्पष्ट है। दक्षयज्ञकी मृगरूपतामें वध भी रुद्र-द्वारा किरातरूपमें प्रसिद्ध है। मृगके अनुसरण करनेसे ही रुद्रको वेदमें 'मृगयु' कहा जाता है। मृगया (शिकार) के लिए किरात-रूपधारी उसका कुत्तोंका रखना भी अनिवार्य हो जाता है, तभी उसे वेदमें 'श्वनी' कहा जाता है; उसके गण भी उसके सहचारी होनेसे उसके समान-जातीय होते हैं। इस अवसरको स्मरण करानेके लिए ही रुद्राध्यायमें 'निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः, श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः, (यजुः (१६।२७) इत्यादि मन्त्रोंमें रुद्रके ऐसे ही रूपोंको नमस्कार किया गया है।

तब रुद्रके किरातरूपके साथी गण भी किरात-चाण्डालादि वा तत्समानधर्मा निषाद, पुञ्जिष्ठ, श्वनी, मृगयु, तस्कर, जिघांसु (वधिक) आदि होते हैं। सो उक्त निषादादि-रूपधारी रुद्रके गणोंको ही रुद्राध्यायके कई मन्त्रोंमें नमस्कार

किया गया है; अथवा तद्रूपधारी रुद्रको ही वेदमें आदरार्थ बहुवचन देकर नमस्कार किया गया है। तब वह नमस्कार वर्तमान-निषादादिको सिद्ध नहीं होता; किन्तु वैसे रुद्र वा रुद्रके गणोंको ही वह नमस्कार आया है। यहां 'नमस्ते' भी नहीं, किन्तु 'नमो वः' है।

इसे इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि—महादेव यदि अन्त्यजरूपमें श्रीशङ्कराचार्यके पास आवें, जैसेकि 'शङ्कर-दिग्विजय'में कहा है—'सोऽन्त्यजं पथि निरीक्ष्य चतुर्भिर्भीषणैः श्वभिरनुद्रुतमारात्' (६।२५) पहले तो वे उसे न छुएं, पीछे वे उसे महादेव जानकर उसे नमस्कार कर दें (६।४०), इस प्रकार अर्जुनके पास शङ्कर किरात-रूप धरकर आजावें, पहले तो अर्जुन उनसे युद्ध करे, फिर उसे शङ्कर जानकर वह उन्हें प्रणाम करे (महाभारत ३।३९।६७), सो वह नमस्कार शिवजीको ही मानना पड़ेगा, इससे आधुनिक संसारके किरात-अन्त्यज आदिको प्रणाम सिद्धान्तित नहीं हो जाता।

यदि कोई मत्स्य, कच्छप एवं वराहरूपधारी विष्णु-भगवान्को 'नमो मत्स्यकूर्मादि-नानास्वरूपैः सदा भक्त-कार्योद्यतायार्तिहन्त्रे' (कार्तिकमाहात्म्य ७।७७) इस प्रकार नमस्कार कहता है, सो इससे संसारके आजकलके मच्छ, कच्छ, एवं सुवर प्रणामयोग्य नहीं हो जाते। यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रियरूपधारी परमात्माके अवतार श्रीराम-कृष्णको नमस्कार करता है; इससे ब्राह्मणसे अपनेसे अवर-वर्ण वर्तमान-क्षत्रियादि नमस्करणीय नहीं हो जाते; इस प्रकार यहां भी समझ लेना

चाहिए कि—इस रूपको धारण करने वाले रुद्रों वा रुद्रगणोंको नमस्कार है, आधुनिक-निषादादिको नहीं।

अव्यपवृक्त-रूप (अभिन्नता)में तो ब्रह्माण्डगर्भ-परमात्माको प्रणाम होता ही है; पर जब वे व्यपवृक्तरूप (भिन्न) होते हैं, तब वहां उत्तम-मध्यमाऽधमता, तथा व्यवहार्याऽव्यवहार्यता भी हो ही जाती है। रुद्रकी विभूति तो सारा जगत् है। जगत्में कीचड़ भी है, पुरीष भी है, शाक भी होता है; तब क्या वादियों का उनमें समान-व्यवहार हो जाता है? वे क्या पुरीषका भी शाककी भांति व्यवहार करते हैं? वस्तुतः यहां धर्मशास्त्रोंकी व्यवस्था ही माननी पड़ती है। क्योंकि-लोक-व्यवहारकी व्यवस्था धर्मशास्त्रके अधीन हुआ करती है, और वेदमें यज्ञकी प्रधानता ही मानी जाती है। इस विषयमें ४।१।६२ सूत्रके न्यायदर्शन में वात्स्यायन भाष्य देख लेना चाहिए।

उसी रुद्राध्याय (१६।२१) में चोरोंके स्वामियोंको भी नमस्कार की गई है; तब आक्षेप्ता लोग चोरों वा ठगों वा गिरहकटोंको नमस्कार क्यों नहीं करते हैं? उन्हें दण्ड क्यों दिलवाते हैं? क्यों वे उन्हें अपना धन नहीं चुराने देते? वहीं जिघांसुओं (१६।२१) को भी नमस्कार की गई है; तब वादी वैसे मुसलमानोंको नमस्कार क्यों नहीं करते? वहां कुत्तोंको भी नमस्कार की गई है; तब आक्षेप्ता कुत्तोंको नमस्ते क्यों नहीं करते?। क्यों उनको अंग्रेजोंकी भांति अपनी शय्यामें नहीं सुलाते। उन्हें मारनेवाले म्युनिसिपलिटीके सदस्योंको क्यों नहीं डांटते? वहीं व्याधों (निशानेबाज), आततायी (१६।१८)

स्तेनों (चोरों) के पति (१६।२०) स्तायुओं (गिरहकटों) के पति, मोषण करनेवालोंके पति (१६।२१) अभिघाती (१६।४६) तथा वेधकर रहे हुओं (१६।२३) को भी नमः कही गई है; वादी इन्हें नमस्ते क्यों नहीं करते? क्यों इन्हें पकड़वाते हैं? वा जेलखाने में ही उन्हें नमस्ते करने क्यों नहीं जाते?। अतः वह वादियोंका पूर्वपक्ष व्यर्थ है।

यदि वादियोंको वेदका आदेश माननीय है, तो कसाई तथा चाण्डाल आदिको भी नमस्कार करें। तब जो वे रुद्ररूप कसाई पशुओंको मारा करते हैं, वादी उनसे घृणा क्यों करते हैं? उनसे भोजन तथा योनि-सम्बन्ध क्यों नहीं करना चाहते? यदि चाण्डाल रुद्ररूप हैं; तो अस्नात भी उन्हें वादी क्या छूते हैं? उन्हें मलकी टोकड़ी उठवाने में सहायता देते हैं? वादियोंकी उन्हें स्नान करके सभाओंमें आनेकी प्रेरणा स्पष्ट करती है कि वे उन्हें रुद्ररूप नहीं मानते।

सनातनधर्मी इसमें जो अभिप्राय रखते हैं, वह दिखला ही दिया गया है, अर्थात्—महादेवके किरातरूपमें उसके गण भी वैसे निषादादि होते हैं, उनका संकेत यजुर्वेद वा. सं. (१६।२८) में बहुवचनान्तरूप नामों की समाप्तिमें जहां उभयतो नमस्कार है—श्री महीधराचार्यने भी अपने भाष्यमें दिखलाया है—। श्वपतयः—किरातवेषस्था रुद्रस्य अनुचराः। इसप्रकार 'नमः श्वभ्यः' [१६।२८] इस मन्त्रमें कुत्तोंको नमस्कार कहा है; पर कुत्तोंको नमस्ते कोई नहीं कहता। तब यहां उनका ग्रहण क्यों? यहां यह रहस्य है कि—किरातरूप रुद्रके सहचारी कुत्तों

को यहां नमस्कार है, यहांके कुत्तोंको नहीं। रुद्रके कुत्ते भी हुआ करते हैं, जिनका 'रुद्रस्य ऐलवकारेभ्यः [प्रमथेभ्यः] महास्येभ्यः श्वभ्योऽकरं नमः' [११।२।३०] इस अथर्ववेदसं० के मन्त्रमें संकेत करके उन्हें नमस्कार कहा गया है। सो यह यहांके कुत्ते विवक्षित नहीं, न यहां के निषादादि ही विवक्षित हैं। इस मन्त्रमें श्रीसायणाचार्यने भी लिखा है :—'मृगयाविहारार्थं किरातरूपधारिणो [रुद्र——] देवस्य सम्बन्धिभ्यः श्वभ्यः—— सारमेयेभ्य इदं नमः अकरम्——करोमि'।

रुद्राष्टाध्यायी के शान्त्यध्याय [१०।८] में तथा कृ०य० तैत्तिरीयारण्यक [१०।४५] में 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः। सर्वतः शर्व ! सर्वेभ्यो नमस्ते [तव] अस्तु रुद्ररूपेभ्यः' यहां शर्व [महादेव] के घोर-घोरतर रुद्ररूप भी संकेतित किये गये हैं। वे ही यजुर्वेदके रुद्राध्याय में किरातरूप रुद्रके दिखलाए हैं। तब यजुर्वेद सं० के १६वें अध्यायमें महादेव के गण तथा तद्रूप-रुद्रोंको ही नमस्कार किया गया है। जिस में जिसकी पूर्ण श्रद्धा हो, वह उनके सभी रूपों तथा उसके सम्बन्धियोंको भी नमस्कार करता है; उसके कुत्तेका भी सत्कार करता है। इससे दूसरोंके कुत्तों का सत्कार नहीं मान लिया जाता। इसप्रकार वेदमें भी जान लेना चाहिए। वेदमें रुद्रके सर्वविध-रूपोंको, तथा उसके गणोंको नमस्कार किया गया है; इससे आधुनिक चाण्डाल-वधिक आदियों को नमस्कार इष्ट न होनेसे वादीका पक्ष असिद्ध ही सिद्ध हुआ।

अथवा यहां अन्य रहस्य भी हो सकता है, वह यह कि—

उन मन्त्रोंमें जो श्वान तथा चाण्डाल कहे गये हैं, उनको 'नमः' अर्थात् 'अन्न' दिया जाता है। वेदमें निघण्टु [२।७] के अनुसार [नमः] यह अन्नका नाम भी आता है। वैश्वदेवबलि में—'शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। [अन्नं—] शनकैर्निर्वपेद् भुवि' [३।९२] इस प्रकार मनुजीके अनुसार अन्न रखा जाता है। वही यहां इष्ट है। वेदमें वैश्वदेव-सूक्तोंमें अग्निका भी वर्णन आता है; और अग्निको रुद्ररूप भी माना जाता है! जैसे कि—'त्वमग्ने! रुद्रः' [सं० २।१।६२] तब यह अन्न वैश्वदेव-बलिसे सम्बद्ध चाण्डालोंको दिया जाता है, उन्हें नमस्कार नहीं किया जाता। यदि वह कुत्ता, चाण्डालादि उस बलिके समय प्राप्त हो जावें; तब उन्हें वह अन्न दे दिया जाता है। यदि उस समय वे न आवें; तो वह अन्न-भाग अग्निमें डाल दिया जाता है; यह बात स्वा. द. जी की 'संस्कार-विधि' [पृ. २१३] में भी स्पष्ट है। उसमें कारण यह है कि—'तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये' [अथर्व. ७।९२।१] यहां अग्निको रुद्ररूप बताया गया है। फलतः वेदमें वादिसम्मत-अन्त्यजोंको नमस्कार सिद्ध न हुआ। बल्कि शतपथानुसार अयज्ञिय अत्रैवर्णिक-लोगोंको नमस्कारका निषेध किया गया है। यह हम स्वा.रामे. जीके मत की समीक्षामें कह चुके हैं। फलतः वेद में शूद्र-अन्त्यजों को नमस्ते कहीं भी अनुशिष्ट नहीं; यह सिद्ध हो चुका—शेष 'नमस्ते' विषयक विचार आगे देखिए।

आर्यसमाजने 'नमस्ते'का प्रचार करके, हठवादको अपनाया है, यह बात अग्रिम निबन्धमें बताई जाएगी।

(११) नमस्ते अथवा हठवाद ।

(१) आर्यसमाजियोंसे पूछा जाता है कि-आप लोगों ने नमः १, नमोस्तु २, नमो वः ३, नमामि ४, नमस्यामि ५, वन्दे ६, अभिवादये ७, नमस्कारः ८, इन पदोंको छोड़कर नमस्कारार्थ केवल 'नमस्ते'को क्यों स्वीकृत किया ? इसपर वे कहते हैं—उक्तशब्द अवैदिक हैं, और 'नमस्ते' वेदोक्त-वाक्य हैं' । जब उनके इस उत्तरको परीक्षारूप-कसौटीमें घिसा जाता है, तब स्पष्ट मालूम पड़ता है कि-इन्होंने कदाचित् वेदोंके दर्शन ही नहीं किये । 'आलोक'-पाठक इन शब्दोंको वेदमें देखें ।–

(क) वेदमें 'नमः' शब्द बहुत स्थलोंमें आया है; कुछ उद्धरण देखियेः– 'नम उष्णीषिणे' [यजुः१६।२२] 'नमो गणेभ्यः' [१६।२५] 'नमः कपर्दिने' [१६।२९] 'नम आशवे' [१६।३१] 'नमः शम्भवाय' [१६।४१] 'ब्राह्मणेभ्य इदं नमः' [अथर्व ६।१३।३] 'नमस्तस्मै, नमो दात्रे......नमोऽग्नये, प्रचरते पुरुषाय च ते(तव) नमः हे शाले !' [अथर्व ९।३।१२] इत्यादि । इस प्रकार जब 'नमः' शब्द भी वैदिक सिद्ध हुआ और इसमें 'नमस्ते'वाले दोष भी नहीं हैं—– जो सम्भवतः आगे कहे जाएंगे–तो 'नमः' पद छोड़कर 'नमस्ते' का ही प्रचार करना-हठ है या नहीं-इसका निर्णय पाठकोंपर छोड़ा जाता है ।

(ख) अब 'नमोस्तु' देखिये—– 'नमोस्तु नीलग्रीवाय' [यजुः १६।८] 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यः' [१६।६४-६५-६६] नमोस्तु सर्पेभ्यः' [१३।६] इत्यादि वेदमन्त्रोंमें 'नमोस्तु' भी

मिलता है, और इसमें भी 'नमस्ते' वाले दोष नहीं;तब 'नमस्ते' को ही पकड़ रखना यदि हठवाद नहीं, तो और क्या है ?

(ग) अब 'नमो वः' देखिये—– 'नमो वः पितरो रसाय, नमो वः पितरः शोषाय, नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो-वः पितरो घोराय, नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरः, पितरो नमो वः' (२।३२) यजुर्वेदसं. के इस मन्त्रमें वेदने 'पितृ' शब्दको आदरार्थ बहुवचन दिया है, जैसे कि 'पितरो वसवः साध्याः' [वाल्मी. ६।१०६।९] इस पद्य में 'पितरः' के लिए रामाभिरामने लिखा है–'बहुत्वं पूजार्थम्' । उन्हीं बहुवचनात्मक पिताके लिए 'नमस्ते' यह एकवचनात्मक प्रयोग न लिखकर 'नमो वः' यह बहुवचनात्मक प्रयोग वेदने दिया है । अब विज्ञ पाठक स्वयं विचारें कि-आर्यसमाज जबकि एकवचन-बहुवचन सर्वत्र 'नमस्ते' यह एकवचनात्मक प्रयोग करता है; तब यह उसका वेद-विरुद्ध दुराग्रह है या नहीं ?। इस प्रकारके मन्त्र अथर्ववेदसं० में भी मिलते हैं । जैसे कि– 'नमो वः पितरः, स्वधा वः पितरः' [१८।४।८१-८२-८३-८४-८५] जब कि वेदने पिताके लिए बहुवचन प्रयुक्त किया और उसके लिए 'नमस्ते' न कहकर 'नमो वः, कहा है; इससे 'नमस्ते' की अनिवार्यता, तथा बहुवचनमें उसका प्रयोग खण्डित हो जाता है ।

(घ) 'नमामसि' [अथर्व. ३।८।५, ६।९४।७] इस अथर्व-के मन्त्रसे 'नमामि, नमामः, यह प्रयोग भी वेदाभीष्ट है, फिर

आर्यसमाज इसका प्रयोग क्यों नहीं करता ? 'नमस्ते' में ही क्यों आग्रह करता है ? (ङ) वेदमें नमस्यन्तः, (ऋ० ११।१२ २) शब्द भी आता है। इसमें 'नमस्यामि' भी वैदिक सिद्ध होता है। तब आर्यसमाज इसका प्रयोग क्यों नहीं करता ?। (च) 'वन्दे' (यजुः १२।४२, ऋ. सं. ११।४७।२) यहां पर 'वन्दे' का प्रयोग स्पष्ट है। (छ) 'यदभिवदति' (अथर्व.- ६।६।४) यहां पर अभिवादन-शब्द स्पष्ट है। (ज) 'नमस्कारेण' (अथर्व. ४।३९।९) 'यत्राऽकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि' (ऋ० १।२५।१) 'नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्याम् (अ०- ७(१०२(१०७)।१) इससे 'नमस्कार' शब्द भी वैदिक सिद्ध होता है। तब आर्यसमाजने इस शब्दको क्यों नहीं लिया ? केवल 'नमस्ते' शब्द क्यों लिया ? क्या यह हठवाद नहीं ?।

जोकि आर्यसमाजी श्री शेरसिंहने 'नमस्तेकी प्राचीनता' के ६३ पृष्ठमें 'नमस्कार' शब्दके विषयमें लिखा है कि-'यह शब्द यद्यपि 'नमः' से बना है, तथापि कर्तामें प्रत्यप है, जिसका अर्थ है-नमस्करोतीति नमस्कारः' जो 'नमः' करता है, उसको 'नमस्कार' कहते हैं, यथा-'कुम्भं करोतीति कुम्भकारः'। अतः 'नमस्कार' कहनेसे मिलने वालेसे कोई सम्बन्ध ही नहीं बनता। इसलिए पाणिनिजीने 'तुभ्यं' से मिला कर ही 'नमस्ते' करनेकी आज्ञा दी है'। यह है आर्यसमाजीजी का व्याकरण-ज्ञान !!! भावार्थक घञ्-प्रत्ययवाले 'नमस्करणं नमस्कारः' इस अर्थ वाले नमस्कार-शब्दमें यह महाशय कर्त्तामें प्रत्यय मानते हैं ? वेदका भी खण्डन करते हैं, पहले हम मन्त्र

दे चुके हैं। अथवा 'उच्चैस्तरां वा वषट्कारः' (पा० १।२।३५) इस ज्ञापकसे 'तथा सर्वे चकाराः प्रत्याख्यायन्ते' इस महाभाष्यकारके ज्ञापकसे 'ओङ्कार' की तरह 'वर्णात्कारः' वाला (कार) प्रत्यय समुदायको भी हो जाता है। स्वा.द.ने. भी अपने 'आख्यातिक' में 'वर्णात्कारः' की व्याख्यामें ३८५ पृष्ठमें लिखा है— 'कहीं वर्ण-समुदायसे भी [कार प्रत्यय] होता है-'एवकारः'। स्वा. द. जीने ऋ.भाभूके चतुर्थ पृष्ठमें संस्कृत में 'तस्मै ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय ब्रह्मणे अत्यन्तं नमोस्तु नः' ५म पृष्ठ में लिखा है—'उसको अत्यन्त प्रेमसे हमारा नमस्कार हो; उस आनन्दघनको हमारा नमस्कार प्राप्त हो' स्वामीने अपनी वैदिक सन्ध्याके अन्तमें 'नमः शम्भवाय' को 'नमस्कार-मन्त्र माना है ; इत्यादि बहुत स्थलोंमें 'नमस्कार' शब्द प्रयुक्त किया है, 'उसको नमस्ते' हो—यह नहीं लिखा। इससे यह भी स्पष्ट है कि-आजके आर्यसमाजियों की भांति स्वामीका 'नमस्ते' शब्दमें पक्षपात नहीं था। श्री पं. भीमसेन जी शर्मा जो स्वा. द.जीके साथ रहा करते थे—'स्वा. दयानन्द-सरस्वतीजीके साथ हमारा निवास' लेखमें ब्राह्मण-सर्वस्व के १।७ अङ्क (संवत् १९५९ पृ० २७४) में लिखा था—'स्वा. द. स्थापित फर्रुखाबादकी पाठशालामें आये हुए स्वा. द.जीको सामान्यतया दूरसे प्रणामादि कर लिया करते थे, तब 'नमस्ते'का नामनिशान भी नहीं था'।

अब आग्रही-आर्यसमाजसे प्रष्टव्य है कि—जबकि वेदमें पूर्व-कथनानुसार नमः, नमस्कार आदि प्रयोग हैं, तब इनके

प्रयोगमें आप वैदिकता क्यों नहीं मानते ? और 'नमस्ते'से भिन्न लिखना अवैदिक होता; तो वेद इन शब्दोंको क्यों प्रयुक्त करता ? तब स्पष्ट है कि–वेदका 'नमस्ते'में पक्षपात नहीं। वेदमें वा किसी स्मृति वा पुराणेतिहासके वचनमें कहीं 'नमस्ते' शब्दके लिए लिखा हुआ विधि-वचन आर्यसमाजी नहीं दिखा सकते कि—नमस्कार आदिका प्रयोग छोड़कर 'नमस्ते' का ही प्रयोग करना चाहिए ? तब 'नमस्ते' पर ही बल देते हुए आर्यसमाज का यह हठवाद सिद्ध हुआ।

(२) 'नमो वः'के विषयमें कई कहते हैं कि–'नमो वः' बहुवचन में होता है, हम एकमें बहुवचन कैसे दें ? जैसेकि श्रीशेरसिंहने 'नमस्ते'की प्राचीनता'के ४४ पृष्ठमें लिखा है–'वह शास्त्रकार कभी एकके लिए बहुवचन लिख-लिखाकर झूठी बड़ाई नहीं चाहते थे'। अथवा कइयोंका विचार है कि–'एकमें बहुवचन देना वेदके विरुद्ध है'–यह भी ठीक नहीं। इस विषयमें–'सम्मानमें बहुवचन' निबन्ध देखें। पर वादियोंमें आग्रही लोग तो बहुवचनमें भी 'नमस्ते'का प्रयोग करते हैं। जैसे–आर्यसमाजी श्रीचमूपतिजीने मुलतान गुरुकुलमें रहते हुए सन् १९१७ के लगभग एक सन्ध्याकी पुस्तक छपवाई थी। उसकी भूमिकामें तीन-चार ब्रह्मचारियोंके नाम लिखकर लिखा–'प्रिय ब्रह्मचारियो ! नमस्ते' क्या खूब !!! ब्रह्मचारी तो हुए बहुत; पर उनको दे दिया एकवचन–'नमस्ते'। 'तेमयावेकवचनस्य' (पा. ८।१।२२) 'ते' एकवचनमें होता है। अन्य उन्होंने यह भूल की कि–उन छात्रोंको आशीषके स्थानमें अभिवादनार्थक 'नमस्कार कर दी !!! नमस्कार अपनेसे योग्यता, वा आयु वा वर्णसे बड़ेको होता है–'ज्यायांसमभिवादयन्' (मनु २।१२२)। तब तो बहुवचनमें 'नमो वः पितरः' (यजु. २।३२) कहने वाले वेदसे भी पूछना पड़ेगा कि–'नमस्ते पितरः' क्यों नहीं लिखा ?

आर्यसमाजके प्रसिद्ध श्रीधुरेन्द्रशास्त्री (अब स्वामी ध्रुवानन्द) मेरे मित्र हैं; उन्होंने शास्त्रिपरीक्षा सन् १९१९में मेरे साथ उत्तीर्ण की। उन्होंने मेरे मातुल श्रीपं. चूडामणिजी शास्त्री (अब स्वा. विज्ञानभिक्षु) से शिक्षा प्राप्त की है; वे ही जब उन्हें पत्र भेजते थे; तो लिखते थे–'माननीय-गुरुवराः ! नमस्ते' यह कई बार मैंने उनके पत्रमें देखा है। या तो इसे अज्ञान मानना पड़ेगा, या साम्प्रदायिक-आग्रह। बहुवचन में 'तेमयावेवचनस्य' (८।१।२२) एकवचन 'तुभ्यं'का स्थानी 'ते' कैसे दिया जाय ?। यदि यह ठीक है, तो 'घोरा ऋषयो नमो अस्तु एभ्यः' (अथर्व. २।३५।४) 'सभापतिभ्यश्च वो नमो नमः' (यजु. १६।२५) 'गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः'। (१६।२५) इन मन्त्रोंमें वेदमें भी बहुवचन में 'नमस्ते' क्यों नही दिया; अतः बहुवचनमें तद्विरुद्ध 'नमस्ते' का प्रयोग स्पष्ट अवैदिक-हठवाद है।

(३) हम छठे निबन्धमें 'सम्मानमें' बहुवचन' इस विषयके बहुतसे उद्धरण दे चुके हैं; तब उसमें 'नमस्ते' का प्रयोग कैसे हो सकता है ? कुछ बहुवचनके उद्धरण अन्य भी देते हैं-[क] आर्यसमाजमें अनुसन्धानविशारद-श्रीभगवद्दत्तजी बी. ए. ने अपने 'भारतवर्षका बृहद्-इतिहास' [प्रथम भाग] के अन्तमें

[पृ. ३३८] स्वा. द. में बहुवचन दिया है—'इति..... वैदिक धर्म—पुनः-संस्थापक—आर्यग्रन्थ—प्रचारक—नवभारतनिर्मातृकाणां परमराजनीतिज्ञसहिष्णुप्रवर—श्रीमद्दयानन्द-सरस्वतीस्वामिनां प्रशिष्येण इतिहासविद्-भगवद्दत्तेन' । [ख] स्वा. द. जीने हिन्दीभाषामें 'व्यासजी बड़े विद्वान् सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे' (स.प्र.११समु.२०६पृष्ठ) यहांपर व्यासजीको बहुवचन दिया है। [ग] 'मृतश्चाहं पुनर्जातः' इत्यादि निरुक्तकारैरपि पुनर्जन्म-धारणमुक्तम्' [ऋ. भा. भू. २१६ पृष्ठ] में स्वामीने निरुक्त-कारको 'यत्र-यत्र महाभाष्यकारैर्योगविभागः कृतोस्ति [१।१। ७ पृष्ठ ३४] यहां अपने अष्टाध्यायीभाष्यमें महाभाष्यकारको बहुवचन दिया है । तब यदि स्वा. द. जी बहुवचनमें 'सब सभासदोंको नमस्ते' यह लिखते हैं जैसे कि श्रीशेरसिंहने लिखा है—तब यह वेदविरुद्धता है। 'यूयं हि सोम ! पितरो मम स्थन' [ऋ. ९।६९।८] यहां एक भी सोमको बहुवचन सम्मान में देकर उसके लिए 'यूयं' प्रयुक्त किया गया है।

(४) सम्मानितको युष्मद्का एकवचन देना उसका शास्त्रा-नुसार अशस्त्रवध माना जाता है। देखिये—जब युधिष्ठिरने कर्ण-से पीड़ा प्राप्त की, तब अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी निन्दा की। इससे अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके कारण युधिष्ठिरको मारने दौड़ा; तब भगवान् श्रीकृष्णने उसे उससे तो हटवा दिया, परन्तु युधिष्ठिरको मारनेका अन्य उपाय बताया। 'ततो वधं नार्हति धर्मपुत्रस्त्वया प्रतिज्ञार्जुन ! पालनीया। जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि तन्मे निबोधेह तवानुरूपम्' (महा० कर्णपर्व ६०।८०) हे अर्जुन ! युधिष्ठिरका मारना ठीक नहीं। मैं उसमें जीवन्मृत करनेका उपाय बताता हूं। 'यदा मानं लभते माननार्हः; तदा स वै जीवति जीवलोके। यदा ऽवमानं लभते महान्तं, तदा जीवन्मृत उच्यते सः' (६९।८१) मान्यका अपमान करना ही उसका मारना है। उसका प्रकार भगवान्ने यह बताया कि—'त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ ! युधिष्ठिरम्। त्वम् इत्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत !' (६९।८३) 'अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः' (६९।८६) यहां श्रीसातवलेकरने अर्थ लिखा है —'हे भारत ! तुम महाराजको आपके स्थानपर 'तुम' (तूं ?) कह दो, बस इतने ही से वे मर गये समझो। गुरुको 'तुम' (तूं ?) कहना ही उन्हें मार डालना है। 'त्वं' यह युष्मद्शब्दके एकवचन त्वाम्, तुभ्यम्-ते' इन सबका उप-लक्षण है। तभी आगे अर्जुनने युधिष्ठिरको 'त्वं त्वाम्, त्वत्, तव' आदि शब्द कहे। जैसे कि—'मा त्वं राजन् ! व्याहर' (कर्णपर्व ७०।२) 'यते ह नित्यं तव कर्तुमिष्टम्......त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किञ्चित्' (१३-२१) इत्यादि। जब इस प्रकार अर्जुन युष्मद्के एकवचनसे बड़े भाईको बुला चुका, तब फिर उसे पश्चात्ताप हुआ कि—ऐसा करके मैंने मान्यका अपमान किया। इससे उसने अपनी आत्महत्या करनी चाही। उसका उपाय श्रीकृष्णभगवान्ने उसे 'अपनी प्रशंसा करना' बताया। इससे सिद्ध हुआ कि—मान्यको युष्मद्के एकवचनका कहना उसका अपमान करना है।

जैसे कि—याज्ञवल्क्यस्मृतिके प्रायश्चित्ताध्याय (२९१-

श्लोक) की मिताक्षरामें कहा है—'गुरुं जनकादिकं त्वंकृत्य—त्वम् एवमात्थ, त्वया एवं कृतम्—इत्येकवचनान्त-युष्मच्छब्दोच्चारणेन निर्भर्त्स्य..... पादप्रणिपातादिना प्रसाद्य'। पराशरस्मृति (१।५१) की विद्वन्मनोहराटीकामें लिखा है—'यो गरिष्ठस्य त्वमित्येकवचनं प्रयुङ्क्ते, स तत्कालमेव......तमभिवाद्य प्रसादयेत्'। विष्णुस्मृतिके ३२ वें अध्यायमें भी ऐसा निषेध आया है।

केवल इन्हीं पुस्तकोंमें ऐसा नहीं कहा गया, अपितु-महाभारत अनुशासनपर्वमें तो इससे भी स्पष्ट कहा है—'न जातु त्वमिति ब्रूयाद् आपन्नोपि महत्तरम्। त्वङ्कारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते'। (अनुशासन-१६२।५३) श्रीसातवलेकरने इसका यह अर्थ लिखा है—'आपद्ग्रस्त होके भी कदापि महत्-पुरुषोंको 'तुम' (तूं) न कहे। विद्वानोंको तुम (तूं) कहने और वध करनेमें विशेष अन्तर नहीं है'।

(५) कई व्यक्तियोंका विचार है कि—यहां पर अनादर-पूर्वक कहे हुए त्वङ्कारका निषेध है, आदर-पूर्वक कहे हुए का नहीं'। इससे उन्होंने दो प्रकारका 'त्वङ्कार' बताया है। यदि दोनोंमें एकको विधि होती; तो स्मृतिकार वैसा विशेषण लिखते, पर न लिखनेसे उसका सदाके लिए निषेध हो गया तभी तो महाभारतने कहा है—'न जातु त्वमिति ब्रूयात्' 'जातु' का अर्थ है—कभी भी बड़ोंके लिए 'त्वं' का प्रयोग न करो।

जोकि पुराण-इतिहासमें उक्त-स्मृतिवचनोंसे विरुद्ध बड़ेके

लिए 'त्वं' आदि का प्रयोग मिलता है; उसमें—'श्रुति-स्मृति-पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं तु द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा' (११४) इस व्यासस्मृतिके वचनसे स्मृतिका वचन ही अधिक माननीय होता है। यही बात ४।१।६२ सूत्रके न्याय-दर्शनके भाष्यमें बताई गई है कि पुराण-इतिहासका विषय होता है—लोकवृत्त बताना, पर लोक-व्यवहारकी व्यवस्था करना धर्मशास्त्र (स्मृति) का काम होता है 'लोकवृत्तमितिहास-पुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः। तत्र एकेन सर्वं न व्यवस्थाप्यते—इति यथाविषयम् (स्वस्वविषये) एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति'। अर्थात् जैसे आंख, नाक, कान आदि अपने-अपने विषयमें प्रधान हैं; इस प्रकार स्मृति-पुराणादि अपने-अपने विषयमें प्रधान हैं। इतिहासमें युधिष्ठिरकी द्यूत-क्रीडा कही गई है पर वह स्मृति-विरुद्ध होनेसे अनुसरणीय नहीं। नामकरणमें कहा है कि—पुरुषका नाम द्व्यक्षर—चतुरक्षर रखा जावे पर अर्जुन, नकुल आदि नाम विरुद्ध मिलते हैं; आर्यसामाजिक—जगत्में उनकी अपनी 'संस्कार-विधि' (पृ० ६२,६५,६६) में 'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा, युग्मानि त्वेव पुंसाम्, अयुग्मानि स्त्रीणाम्'—जो पुत्र हो तो दो वा चार अक्षरका, जो स्त्री हो तो एक, तीन वा पांच अक्षरका नाम रखे' ऐसी विधि होने पर भी तुलसीराम, अम्बाशङ्कर, मूलशङ्कर आदि विषमाक्षर-पञ्चाक्षर नाम मिलते हैं; सत्यवती आदि स्त्रियों के समाक्षर नाम मिलते हैं। पर इस विषयमें विधिशास्त्र ही देखना पड़ता है, किसीका वृत्त (आचरण)

नहीं। सो विधिशास्त्र स्मृतियां हैं, पुराणोंके आचरण (वृत्त) विधिशास्त्र नहीं। और फिर वादी लोग 'नमस्ते'में तो 'ते'को प्रयुक्त करते हैं; शेष युष्मद्के एक-वचनोंको वे भी कहीं भी किसी भी भाषामें प्रयुक्त नहीं करते; सो उनके मतमें भी उनकी अनादर-वाचकता स्पष्ट है, तब 'नमस्ते'में भी उसका प्रयोग ठीक नहीं। श्रीमद्दयानन्द-प्रकाशके राजस्थानकाण्ड चतुर्थसर्ग ५१७ पृष्ठमें कहा है—'जगन्नाथने अपने अधमतम अपराधको मान भी लिया; परन्तु कर्मगति, और फलभोगके विश्वासी महर्षिने ताड़ना-तर्जना तो कहां; उसे 'तू' तक नहीं कहा। वे गम्भीर-भावसे दया दर्शाते बोले; जगन्नाथ! मेरे इस समय मरनेसे मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि—इससे लोकहितकी कितनी भारी हानि हुई है'। इससे सिद्ध हुआ कि—वादियोंके आचार्यके मतमें भी युष्मद्का एकवचन अनादर-वाचक है, और 'आप' कहना आदर-वाचक। तब 'नमस्ते' में 'ते' शब्द उन्हींकी नीतिसे भी अनादर-द्योतक सिद्ध हुआ।

(६) फिर प्रश्न होता है कि—प्राचीन समयमें बड़ेके लिए 'त्वं' आदिका प्रयोग क्यों होता था? इसपर यह जानना चाहिए कि—परमात्माके लिए तो सारी भाषाएं युष्मद्-शब्दका एकवचन प्रयुक्त करती हैं। उसे 'जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है' कहा जाता है। अंग्रेजीमें भी परमात्माको Thou कहा जाता है। देवता तथा ऋषि-मुनि भी परमात्माके समकक्ष होते हैं। अतः लोकोत्तर होनेसे एवं लौकिक-व्यवहारसे दूर होनेसे

उन्हें भी युष्मद्का एकवचन दिया जाता है। उसमें कारण यह है कि—परम पिता परमात्मा तथा देवता—ऋषिमुनियोंके सामने हम अनीश्वर हैं; और १०० वर्षके होते हुए भी क्षुद्र बालक हैं। छोटे बच्चे पिताको 'तू' कहकर पुकारते हैं। श्रीवल्लालके बनाये भोज-प्रबन्धमें कहा है—'बाल्ये सुतानां, सुरतेऽङ्गनानां, स्तुतौ कवीनां, समरे भटानाम्। त्वंकारयुक्ता हि गिरः प्रशस्ताः' अर्थात् बचपनमें बच्चोंकी, सुरत-समयमें स्त्रियोंकी, कवितामें स्तुति करनेमें कवियों की, युद्धमें योद्धाओं की, 'त्वं' (युष्मद्-शब्दके एकवचन वाली) की वाणी भी अच्छी लगती है। परन्तु जहां व्यवहारकी बात हो, वहां बड़ेके लिए 'तू' आदि शब्द ठीक नहीं हो सकते। लोकमें तो छोटा-बड़ा आदि व्यवहार होते हैं, पर परमात्मामें अलौकिकतावश यह भेद नहीं; क्योंकि—वह सबसे बड़ा है। सबसे बड़ेमें लोकोत्तर होनेसे लोक-व्यवहारसे भिन्न 'तू' आदिका व्यवहार उक्त पदके अनुसार ठीक है, परन्तु लोकव्यवहारमें ऐसा करने से बड़ेकी अप्रतिष्ठा मानी जाती है।

आप आर्य-समाजके हो रहे हुए उत्सवमें उसके सभापति को हिन्दी वा संस्कृतमें कहें कि क्या तू मुझे अपने प्लैटफार्म पर बोलने दे सकता है? ऐसा कहने पर सम्भव है कि—आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता 'तू' कहने वालेसे दण्डादण्डि शुरू करके उसका सिर ही फोड़ दें; अथवा कुछ भी न करें; तो वैसे पुरुषको असभ्य ही मान लें। परन्तु 'नमस्ते' कहनेपर वे पुलकित हो जाते हैं—सो यह साम्प्रदायिक-हठके अतिरिक्त अन्य

कुछ नहीं। जब वादी अपने लिए 'तू-तड़ाक' नहीं सहते, तो दूसरोंको भी 'नमस्ते' न कहें।

यह प्रत्यक्ष है कि—आजकल कोई किसी भी भाषामें, चाहे अंग्रेजी हो या उर्दु, संस्कृत हो, या हिन्दी, लौकिक मान्य पुरुष को 'तू' 'तेरा' 'तुझे' आदि नहीं कहता! सभी उसे आप, श्रीमान्, श्रीचरण, तत्रभवान् आदि शब्द प्रयुक्त करते हैं। यदि कहीं युष्मद्-शब्दका हिन्दी आदिमें बड़ेके लिए प्रयोग करते भी हैं; तो 'तू' न कहकर बहुवचनमें हिन्दुस्तानी वा पंजाबी आदिमें 'तुम, तुस्सां,त्वाड़े' आदिका प्रयोग करते हैं। इस कारण 'नमस्ते' में वह दोष रह जाता है। मान्यको 'तू' नहीं कहा जाता, अतएव बड़ेको 'नमस्ते' नहीं कहा जा सकता। छोटेको 'तू' कहा जानेपर भी उसे 'नमः' नहीं कहा जाता; अतः उसे भी 'नमस्ते' नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार समानको भी 'नमः' नहीं कहा जाता, क्योंकि 'णम् प्रह्वत्वे' धातु से 'नमः' बनता है। 'प्रह्वत्व' झुकनेको कहते हैं, झुकना बड़े के आगे होता है; अतः 'नमस्ते' का प्रयोग किसी भी दशामें ठीक नहीं।

प्राचीन भाषाओंमें, अथवा कवियोंकी गद्य-पद्यमय कविताओं तथा अंग्रेजीकी पोइट्रियों में प्राचीन समयमें युष्मद्-शब्द की सभी विभक्तियोंके एकवचन प्रयुक्त होते थे। परन्तु वह इतिहास है; इतिहासका आचरण धर्मशास्त्रोंसे अविरुद्ध होनेपर ही स्वीकृत होता है, पर धर्मशास्त्रमें बड़ेके लिए युष्मद्-शब्दके एकवचनका निषेध है, यह हम पूर्व सूचित कर चुके हैं।

प्राचीन समयमें 'तू' आदिके प्रयोगका कारण यह है कि—उस समयमें बाह्य लोक-व्यवहारकी उन्नति अब जैसी न थी। उस समयमें स्त्री-पुरुषोंमें नग्न रहने की प्रथा भी थी। अब स्वयं नंगा रहना तो दूर; यदि कुम्भ आदिमें नंगे साधु आ जाते हैं; तो उनकी भी तीव्र-आलोचना होती है। और छोड़िए, यह देखिए कि—वेदकालमें जो व्यवहार था; 'वह क्या अब ग्राह्य वा गृहीत है? वेदमें हीन उपमाएं आती हैं; 'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू' (ऋ. १०।४।६) यहां वेदने अग्निमन्थन करने वाले यजमान की बाहुओंको चोरोंकी उपमा दी है; क्या आजकल ऐसी हीन उपमाएं गृहीत हैं? आजकल 'चाण्डाल इव राजाऽसौ संग्रामेऽधिकसाहसः' ऐसी हीनोपमा अनुचित समझी जाती है। 'रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् (यजुः १९।७६) 'यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्' (अ. १४।२।३८) यह वेदने स्पष्ट बातें कही हैं; आजकल इनका कहना ग्राम्य माना जाता है। निरुक्तकार कन्याके पतिको जामाता न कहकर उसे 'रेतः—सेक' शुक्रका सींचनेवाला (३।४।६) कहता है; आजकल कोई ऐसा कह सकता है? इस प्रकार वैदिक-कालमें प्रयुक्त भी युष्मद् का एकवचन इस समय अनादृत माना जाता है। इस कारण उसका प्रयोग नहीं किया जाता। तब वह 'नमस्ते' में भी उपादेय नहीं।

(७) उस समय कुछ अद्वैतवाद भी चालू था; सब एक दूसरेको परमात्मा समझकर उसके लिए प्रयुज्यमान 'तू, तेरा' आदिका प्रयोग करते थे। पर अद्वैतवाद व्यवहारिक नहीं

होता। जब ऐसा हो जाय, तो उस समय दूसरेको 'नमः' भी तो नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि--उस समय कौन बड़ा और कौन छोटा ? अतः अद्वैतवादमें उपासना भी नहीं हुआ करती। तब अद्वैतवादमें भी 'नमस्ते' प्रयोज्य नहीं। कइयोंका विचार है कि अद्वैतवादको छोड़िए, हम उसे मानते ही नहीं ; पर सब आत्मा तो समान हैं ; तब सबको 'नमस्ते' कहना ठीक है, इसपर जानना चाहिए कि--क्या आत्माकी समानतामें सब व्यवहार समान हो सकते हैं ? तब तो ब्राह्मण-चाण्डाल के भी आत्माके समान होनेसे उनसे व्यवहारमें तारतम्य न होना चाहिए, पर शास्त्रानुसार होता है। आपकी बहिन तथा आपकी स्त्रीके भी आत्माके समान होनेसे क्या उन दोनोंमें आपके सभी व्यवहार समान होते हैं ? आत्मा तो चींटी तथा हाथीका भी समान होगा; तब क्या आपका उनके साथ समान व्यवहार होगा ? क्या आप उनको 'नमस्ते' कहते हैं ? यदि सभी समान हैं ; तब कौन उच्च और कौन नीच ; तब तो दूसरोंको नमस्कारकी भी आवश्यकता नहीं है ; क्योंकि--नमस्कार उच्चको हुआ करती है, नीच वा समान को नहीं। इस विषयमें 'नमः' की मूलधातु बताकर हम स्पष्ट कर चुके हैं। स्वा.द.जीकी सं. वि. वेदारम्भ के ९६ पृष्ठमें 'अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भवन्तमभिवादये' इस वाक्यके द्वारा शिष्यका आचार्य को 'वन्दन' कराया गया है, और आचार्यका शिष्यको 'आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य' इस वाक्यसे आशीर्वाद दिलाया गया है। यहां आत्माकी समानतामें एक-दूसरोंको वन्दना क्यों

नहीं कराई गई ? क्यों नमस्कार-आशीर्वाद दिलाया गया है ? शिष्यने आचार्यको आयुका आशीर्वाद क्यों नहीं दिया ?। आचार्यको 'त्वां' न कहलाकर 'भवन्तं' भवत् शब्दका प्रयोग क्यों दिखलाया गया है—इससे वादियोंका पक्ष निराकृत हो रहा है। 'आये हुए लोग [वधूको] 'सौभाग्यमस्तु-शुभं भवतु' इस प्रकार आशीर्वाद देवें' (संस्कारविधि. पृ. १७०, १६२) 'स्वस्ति ३' (पृ. १७५) यहां वधूको आगन्तुकोंका आशीर्वाद क्यों दिलाया गया ? नमस्कार क्यों नहीं कराया गया ? यदि सभी आत्मा समान हैं ; इसलिए 'नमस्ते' में युष्मद्का एकवचन दिया जाता हैं, तो त्वं, त्वया, तुभ्यं, त्वत्, तव, त्वयि' ने क्या अपराध किया है, इसका उपयोग वादी बड़ोंके लिए क्यों नहीं करते ? इससे स्पष्ट है कि—वादी लोग अपने सम्प्रदायकी व्यापकताके लिए ही अपने साम्प्रदायिक शब्द 'नमस्ते'के प्रचारार्थ साम्यवादके बहाने कर रहे हैं, अन्य कुछ नहीं।

व्यास आदि कवियोंकी कवितामें जोकि—युष्मद्का एक वचन दीखता है, उसमें एक यह भी कारण है कि—कवि काव्य-संसारका ब्रह्मा होता है। उस कविकी सृष्टि उसकी अपेक्षा अवर होती है। अत्यन्त-उच्च तथा अत्यन्त-अवरको युष्मद्का एकवचन प्रायः दीखता है। इस कारण व्यासजीने अपनी इस कवित्वकी प्रकृतिमें विवश होकर 'भवन्तं' कहलवानेके योग्य पात्रको भी छोटेके द्वारा 'त्वाम्' कहलवाया है। फिर भी समय-समयपर 'भवत्' शब्द भी कहलवाया है

जैसेकि—अर्जुन द्वारा युधिष्ठिरको 'ततो भवन्तमद्राक्षम्' (महाभारत वनपर्व १७४।१०) श्वः प्रभाते भवान् द्रष्टा'। (१७४। १६)। भवांस्तु धर्मसंयुक्त धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः' (उद्योगपर्व ६।८) इस प्रकार वाल्मीकिरामायणमें 'भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते' (२।३१।२७) लक्ष्मण श्रीराम को कहता है।

आजकलकी किसी भी सभ्य-भाषामें व्यवहारमें मान्यके लिए युष्मद्का एकवचन प्रयुक्त नहीं होता; अतः वह तिरस्कारवाचक भी है, यही 'नमस्ते'में 'ते'का दोष है। नहीं तो फिर क्या कारण है कि—आप लोगे बड़ेको 'नमस्ते'के अतिरिक्त संस्कृतमें त्वं, त्वां, त्वया, तुभ्यं, आदि और हिन्दी-भाषामें तू, तूने, तुझे,' न कहकर क्यों 'आपका, आपके, इत्यादि प्रयुक्त करते हैं, अंग्रेजीमें भी क्यों Thou, Thy, Thee, Thine' इनका प्रयोग मान्यके लिए नहीं करते; 'You, Your,' आदि का क्यों प्रयोग करते हैं ?

यदि आप 'नमस्ते'में 'ते'का अर्थ अपनी कल्पनासे 'आप' कर दें; तो फिर 'तू, तुझे,' वाचक शब्द कौन रहेगा ?। स्वा. द. जीने भी अपने 'संस्कृतवाक्य प्रबोध'में 'तेरे लिए, वा तेरा' आदिके लिए युष्मद्का एकवचन और 'आप'के लिए 'भवत्'का प्रयोग किया है; इस प्रकार श्री तुलसीराम-स्वामीकी संस्कृत-पुस्तकोंमें भी देखा जा सकता है। तब 'नमस्ते'के 'ते'का 'आपको' यह अर्थ करना असङ्गत है'। अतः 'नमस्ते' यह सत्कारवाद नहीं, किन्तु हठवाद है। यह जो चल निकला है,

इसमें कारण लोगोंका संस्कृत भाषाको न जानना है। यदि साधारण लोगोंको पता लग जाय कि—'नमस्ते'में 'ते' तू-तड़ाक है; तो वे इसका प्रयोग सर्वथा छोड़ दें। जो आर्यसमाजके संस्कृतज्ञ भी इसका प्रयोग सह लेते हैं; या इस पर 'अडियल-टट्टू' बन जाते हैं; वह सब उदरदेवकी कृपा है; नहीं तो उनको भी वहांसे 'अन्तिम-नमस्ते' प्राप्त हो जावे !

(८) हमारे पास श्रीसनातनधर्म-संस्कृतकालेज मुलतानमें सन् १९२७,२८ में एक धर्मपालसिंह अलीगढ़ जिलेका आर्यसमाजी छात्र शास्त्रिश्रेणीमें पढ़ा करता था। वह आर्यसमाजकी❀ हठीली प्रकृतिका उपासक होनेसे अध्यापकोंको 'नमस्ते' ही कहा करता था। उसे समझाया गया कि—'ते (तुभ्यं)' से अध्यापकोंकी अप्रतिष्ठा है—या तो तुम 'नमो वः' कहा करो, अथवा 'नमः श्रीमते' कहो। पर वह हठी छात्र न माना। 'नमस्ते' उन्हें कहा ही करता था। उसी धर्मपालसिंहने मुझे वहांके मुख्याध्यापक श्री पं. चूडामणिजी शास्त्रीके लड़के चन्द्र-

❀ आर्यसमाजियोंमें हठ स्वाभाविक होता है—इस विषयमें हम आर्यसमाजसे मान्य स्वा. श्रद्धानन्द (श्रीमुन्शीराम) जीके लड़के श्री-इन्द्रविद्यावाचस्पतिकी साक्षी देते हैं। आर्यसमाजी श्रीरघुनन्दनशर्माकी 'वैदिक-सम्पत्ति'की आलोचनामें अपनेसे सम्पादित 'अर्जुन' पत्र (४।१०। ३४ तिथिके अङ्क)में उन्होंने लिखा था—'वैदिक-सम्पत्तिके लेखक आर्यसमाजिक विद्वान् हैं; परन्तु उनमें उन (आर्यसमाजियों)का सा हठ नहीं है'। विद्यावाचस्पतिजीके इस लेखसे भी आर्यसमाजियोंमें हठ सिद्ध होता है।

कुमारकी—जो उससे आयुमें छोटा था, और विशारद-श्रेणी में पढ़ा करता था—शिकायत की, कि—यह मुझसे आयुमें तथा श्रेणीमें छोटा है, पर मुझे 'तू, तूने' कहा करता है, कृपया इसे समझा दीजिए। मैंने कहा कि—हम अध्यापक लोग तो तुमसे वर्णमें, विद्यामें, और आयु-अनुभव आदिमें बड़े हैं; फिर भी तुम हमें युष्मद्की चतुर्थीके एकवचन 'ते'का 'नमस्ते'में प्रयोग करके हमारी मानहानि नहीं समझते; तो तुम छात्र होते हुए भी एक छोटे लड़केके 'तू, तूने, तेरा' कहने पर अपनी मानहानि कैसे समझते हो ? बस उस समय उस २०-२५ वर्षीय छात्रका मुख फोटो खींचनेके योग्य (विवर्ण) हो गया, फिर कभी उसने उस चन्द्रकुमारकी शिकायत नहीं की।

इस प्रकार एक धर्मपालसिंह क्या, बल्कि सभी आर्य-समाजियोंके विषयमें अनुभव किया जा सकता है। यदि आप उन्हें 'त्वं, तुभ्यम् !, तू, तूने आदि कहें; तो बिगड़ेंगे, झगड़ेंगे; पर 'नमस्ते'को नहीं छोड़ेंगे—यही होता है 'हठवाद'। क्या वे छोटे-लड़केको नहीं समझाते कि बच्चे ! बड़ेको तू—तुझे न कह-कर 'आप-आपको' कहा कर'। क्या वे संस्कृत-छात्रको पत्र व्यवहारके लिए नहीं समझाते कि—मान्यको श्रीमान्, तत्रभवान्, श्रीमन्तः इत्यादि लिखा करो, 'त्वं तुभ्यम्' आदि नहीं। फिर भी यदि 'नमस्ते' कहना नहीं छोड़ते-छुड़वाते; तो यह 'हठवाद' की पराकाष्ठा हुई।

[९] कई आग्रही कहते हैं कि—'प्रकृति युष्मद्का एकवचन सिखलाती है, इसीलिए ही छोटा बच्चा पिताको 'तू' कहता है, तब 'नमस्ते' में 'ते' भी प्रकृतिका प्रसाद है'। यह भी ठीक नहीं। यदि यही व्यवहार प्राकृतिक है, तो फिर आप लोग 'आप' 'श्रीमान्' आदि छुड़ाकर 'तू, तूने' का प्रचार क्यों नहीं कराते ? यदि प्रकृतिमें आपका आदर है ; तो आप लोग नंगे क्यों नहीं रहते, क्योंकि—प्रकृतिका पुत्र छोटा बच्चा नंगा ही तो रहता है। प्रकृति तो भाई-बहिनके मैथुनमें भी कोई बाधा नहीं डालती। तब भाई-बहिनका विवाह क्यों नहीं मानते ? यदि कहो कि—यह पशुकर्म है ; तो पहला बचपनका कर्म है। बड़प्पनमें बचपन वाले व्यवहार हेय ही होते हैं ; तब 'नमस्ते' इस बचपन वाले व्यवहारको छोड़िये।

[१०] वास्तवमें 'नमस्ते' किसी भी प्रकार ठीक नहीं। छोटा बड़ेको 'नमः' तो कहता है, 'ते' नहीं कहता। बड़ा छोटे को 'ते' (तुभ्यं) तो कहता है, पर 'नमः' नहीं कहता। क्योंकि—यह 'णम् प्रह्वत्वे' धातुसे बना है। प्रह्वीभावका अर्थ है, सिर झुकाना। जैसे—'प्रह्वोऽभवद् भ्रातुरुपह्वरे सः' (वनपर्व १६५।५) यहां अर्जुन युधिष्ठिरके आगे झुका। 'स तत् सर्वमशेषेण श्रुत्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः' (३।२८२।१५) यहां सुग्रीव लक्ष्मणके आगे झुका। 'पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः' (उद्योगपर्व ७।९) यहां अर्जुन श्रीकृष्णके आगे झुका। लेकिन छोटेके आगे सिर नहीं झुकाया जाता। समान लोग भी कदाचित् परस्पर 'ते' कह भी डालें, पर उनमें भी परस्पर नमस्कार करना शास्त्रीय नहीं। प्राचीन-पुस्तकोंमें भी समानोंका आपसमें 'नमोवाद' नहीं कहा गया ; किन्तु

कुशलवाद ही कहा गया है, जैसाकि—आपस्तम्बधर्मसूत्रमें—'कुशलमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेत्' (१।१४।२३)। इस प्रकार मनुजीने भी कहा है—'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्' (२।१२७) यह समान-आयुवालोंके लिए है। बड़ेके लिए तो वहां कहा है—'प्रत्युत्थायाभिवादयेत्' (२।११९) कि—उठकर उसका अभिवादन करे—'ज्यायांसमभिवादयन्' (मनु. २।१२२)। इसलिए २।१२७ पद्यमें श्रीकुल्लूकभट्टने लिखा है—'समागम्य-समागमे कृते अभिवादकमवरवयस्कं, समानवयस्कमनभिवाद-कमपि ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्'।

जो लोग 'नमः' का 'यथायोग्य सत्कार' अर्थ कहते हैं, वे काव्य, कोष, व्याकरण आदिके विरुद्ध अर्थ करके ठगते हैं। 'नमस्ते' कहने वाले 'नमस्तुभ्यम्' क्यों नहीं कहते—यह भी प्रष्टव्य है। यदि इसमें अवैदिकता कही जाए; तो यह ठीक नहीं, वेदमें 'नम एवास्तु तुभ्यम्' (अथर्व. १।१३।३) भी दीखता है। यदि इसमें अप्रतिष्ठा है, तो 'नमस्ते' में भी अप्रतिष्ठा है।

[११] कई दुराग्रही 'नमस्ते' इस प्रणामके उत्तर आशीर्वादमें भी मान्य-पुरुषसे 'नमस्ते' सुनना चाहते हैं; ऐसे पुरुष भी भ्रान्त हैं। आशीर्वादमें 'शमस्ते' या कुछ और कहना चाहिये, जैसेकि—देवेन्द्रनाथकेदयानन्द-जीवन चरित्रके ७माध्यायके १३५ पृष्ठमें लिखा है—'दोनों युवकोंने जाकर स्वामीजीको अभिवादन किया, स्वामीजीने 'आयुष्मान् भव' कहनेके अतिरिक्त और कुछ न कहा' इस कारण 'नमस्ते' नहीं कहना चाहिए। महाभारत-आदिपर्वमें कहा है—'अहं हि

पूर्वो वयसा भवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां न प्रयुञ्जे। यो विद्यया, तपसा, जन्मना वा वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम्'। (८९।२) इसका अर्थ आर्यसमाजी-पण्डित सातवलेकरने इस प्रकार लिखा है—'मैं तुमसे अवस्थामें ज्येष्ठ हूँ, इस हेतु तुमको नमस्कार नहीं किया। क्योंकि—जो जन विद्या या तपस्या अथवा जन्मसे वृद्ध होते हैं; वही द्विजातियोंमें पूजनीय होते हैं'।

इससे स्पष्ट है कि—मान्यको तो नमस्कार की जा सकती है। जैसे कि—आपस्तम्बधर्मसूत्रमें कहा है—'पूजा वर्णज्यायसां कार्या, वृद्धतराणां च' (१।१३।२-३) 'गुरुभ्यस्त्वासनं- देयम-भिवाद्याभिपूज्य च। .. नासीनः स्यात् स्थितेष्वेषु आयुरस्य न हीयते. (महा. अनुशा. १६२।४५-४६) परन्तु अपनेसे छोटे को वह मान्य नमस्कार नहीं कर सकता। जैसेकि—अत्रिस्मृतिमें कहा है—'हीनवर्णो चः यः कुर्याद् अज्ञानाद् अभिवादनम्। तत्र स्नानं प्रकुर्वीत' (३११) यहांपर प्रायश्चित्त कहा है। तभी तो महाभारतमें कहा है—'एवं सर्वान् कुरून् वृद्धान् अभिवाद्य यतव्रताः। समालिङ्ग्य समानान् वै, बालैश्चाप्यभिवादिताः' इसका अर्थ श्रीसातवलेकरने यह किया है—'अनन्तर व्रतशील पाण्डव भीष्म, कृपादि वृद्धोंके पांव छूने लगे। इस प्रकार अपनेसे बड़े सब कौरवोंको प्रणाम किया; और अपने जोड़ियों को गले लगाया। आगे बालकोंका प्रणाम लेकर वारणावत नगर को चले'।

इस प्रकार वनपर्वमें भी लिखा है; जिसका अर्थ

श्रीसातवलेकरने इस प्रकार लिखा है—'तब बुद्धिमान् अर्जुनने पहले धौम्य, फिर युधिष्ठिर और पीछे भीमसेनके चरणोंको छूकर प्रणाम किया। उसी समय नकुल, सहदेवने अर्जुनको प्रणाम किया।—'धौम्यस्य पादौ अभिवाद्य धीमान् अजातशत्रोस्तदनन्तरं च। वृकोदरस्यापि च वन्द्य पादौ माद्रीसुताभ्यामभिवादितश्च' (१६५।४-५)। 'ज्येष्ठानप्यभिवादयन्। यवीयस-(कनीयस) श्च कुशलं' (उद्योगपर्व ५६।१६) इससे स्पष्ट हो गया कि—छोटे ही बड़ेको नमस्कार करें, बड़े छोटेको नहीं। बड़े छोटेसे वा समानोंसे कुशल पूछें। इसी तरह आदिपर्वमें भी कहा है— 'अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः। कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाभिचोदितः। समानवयसः सर्वान् आश्लिष्य स पुनः पुनः'। (२२०।२०-२१) यहां बड़ोंको नमस्कार तथा समानोंको गले लगाना कहा है। इसी भांति 'अभिवाद्य ततः पादौ मातापित्रोर्विशांपते !...अभिवादितः कनीयोभिर्भ्रातृभिर्भ्रातृनन्दनः' (३।२५७।७-८) ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च। कनीयसः समाघ्राय शिरःसु अरिमर्दनः' (१।१२६।३०) यहां पर छोटोंका बड़ोंको अभिवादन (नमस्कार) कहा गया है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें कहा है—'युधिष्ठिरस्य भीष्मस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम्। (श्रीकृष्णः) फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवादितः'। (१०।५८।४) यहां श्रीधरस्वामीने लिखा है—'ज्येष्ठयोः [युधिष्ठिर-भीमयोः] प्रणामं कृत्वा, समेन [अर्जुनेन] आलिङ्ग्य, कनिष्ठाभ्यां (नकुलसह-

देवाभ्याम्) अभिवन्दितो बभूव'। इससे प्राचीन-कालमें छोटोंकी बड़ोंको चरण-वन्दना, बड़ोंकी छोटोंको आशीः और समानों को आलिङ्गन स्पष्ट है; तब 'सभीका प्राचीनकालमें परस्पर 'नमस्ते' रूपमें समान-व्यवहार था'—यह बात वादियोंकी खण्डित हो गई। इसी प्रकार वाल्मीकिरामायणमें 'ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा। ववन्दे प्रगतो रामं (६।१२७।३७) शत्रुघ्नश्च तथा रामम् अभिवाद्य सलक्ष्मणम्। सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत्' (१२७।४८) रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम्। जग्राह प्रणतः पादौ, (४९) में भी बड़ोंको वन्दना की गई है, छोटोंको नहीं। प्रमाण इतने हैं कि—वादी देखते-देखते थक जाएं। इससे स्पष्ट है कि—बड़ा छोटेको वा समान-समानको नमस्कार नहीं कर सकता। शताब्दी-संस्करणमें प्रकाशित हुए—आर्याभिविनय, स.प्र. आदि ग्रन्थोंमें स्वा.द.के स्वहस्तलिखित-पत्रका चित्र है। वहां लिखा है—'स्वस्ति श्री...अस्मत्प्रियवराय श्रीयुत श्यामजिवर्मणे दयानन्दसरस्वती-स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्' यहांपर स्वा. द. जीने एक क्षत्रियको आशीर्वाद लिखी है, 'नमस्ते' नहीं। तब आशीर्वादमें 'नमस्ते'कट गया। शताब्दी-संस्करणके प्रथम भाग १६ पृष्ठमें पंडित ज्वालादत्तजी, आनन्दित रहो, (२२।१०।१८८१)। १७ पृष्ठमें 'प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदानजी, आनन्दित रहो, (भाद्रवदि १२ शनि सं. १९३९)। १८ पृष्ठमें 'पंडित सुन्दरलालजी आनन्दित रहो' ११ जून१८८२) इन्हीं व्यवहारोंसे आशीर्वादमें स्वामीजीने

'नमस्ते' को खण्डित सिद्ध कर दिया।

स्वामीने वैदिक-संस्कारमें ब्रह्मचारी-द्वारा आचार्यको 'भवत्' शब्द-द्वारा अभिवादन कराया है, और आचार्य-द्वारा बटुको आयुकी आशीः दिलवाई है। तब दोनों स्थान 'नमस्ते' का प्रयोग अवैदिक सिद्ध हुआ। नहीं तो यदि दोनों स्थान 'नमस्ते' कहना ही आर्षशैली है; तो वैदिक संस्कारमें स्वामीने अनार्षशैली-अवैदिक-शैली कैसे चलाई? यदि यही वैदिक-शैली है; तो 'नमस्ते'-परिपाटी अवैदिक-शैली सिद्ध हुई। वस्तुतः संस्कारविधिमें स्वामीसे निर्दिष्ट यह व्यवहार निर्मूल नहीं है। मनुजीकी भी इसमें साक्षी है-'अभिवादात् परं विप्रो-ज्यायांसमभिवादयन्। असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परि-कीर्तयेत्' (२।१२२) यहां अभिवादनप्रकार बताया गया है। 'अब प्रत्यभिवादनमें आशीः देखिये—'आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने' (२।१२५)' परन्तु वादी लोग दोनों स्थलोंमें 'नमस्ते' कहते हैं-यह सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है। 'नमस्तेस्त्वायुष्मानेधि देवदत्त ३' अथवा 'नमस्तेस्तु देवदत्त ३' इस प्रत्यभिवाद-वाक्यको अपनी 'नमस्ते की प्राचीनता' (३७ पृष्ठ)में दिखलाते हुए श्रीशेरसिंहकी जहां मनुस्मृतिसे विरुद्धता सिद्ध हुई; वहां स्वा. द. जीसे भी; क्योंकि स्वामीने अपने वेदारम्भ-संस्कारमें भी वैसा नहीं लिखा, तथा 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' इस पाणिनि-सूत्रकी व्याख्यामें भी 'अभिवादये, आयुष्मानेधि, इस रूपमें ही लिखा है, 'नमस्ते' दोनों ओर नहीं लिखा। तब श्रीशेरसिंहके प्रत्यभिवाद-वाक्यमें टिको प्लुत नहीं होगा;

क्योंकि-'नमस्ते' प्रत्यभिवादवाचक ही नहीं। नहीं तो उसको इस विषयका प्रमाण दिखलाना चाहिए, पर वैसा प्रमाण, 'शशशृङ्ग', एवं 'काकदन्त' ही है। और यह भी स्मर्तव्य है कि-प्रत्यभिवाद वाक्यमें वाक्यकी टिंको उदात्त-प्लुत (पा. ८।२।८२) करना पड़ता है, पर 'नमस्ते'में वह असम्भव है; क्योंकि उसमें 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' (पा. ८।१।१८) इससे 'ते' अनुदात्त होता है, वह उदात्त कैसे हो सकता है? अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करनेपर तो 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तः......यजमानं हिनस्ति' यह महाभाष्य-प्रोक्त दशा हो जावेगी। तब अभिवादन-प्रत्यभिवादन दोनोंमें 'नमस्ते' कहना वेद-वेदाङ्गसे विरुद्ध है। जो लोग अभिवादन के उत्तरमें प्रत्यभिवादनकी 'आयुष्मान् भव' वाली शैली नहीं जानते; मनुजीने उन्हें शूद्र-जैसा बताया है—'यो न वेत्त्य-भिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्। नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः'। (२।१२६) यहां मनुजीने दोनों ओर समान व्यवहार (नमस्ते) करने वालोंको कैसा सीधा किया है? मनुस्मृतिको स्वामीजी सृष्टिके आदि-कालमें बना हुआ मानते हैं; देखिए स. प्र. ११ समु.का प्रारम्भ। इस प्रकार श्रीयास्क (निरुक्त ३।४।२) आदि अन्य भी। तब मनुप्रोक्त प्रणाम-आशीर्वादका प्रकार सृष्टिका आदि वैदिक-कालके सिद्ध हुआ।

वेदमें यदि मनुष्य परमात्माको नमस्कार करता है, तो परमात्मा मनुष्यको आशीः ही देता है, नमस्कार नहीं। स्वा. द.जीने ऋ.भा.भू.के १५६ पृष्ठमें परमात्माकी ओरसे जीवोंको

आशीः देने वाले मन्त्र लिखे हैं; पर उनमें कहीं 'नमस्ते' नहीं। स्वा. द.के हम उद्धरण पूर्व दे चुके हैं। अब एक और भी उनका आदर्श देते हैं—। हिन्दी-भाषा-सारके गद्य-भाग (सं. १९८४ पृ० ७०–७१) में स्वा. द. जीका एक पत्र छपा है—

'ला. जीवनदासजी, आनन्दित रहो।……पाककर्त्ताका कोई दृढ निश्चय नहीं हो सकता, क्योंकि—पाचक सब वर्णोंमें होते हैं। अब तो इसमें सनातनका व्यवहार ही प्रमाण हो सकता है। जो आप लोगोंमें यज्ञोपवीत होता, और धरावट अर्थात्—विधवाको पुनः दूसरेके घरमें बैठाना नहीं होता, तो शूद्रवर्णमें गणना आप लोगोंकी नहीं।………सबसे मेरा आशीर्वाद कहियेगा'। (दयानन्द-सरस्वती)।

इस पत्रसे कई बातें पता लगती हैं। एक यह स्वामी शूद्रको यज्ञोपवीत नहीं मानते थे, २री विधवा-विवाहको वे शूद्रोंमें मानते थे, द्विजोंमें नहीं। ३री रोटी बनाना केवल शूद्र-वर्णका कार्य नहीं। ४थी, सन्दिग्ध-स्थलमें सनातन-व्यवहार ही प्रमाण होता है। ५वीं—वर्ण-व्यवस्था जन्मसे ही होती है, गुण-कर्मसे नहीं। नहीं तो मूर्ख-शूद्रोंका ही पाककर्म नियत होता; ब्राह्मणादिका नहीं। ६ठी—आशीर्वादमें 'आनन्दित रहो' लिखो, 'नमस्ते' नहीं। ७वीं—अपनेसे छोटोंको आशीर्वाद देना चाहिए, 'नमस्ते' नहीं कहना चाहिए; इससे स्पष्ट है कि—स्वामीका भी 'नमस्ते'में पक्षपात नहीं। तभी तो प्रथम-स०प्र० में उसका कहीं गन्धतक भी नहीं। इसीलिए उनकी संस्कारविधि तथा वेदभाष्य आदि पुस्तकोंके स्वामी जीकी मृत्यु

से पीछेके छपे संस्करणों में लेखरामादिने 'नमस्ते' प्रक्षिप्त कर दिया। यदि स्वामीने स्वयं कहीं लिखा भी हो; तो वह साध्य-पक्ष होगा, 'सिद्ध' नहीं। तब 'नमस्ते' के प्रत्युत्तर-आशीर्वादमें भी 'नमस्ते'का निराकरण हो गया।

(१२) परन्तु कई हठी कहते हैं—'नमस्ते' का प्रयोग प्रणाम, आशीर्वाद एवं तिरस्कार सभी स्थानोंमें हो सकता है। प्रणाम-अर्थमें 'नमः' तो प्रसिद्ध है ही, आशीर्वाद अर्थमें 'नमः' का अर्थ 'अन्न' है, तुम्हें अन्न प्राप्त हो। तिरस्कारमें 'नमः'का अर्थ 'वज्र' है'।

इसपर जानना चाहिए कि—'नमः'के प्रणाम-अर्थमें तो कोई आपत्ति नहीं; लेकिन शेष अर्थोंमें दोष है। 'नमः'का 'अन्न' और 'वज्र' अर्थ वैदिक-कोष एवं वेदमें होता है, लोक-में नहीं! लौकिक-कोषोंमें यह अर्थ नहीं। लोक-व्यवहारमें लोकभिन्न-वैदिक शब्दोंका प्रयोग नहीं होता, इसीलिए अष्टाध्यायीमें लौकिक-वैदिक प्रक्रियाओंका परस्पर भेद ही रखा गया है। वेदमें 'देवैः, नदीभिः' आदि लौकिक शब्द और 'देवेभिः,नद्यैः' आदि वैदिक शब्द प्रयुक्त होते हैं; वेदमें 'भाषायां' वाले प्रयोग प्रयुक्त नहीं होते; और वे भी कभी बाहुलकसे प्रयुक्त हो जाते हैं, पर लोकमें केवल 'देवैः, नदीभिः' आदि लौकिक-शब्द प्रयुक्त होते हैं, 'देवेभिः, नद्यैः' आदि छान्दस-शब्द प्रयुक्त नहीं होते।

इसी प्रकार वेदमें जिस पदका लोकभिन्न अन्य विशेष अर्थ हो, उसका लोकमें व्यवहार नहीं होता। जैसे 'पुरीष' शब्द

का लोकमें 'विष्ठा' अर्थ है। पर वैदिक-निघण्टुमें (१।१२) पुरीष, शुक्र, रेतः आदि शब्द जलवाचक हैं। तब क्या 'नमस्ते'-वादी जलपानके स्थानमें 'पुरीषपान' वा 'रेतःपान' प्रयुक्त करते हैं? जैसे लोकमें 'पुरीष' शब्दका जल अर्थमें व्यवहार नहीं; इस प्रकार 'रेतः' आदिका जल-अर्थमें व्यवहार केवल वेदमें ही होता है, लोकमें नहीं, इसलिए लोकमें एतदादिक-शब्दोंका वैदिक-अर्थ व्यवहृत नहीं होता, वैसेही 'नमः' शब्दका 'अन्न' (निघण्टु २।७) और वज्र (निघं. २। २०) यह दोनों अर्थ वैदिककोष और वेदमें होते हैं, लोकमें नहीं।

लौकिक-साहित्यमें तो आशीर्वाद-अर्थमें तथा तिरस्कार-अर्थमें 'नमः'का प्रयोग कहीं नहीं मिलता; इसलिए लोकमें 'नमः'का आशीर्वाद वा तिरस्कार अर्थमें प्रयोग दुराग्रहमात्र है। वेदमें भी आशीर्वाद-अर्थमें 'नमस्ते' व्यवहृत नहीं। इस लिए स्वा. द.के बनाये 'अव्ययार्थ' में 'नमस्' अव्ययको 'नति' अर्थमें 'नमस्कुर्यान्मातरम्' इस उदाहरणमें दिया गया है, आशीर्वाद-अर्थमें नहीं; माताको आशीर्वाद नहीं दी जाती। तभी स्वा. द.जी की सं. वि. विवाह-प्रकरण (पृ. १७५) की टिप्पणीमें 'नमस्ते' अभिवादन अर्थात् वन्दनमें ही माना गया है, आशीर्वाद-अर्थमें नहीं। छोटे-बड़ोंका आपसमें वन्दन नहीं होता, किन्तु छोटोंका बड़ोंको प्रणाम और बड़ोंकी छोटोंको आशीः हुआ करती है। यह हम पूर्व बता चुके हैं कि—छोटे-बड़ोंका समान-व्यवहार नहीं हुआ करता।

आशीर्वाद मुख्य-वस्तु आयुका देना पड़ता है, जैसाकि मनुजीने कहा है (२।१२५)। अन्नका आशीर्वाद किसी भी ग्रन्थमें नहीं देखा गया। 'नमः'का 'आयु' अर्थ कहीं भी नहीं। जोकि—'सार्वदेशिक' (मई १९४७, पृष्ठ १५३) में श्रीशिव-पूजनसिंहने लिखा है—'दयानन्दजीने निघण्टुका सहारा लिया है, उसमें 'नमः' के अर्थ हैं—आयु, ब्रह्म, वर्चः, यशः, अन्नम्' (निरु. ३।९।१३) यह जनताकी आंखमें धूल झोंकना है; क्योंकि—यह अर्थ 'नमः' के नहीं, यह तो निघण्टु (२।७) में 'अन्न' के पर्यायवाचक लिखे हैं, वहां 'आयु, ब्रह्म, वर्चः, यशः' यह अन्नके वाचक ही बताये गये हैं; पर जैसे यह शब्द लोक-में अन्न-अर्थमें प्रयुक्त नहीं होते; वैसे 'नमः' भी लोकमें 'अन्न' अर्थमें प्रयुक्त नहीं होता; तब लोकमें उस अर्थमें 'नमः' का प्रयोग निरस्त हो गया। तब बलात् आशीः-अर्थकी सिद्धि के लिए 'अन्न' अर्थ करना वादियोंका अपने असत्य-पक्षकी सिद्धिके लिए केवल बहानेबाजी ही है, वास्तविकता नहीं; क्योंकि—किसी प्राचीन-पुस्तकमें 'नमः' का 'अन्न' अर्थ लेकर आशीर्वाद अर्थ नहीं माना गया। और फिर इस पक्षमें यह भी नहीं जाना जा सकता कि—यहां नमस्कार किया गया है, वा आशीर्वाद दिया गया है, वा वज्र मारा गया है। जबकि-तटस्थ पुरुष व्यवहार-भेद नहीं जान सकता कि—इनमें कौन गुरु, और कौन शिष्य है? कौन इसकी बहिन है और कौन स्त्री है; क्योंकि—दोनों ही 'नमस्ते' का प्रयोग करेंगे। यदि कहा जाय कि-शब्दका अर्थ हमारे अधीन है; हम 'नमः' का अर्थ 'प्रणाम' न

करके 'यथायोग्य व्यवहार' अर्थ करेंगे—' यह भी ठीक नहीं। जिस शब्दके जो अर्थ आदि-कालसे प्रयुक्त हैं, उससे अन्य अर्थ बदलनेमें हमारा अधिकार नहीं। नहीं तो वादियोंको कोई 'मूढ' शब्दसे बुलावे, और कहे कि—मैंने इसका अर्थ 'समझदार' विचारा है, तब क्या उसे वादी स्वीकृत कर लेंगे?

जब कि—संसारमें परसा, परसू, परसराम इस प्रकार व्यवहारका अन्तर है, जब कि—गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, लघु-गुरु आदि सम्बन्ध-भेद हैं, और तदनुसार व्यवहार-भेद हैं; तब सबका अभिवादन-प्रत्यभिवादनमें समान-व्यवहार वा समान-पद नहीं हो सकता। 'अमुकगोत्रा अहं भोः! भवन्तमभिवादयामि' इस वाक्यसे स्वा. द. जीने सं. वि. (गर्भाधान ४२ पृष्ठ) में 'ऐसा वाक्य बोलके पतिको वन्दन अर्थात् नमस्कार करे' (पृ. ४२-४३) पतिको पत्नीका नमस्कार कराया है, और उसे 'भवत्' शब्द कहलाया है। गोभिलमें विवाह-प्रकरणमें भी स्वा. द. ने 'अहं भो अभिवादयामि' वधू-वर माता-पिता आदि वृद्धोंको प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें' कहलाया है, और फिर वृद्धों द्वारा वर-वधूको नमस्कार नहीं कराई गई। तब 'नमस्ते' कहना-कहलाना शास्त्र-विरुद्ध है। यहांकी टिप्पणी स्वा. द.के किसी शिष्यने प्रक्षिप्त कर दी है। अथवा स्वामीकी भी हो; पर उस टिप्पणीमें तो 'नमस्ते'का अर्थ अभिवादन वा वन्दन माना है, तब इसका 'आशीर्वाद' अर्थ स्वामीके मतमें भी न होनेसे इसका प्रयोग ग़लत सिद्ध हुआ। पतिको स्त्री 'तू' कैसे कहे? सं. वि. विवाह पृ. १५३

की टिप्पणीमें स्वामीने पतिद्वारा वधूको 'तेरे हाथको ग्रहण करता हूँ' यहां 'तेरे' कहलवाया है, और वधू-द्वारा पतिको 'आपके हस्तको ग्रहण करती हूँ' यहां 'आप' कहलवाया है, इसी स्वा. द. के वाक्य-भेदसे सिद्ध हुआ कि—वर वधूको 'ते' कह सकता है; और 'नमः' नहीं कह सकता; क्योंकि—'नमः' का अर्थ स्वामीके मतमें 'वन्दन'-नमस्कार है, आशीः नहीं। और वधू वरको 'ते' नहीं कह सकती। तब बड़ेको 'ते' कहना स्वामीके मतसे भी विरुद्ध सिद्ध हुआ। इसलिए वेदारम्भमें शिष्य-द्वारा गुरुको 'भवन्तं' कहलाया गया है, और गुरु-द्वारा शिष्यको 'त्वं विद्यावान् भव' तथा अन्य बड़ों द्वारा 'हे बालक! त्वं सर्वा विद्या अधीत्य आगम्याः' 'त्वं' शब्दसे कहलवाया है; अतः दोनोंका परस्पर 'नमस्ते' कहना स्वामीके मतमें भी ग़लत सिद्धहुआ। क्योंकि—दोनों एक-दूसरेको 'ते' कैसे कहें? 'जैसे आपने मुझको उत्तम विद्या देके, (समावर्तन पृ. १२१) में स्वामीने शिष्य-द्वारा आचार्यको 'आपने' कहलवाया है, 'यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वया उपास्यानि' हे शिष्य, उन्हींका आचरण तू कर, (वेदारम्भ पृ. १०६) यहां शिष्य को गुरु द्वारा 'त्वया' और 'तू' कहलवाया है; इसलिए दोनों स्थानोंपर 'नमस्ते' कट गया।

पहले नमस्कारमें 'अभिवादन' शब्द कहना भी हम दिखला चुके हैं; उसमें श्रीशेरसिंहका 'नमस्तेकी प्राचीनता' (पृ.१६) में यह कहना कि—'जबकि अभिवादन भी एक प्रकार का नाम है, फिर अभिवादन-शब्द मात्र कहना किस प्रकार

ठीक हो सकता है' यह कथन कट गया। मनुस्मृति भी इस 'अभिवादन' शब्दको मान चुकी है। मनुस्मृतिकी वैदिकता देखिए-'यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः' (२।७) अर्थात् मनुने जिसका जो धर्म बताया है, वह वेदमें कहा है, क्योंकि—मनु वेदका सब प्रकारका ज्ञान रखता है। स्वा. द. ने भी लिखा है—'सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषि-प्रणीत शास्त्र........ उन कर्मोंका सेवन उचित है' (स. प्र. १० पृ. १६२) गोभिल-आदि गृह्यसूत्रोंमें सर्वत्र 'अभिवादये' शब्द स्पष्ट है, 'यदभिवदति' इस अथर्व. (६।६।४) के मन्त्रका स्वामीने सं. वि. पृ. २७४ में 'अभिवादन करता है' यह अर्थ किया है। तब श्रीशेरसिंहका 'अभिवादन चारों वेदोंमें नहीं है' (नमस्तेकी प्रा.पृ. ५६) यह कहना उसकी वेदानभिज्ञताका सूचक है, उसके इस मतका स्वामीने स्वयं कचूमर निकाल दिया है। स्वयं भी अपने वचनसे वह खण्डित हो गया, अपनी पुस्तकके १६ पृष्ठ में 'अभिवादन' शब्दके निर्वचनके अवसरमें 'अभिवदन्ति जना अनेन अभिवादनम् अर्थात् मनुष्य भले प्रकार प्रणामादि करते हैं—इससे यह अभिवादन कहलाता है' यहां 'अभिवादन' शब्दको स्वयं प्रणामवाचक माना है। गोभिलगृह्यमें 'अनु-मन्त्रिता गुरुम् अभिवादयते' (२।३।१२), महाभारतमें 'चरणान् अभिवाद्य च' (शान्ति ७।१।३) 'प्रातः सायम् अभिवादनादीनि ते नित्यधर्माः' (सं.वि. वेदारम्भ पृ. ६३) 'प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना' (पृ. ६४) 'तात ! लवोऽभिवादयते'

(उत्तररामचरित) 'अभिवाद्य गुरुं' [शंखस्मृति ३।१२] 'अभिवादनशीलस्य' [मनु. ११।२१] 'ततोभिवादयेद् वृद्धान्' [याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय २६] 'प्रातरभिवादा इत्येते नित्यधर्माः' [गोभि. ३।१।२७, द्राह्यायणगृ. २।५।१६] 'गुरून् गोत्रेणाभिवाद्य' [गोभि. २।४।११] 'अभिवादये भगवंतं' (महाभा. १।३।३०, बोधायनगृ. २।५।५५, द्राह्या. १।४।५, वाल्मी. २।१८।२, २६।१, ४०।२-३, १२४।२, १२७।३६, इत्यादि, महाभारत शान्ति, ५०।१०, ५६।१, ५८।२६, ५६।३, ७१।४, वनपर्व १८४।६, आदिपर्व १७१।२; १७२।२) 'आनतशीर्षोऽभिवादयति' (वैखानसधर्म. २।१०।७-१०) 'आयुष्मान् भव सौम्य' (८), इत्यादि बहुत स्थल उद्धृत किए जा सकते हैं; इनसे अभिवादन-शब्द भी नमस्कार अर्थमें प्रयुक्त किया जा सकता है।

'अहं भो ! भवन्तमभिवादयामि' पर स्वा. द. की नमस्ते-विषयक टिप्पणीको हम पहले प्रक्षिप्त सिद्ध कर चुके हैं; वह टिप्पणी यह है—'इस-['अहं भो ! अभिवादयामि] से उत्तम 'नमस्ते' यह वेदोक्त-वाक्य अभिवादनके लिए नित्यप्रति स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य आदिके लिए है। प्रातः-सायं अपूर्व समागममें जब-जब मिलें; तब-तब इसी वाक्यसे परस्पर वन्दन करें'। यदि यह टिप्पणी स्वा.द.जी की भी मानी जाए, तब भी कपोलकल्पित है, क्योंकि—'न च हेतुमन्तरेण सिद्धिरस्ति' (न्याय. ५।१।१६) जबकि—स्वामीके कथनसे ही यह सिद्ध है कि—

यह वाक्य अभिवादन वा वन्दनाके लिए है ; तब 'नमस्ते' प्रत्यभिवादन या आशीर्वादके लिए सिद्ध न हुआ; तब नमस्कार-आशीर्वाद दोनोंमें ही इसका प्रयोग हो, यह वादियोंका कथन खण्डित हो गया।

किसी भी शास्त्रमें यह लिखा नहीं मिला कि—पिता, गुरु, पति-अपने पुत्र, शिष्य, पत्नी आदियोंको नमस्कारके उत्तरमें भी 'नमस्ते' कहें। न यह कहीं लिखा हैं कि—पुत्र आदि भी पिता आदियोंको 'नमस्ते' शब्द ही कहें। छोटे-बड़ेमें कहीं भी समान-व्यवहार नहीं कहा गया। 'नमस्ते' की उत्तमतामें 'वेदोक्तता' जो कारण सं. वि.की टिप्पणीमें कहा गया है, यह भी ठीक नहीं। वेदमें तो 'नमः, नमोस्तु, अभिवदति, वन्दे' आदि शब्द भी प्रयुक्त हैं ; यह हम इस निबन्धकी आदिमें कह चुके हैं। तब वे शब्द उत्तम क्यों नहीं ? यह भी प्रष्टव्य है कि 'अभिवादन' वाचक शब्द 'नमः' है, वा 'नमस्ते' ? यदि कहें कि--'नमस्ते'; तब इसमें प्रमाण न होनेसे यह अयुक्त है ; क्योंकि—यह एक शब्द नहीं—यह हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं। यदि कहा जावे कि—अभिवादनवाचक 'नमः' है ; तब 'नमस्ते' में आग्रह व्यर्थ है, 'ते' शब्द बड़ोंकी अप्रतिष्ठाका वाचक होनेसे और 'नमः' शब्द आशीर्वाद-वाचक न होनेसे सब विवादोंके मूल हैं। अतः उक्त टिप्पणी स्वा. द. की सिद्ध न हुई ; अथवा होती हुई भी शास्त्र-विरुद्ध वा निर्मूल सिद्ध हुई ; क्योंकि प्रणामःशीर्वादमें 'नमस्ते' ही कहना चाहिए, ऐसी विधि किसी भी विधि-शास्त्रमें वा वेदमन्त्रमें नहीं मिलती।

इतिहासमें भी कहीं 'नमस्ते'के उत्तरमें 'नमस्ते' नहीं मिलता।

कई कहते हैं—पिता अपने युवा पुत्रको भी 'नमस्ते' कहे ; क्योंकि—'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्' (चाणक्य ३। १८) १६वें वर्षमें पुत्रसे पिता मित्रवाला व्यवहार करे ; इस प्रकार गुरु स्नातक हो चुके हुए शिष्यको भी'। इसपर उत्तर यह है—इससे उनके मतमें भी १६वर्षोंसे पूर्व समान-व्यवहार न होनेसे 'नमस्ते'का खण्डन हो गया। १६ वर्ष वालोंसे भी सारा समान व्यवहार इष्ट नहीं ; किन्तु इस पद्यांशके पूर्वार्ध-'लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्' के अनुसार यह आशय है कि—'जैसे पिता या गुरु ७-८ वर्षके पुत्र वा शिष्यको पीटता है, डांटता है, चपेट लगा देता है ; उसका कान मरोड़ लेता है, १६ वर्षके पुत्रसे वा आचार्यकुलसे वाहर आये हुए शिष्यसे वैसा व्यवहार न करे'। इसका यह भाव नहीं कि—'पिता-पुत्र आदिके नमस्कार-आशीर्वादके व्यवहारमें भी विषमता न हो ; और दोनों एक-दूसरेको नमस्कार करें'। नहीं। पुत्र चाहे ५० वर्षका भी हो जावे ; तब भी पिताको नमस्कार ही कहे, और पिता उसको आशीर्वाद ही दे। और मित्रोंके भी समानतावश परस्पर नमस्कार आदिष्ट नहीं ; किन्तु नमस्कार तो आयु, योग्यता वा वर्णसे बड़ेको हो होती है, यह हम पहले सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं ; तब उक्त पद्यांशसे वादियोंकी इष्ट-सिद्धि नहीं।

[१३] कथनका निष्कर्ष यह है कि—आर्यसमाजियोंका 'नमस्तेवाद' और 'हठवाद' पर्यायवाचक शब्द हैं। 'ते' यह

सर्वनाम सामने वाले निम्नको कहना पड़ता है; परन्तु सदा इसी सर्वनामका प्रयोग नहीं करना पड़ता। कभी 'नमस्तस्मै' (अथर्व० ६।३।१२) इस वेद मन्त्रके अनुसार 'तस्मै' सर्वनाम का, कभी 'तेभ्यो नमोस्तु' (यजु. १६।६५) इसके अनुकूल 'तेभ्यः' सर्वनामका, और कभी 'अस्मै'का प्रयोग करना पड़ता है। कभी बहुतोंके सामने होनेपर अथवा एकको ही आदरार्थ बहुवचन देनेपर 'नमो वः, नमो भवद्भ्यः, नमः श्रीमद्भ्यः' आदि प्रयोग भी देने पड़ते हैं; परन्तु ये दुराग्रही लोग सभी स्थानोंमें 'ते' सर्वनाम घुसेड़ दिया करते हैं; जैसे मानो कि—'नमस्ते' एक पद होवे।

इसलिए वे लोग 'मम तस्मै नमस्ते भवेत्, मम सम्बन्धिभ्यो मम नमस्ते स्यात्' इत्यादि प्रयोग भी दे दिया करते हैं। कई मूढ तो 'मम भवते नमस्तेस्तु' कह दिया करते हैं। बहुतसे मूर्ख संस्कृतानभिज्ञ इसे एकपद मानते हैं। आर्यसमाजके शिक्षित व्यक्ति भी इन दोषोंको जानते हुए भी हठवादके कारण वैसा कहनेको तैयार हो जाते हैं। एक बहुत बड़े आर्य-समाज प्रेमी-विद्वान् मेरी उपस्थितिमें एक भजन बोल रहे थे—'जगत्की जननी जगत्की माता नमस्ते पहुंचे तुम्हें हमारा'। मैंने कहा कि—'पंडितजी; यह तो दुराग्रहकी सीमातीतता है। 'तुम्हें नमस्ते पहुंचे'में कितनी सख्त पुनरुक्ति है; जब आप 'नमस्ते'का अर्थ 'तुझे नमः' करते हैं; फिर 'तुम्हें' अलग क्यों कहते हैं? क्या 'नमस्ते' एकपद है?' यह सुनकर वे चुप्पी साध गए। क्या उत्तर दें। यही हाल 'नमस्ते' ट्रैक्ट वालोंने किया

है—'मैं आपको नमस्ते करता हूँ' ('नमस्ते-विधान' पृ. ५) श्री. शेरसिंहने लिखा है—'हां, आपका यह कहना कि—यह नमः और नमस्तेको एकार्थवाची ही कहते हैं, सो यह किसी आप ही जैसे हठीने कह दिया होगा' (पृ. १६) इस प्रकार 'नमस्ते की प्राचीनता'में हठ मानकर भी उसीने पृ. २६ में लिखा है—'हे राक्षस-श्रेष्ठ! मैं तुझे नमस्ते करती हूँ' यहां उसने 'नमस्ते' का 'नमः' वाला अर्थ करके अपने हठका परिचय दे दिया। जो कि उसीने १६ पृष्ठमें लिखा है—'सब जानते हैं कि—यह भेद है, जब मध्यम-पुरुषके एक वचनसे सम्बन्ध होता है, तब 'नमस्ते' होता है; प्रथम-पुरुषके सम्बन्धमें नमः ही रहता है'; तब 'उसको मेरी नमस्ते हो' यह वाक्य उसके मतमें प्रथम-पुरुषका है, तब उसमें 'नमस्ते' कहते हुए आर्यसमाजी हठी सिद्ध हुए। इस प्रकार डा. सूर्यकान्त M.A.M.O.L. शास्त्री व्याकरणतीर्थ प्रो. डी. ए. वी. कालेज लाहौरने अपने 'सूर्य-व्याकरण'के १५ पृष्ठमें एक वाक्य लिखा था—'कृष्णने गुरु-कुलमें जाकर आचार्य सान्दीपन मुनिको नमस्ते की' यह शास्त्रीका कैसा हठ है? यहां नमस्तेको एक-पदवत् प्रयुक्त किया गया है। यहां 'नमस्कार की', अथवा 'नमः' यही वाक्य उचित है—उसमें 'ते'के घुसेड़नेकी गुंजाइश केवल हठवाद वा ट्रेडमार्क बतानेके लिए है; स्वतः नहीं। इतनी अशुद्धियोंके उपस्थित होनेपर भी 'नमस्तेको न छोड़ना—यह कितना हठवाद है! यदि यह लोग नमस्ते,में ठहरे हुए, विवादास्पद और व्यभिचारी (सदा न रहने वाले) 'ते'को—जिसका अभिवादन

अर्थसे सम्बन्ध नहीं ; हटा दें, तो अधिकांशमें 'हठवाद'का अन्त हो जावे ।

यदि वेद भी वादियोंकी तरह हठी होता ; तो 'नमामसि' (अ. ३।८।५) न कहकर 'नमस्ते कुर्मः' कहता । 'नमस्यन्तः' (अ. ११।२।२)में 'नमस्तेकुर्वन्तः' कहता । 'नमस्कारेण नमसा' (अ. ४।३६।६) यहां भी 'नमस्तेकारेण' कहता । 'नमस्कृत्य द्यावा-पृथिवीभ्यां' (अ. ७।१०७।१)में 'नमस्ते कृत्वा' कहता । 'नमोवाके' (अ. १३।६।५, ऋ. ८।३५।२३)में 'नमस्तेवाके' कहता । 'नमस्तस्मै' (अ. ६।३।१२)में 'नमस्ते तस्मै' कहता । 'तेभ्यो वो नमः' (अ. ३।२६।१) 'नम एभ्यो अस्तु' (अ. ३। २७।१) आदि बहुवचनोंमें भी 'नमस्ते' पढ़ता । 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः, (यजुः १६।२५)में भी 'गणपतिभ्यश्च नमस्ते नमस्ते' पढ़ता । 'नमो वः पितरः' (अ. १८।४। ८१-८६) 'ब्राह्मणेभ्य इदं नमः' (अ. ६।१३।३) इत्यादिमें 'नमस्ते पितरः' 'ब्राह्मणेभ्यो नमस्ते' कहता । 'नमो वां भगवन्तौ!' (गोपथब्रा. १।२।५) यहां 'नमस्ते भगवन्तौ' कहता । परन्तु वेदने ऐसे प्रयोग नहीं दिये, इससे स्पष्ट है कि—वेद 'नमस्ते'का पक्षपाती वा आग्रही नहीं । स्वा. द. ने यजुर्वेदके संस्कृत भाष्य २।१६ मन्त्रके भावार्थमें कहा है—ईश्वरो वदति— हे मनुष्याः ! यूयं......मां च सततं नमस्कुरुत' यहां ईश्वरने 'नमस्ते कुरुत' नहीं कहा । 'हे जगदीश्वर ! तुभ्यं स्वाहा, नमश्च नित्यं कुर्मः' (स्वा. द. यजुर्भाष्य २।२० अन्वय) यहां 'नमस्ते-कुर्मः' नहीं कहा ; तब सर्वत्र 'नमस्ते'का प्रयोग करना

'हठवाद' ही है ।

इसलिए वैदिकम्मन्योंको उचित है कि—'नमस्ते' छोड़कर 'नमस्कारः, नमः, नमो-नमः, नमोस्तु, वन्दे, अभिवादये' इत्यादि वेदसम्मत नमोवादका ही प्रणामके समय उपयोग करें—। इसीलिए वेदमें 'भूयिष्ठान्ते नमः उक्तिं विधेम' (यजुः ४०।१६) 'नमो भरन्तः' [ऋ. १।१।७] इत्यादि कहा है, 'नमस्ते-उक्तिं' और 'नमस्ते भरन्तः' नहीं कहा । सर्वनामके प्रयोगको श्रोता स्वयं जान लेगा । इसमें कोई अशुद्धि भी नहीं होगी ; और कोई विवाद भी नहीं होगा । बल्कि 'नमः' शब्दके कहनेकी भी आवश्यकता नहीं, बड़ेके चरणोंको छूकर वन्दना की जा सकती है ; जैसेकि वाल्मी. रा. में—'नाम स्वं श्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः' [२।३।३३] किसी भी शास्त्रमें 'नमस्ते' के उच्चारणकी विधि नहीं की गई; तब यह शब्दोच्चारण सिर्फ अंग्रेजोंका वा मुसलमानोंका अनुकरण है । यदि कोई शब्द बनाना भी हो ; तो 'नमः' वा 'नमो नमः' वा नमस्कारका प्रचार कीजिए ।

परन्तु आशीर्वादके लिए अन्य पद ढूंढना पड़ेगा । मनुस्मृतिके अनुसार 'आयुष्मान् भव' है । यदि वेदके शब्दका ही आग्रह हो ; तो 'शं ते' [यजु. २३।४४, अथर्व. २।१०।२-३, १४।१।४०, १८।३।६०, १९।२।१-२] 'शमस्तु' [अ. १।१२। ४] इत्यादि, तथा बहुवचनमें 'शं नो मित्रः' [ऋ. १।९०।९] लिङ्ग देखकर 'शं वः, शं भवद्भ्यः' इत्यादि, अथवा 'स्वस्ति न इन्द्रः' [सामवेद]. के अनुसार 'स्वस्ति' शब्दका प्रयोग

व्यवहर्तव्य है। यदि कोई हठी 'नमस्ते' कहना न छोड़े; तो आप उसे 'शमस्ते' शब्दसे आशीर्वाद दे दिया करें; क्योंकि-वे 'शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः! तीन प्रकारकी शान्ति चाहते हैं; तब शान्ति की आशीः उन्हें युक्त है ही।

[१४] वादी कहते हैं-हम 'नमस्ते'में इस कारण आग्रह करते हैं-यह एक शब्द इसी रूपमें सब स्थान रहता है। एक शब्द जाति-संघटनको सूचित करता है। यह भी ठीक नहीं। यदि बहुत पुरुष सामने हों; वा एकको ही सम्मानमें बहुवचन देना हो; तो वहां 'नमो वः' यह परिवर्तन करना पड़ेगा। क्योंकि-हम सिद्धकर चुके हैं कि-यह एकपद नहीं। आशीः में भी इसे बदलना पड़ेगा; क्योंकि-यह आशीर्वाद-वाचक नहीं—यह हम पूर्व सिद्धकर चुके हैं। यदि भिन्न-भिन्न शब्द जातिकी अनेकता सूचित करते; तो वेदादिमें नमः आशीःमें सर्वत्र 'नमस्ते'से भिन्न शब्द कहीं न होता। वेदादि-में कहीं 'नमस्ते'के प्रत्युत्तरमें भी 'नमस्ते' नहीं कहा गया। जाति-संघटनके उपाय अन्य होते हैं; एक शब्दका कथन नहीं? नहीं तो जाति-संघटनके इच्छुक हमारे प्राचीन भी एक शब्द प्रचलित करते। न करनेसे वादियोंका यह व्याज अनुप-पन्न है; केवल इससे आर्यसमाजकी वृद्धि दीखती है; अन्य कुछ नहीं। जातिमें जब उच्च-नीचता है; तो एकपद नहीं हो सकता; नहीं तो पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य आदि व्यवहारकी विषमता भी हटा देनी पड़ेगी। नहीं तो फिर 'सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः' (मनु. २।७२) यह चरण-

वन्दना गुरु-शिष्यकी भी बराबर होनी चाहिए। कइयोंका यह विचार होता है कि-'शिष्टाचारार्थक कोई एक शब्द होना चाहिए'। इसपर जानना चाहिए-गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बड़े-छोटेका शिष्टाचार कभी समान-शब्दसे नहीं हो सकता। क्योंकि-बड़ेका छोटेको आशीर्वाद देना और छोटेका बड़ेको नमस्कार कहना यह शिष्टाचार है, इसमें समान-व्यवहार विरुद्धाचार है। समान-शब्द वहां हो सकता है-जहां नमस्कार-आशीःकी बात न हो। वहांपर जयश्रीकृष्ण, अथवा 'वन्दे मातरम्' वा 'जयहिन्द' 'जयभारत' आदिका प्रयोग किया जा सकता है। अथवा यदि वेदका आग्रह हो; तो 'नमो मात्रे पृथिव्यै' (यजु. ९।२२) यही कहें।

[१५] कई कहते हैं—'ब्राह्मण परस्पर नमस्कार करते हैं-उसमें यदि दोष नहीं है, तो परस्पर 'नमस्ते' में क्या दोष है'? इसपर जानना चाहिए कि-यदि ब्राह्मण लोग भूल करें; तो क्या दूसरोंको भी जरूरी ही भूल करनी चाहिए?

वस्तुतः उनमें भी छोटे-बड़ेका परस्पर नमस्कार नहीं हुआ करता; किन्तु परस्पर-प्रणामाशीर्वाद ही होता है। तथापि कइयोंमें परस्पर नमस्कारका व्यवहार दीखता है; उसमें कुछ तो अज्ञान है, कुछ अन्य कारण हैं। वे यह हैं। एक आयुमें छोटा ब्राह्मण योग्यतामें तो बड़ा होता है, पर दूसरे अपनेसे आयुमें बड़ेको अपना कर्तव्य समझकर नम-स्कार करता है; पर वह बड़ा उस छोटेको अपनी अपेक्षा योग्यतामें बड़ा मानकर 'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं

शिरः। यो वै युवा (कनिष्ठो) ऽप्यधीयानः तं देवाः स्थविरं विदुः' 'योऽनूचानः स नो महान्' (२।१५६-१५४) इस मनुजीके कथनसे उसे ज्ञानपूर्वक नमस्कार करता है। जैसे कि-भगवान् राम क्षत्रिय होनेसे ब्राह्मणोंको नमस्कार करें; और ब्राह्मण श्रीरामको भगवान्के अवतार होनेसे प्रणाम करें। भीष्म-श्रीकृष्ण भगवान्को देवदेवेश होनेसे नमस्कार करें; और श्रीकृष्ण स्वयं क्षत्रिय-वर्णमें अवतीर्ण होनेसे आयुमें बड़े क्षत्रिय-भीष्मको नमस्कार करें। माता कौशल्या पुत्र होनेपर भी श्रीरामको देवदेव होनेसे नमस्कार करें, और श्रीराम बालकताके कर्तव्यसे माताके चरणोंको वन्दित करें। परन्तु यह विशेष-विशेष व्यक्तियोंका प्राईवेट-व्यवहार हुआ करता है; फिर भी इसमें भी छुटपन और बड़प्पनका विचार होता है; छोटापन आयुमें और बड़प्पन योग्यतामें। कई समान भी परस्पर नमस्कार करते हैं; वहां कारण यह होता है कि-वे एक-दूसरेको अपनेसे अधिक योग्यता वाले समझते हैं। तथापि यह 'प्राईवेट' व्यवहार होते हैं। प्राइवेट-व्यवहार वा प्रचलित-व्यवहार अनुसर्तव्य नहीं होते; किन्तु शास्त्रीय-व्यवहार ही अनुसर्तव्य होते हैं। और उनमें अप्रतिष्ठाकारक 'ते' (तुभ्यम्) भी वे प्रयुक्त नहीं करते; और वे योग्यता वा आयुमें बहुत छोटोंको कभी भी नमस्कार नहीं करते; तब वादियोंका यह विषम-उपन्यास है।

(१६) 'नमस्ते'के अधिक-प्रचारमें न तो उसकी वैदिकता कारण है, और न ही आर्यसमाजियोंकी कार्यदक्षता। इसमें

तो सनातन-धर्मियोंका ढीला-ढाला विरोध ही कारण है। जिस वस्तुका विरोध किया जावे; वह बढ़ती ही है। इसमें बीरबल वाली वह कहानी ठीक घटती है। एक मूर्ख पुरुषने आकर बीरबलको कहा कि-मुझे लोग 'पण्डित' कहें, ऐसा कोई सुगम उपाय बताइये। बीरबलने कहा कि-यह तो कुछ कठिन कार्य नहीं है। जो तुम्हें 'पण्डित' कहे; तो तुम चिढ़ने लग जाओ, और मारने दौड़ो। उसने मान लिया। बीरबलने एक पुरुषको कहा कि-इसे पण्डित कहो; तो चिढ़ता है। उसने उससे कहा-क्यों पण्डितजी! ऐसा है?। तब तो वह उसे पीटने दौड़ा। दूसरेने पूछा-यह तुम्हें क्यों पीटता है?। उसने कहा कि-पण्डित कहनेसे यह पीटता है। दूसरेने कहा कि-पण्डितजी! यह बात ठीक है? वह उसे भी पीटने दौड़ा। इस प्रकार उसका 'पण्डित' नाम प्रसिद्ध हो गया। कुछ समयके बाद बीरबलने कहा कि-अब चिढ़ना बन्द कर दो। फिर भी उसका नाम पण्डित प्रसिद्ध बना ही रहा।

'नमस्ते' शब्दका आरम्भमें सनातन-धर्मियोंने ढीला-ढाला विरोध किया; स्वा. द. का विरोध किया, आर्य-समाजका विरोध किया; उसके फलस्वरूप ही अब यह एक बड़ी दूकानदारी चल निकली है, और 'नमस्ते' भी तूल पकड़ गया। सुधारकोंसे किये जाते हुए अन्त्यजोंके मन्दिरप्रवेशमें सनातन-धर्मियोंने विरोध किया; उसका फल यह हुआ कि-अब आर्यसमाजी भी मन्दिरोंमें अन्त्यजोंको ले जाते हैं; और इस विषयमें सनातनधर्मियों से शास्त्रार्थ भी करते हैं। मूर्तिपूजामें

अविश्वस्त भी श्रीगांधीजी ट्रावनकोरके मन्दिरमें अन्त्यज-प्रवेशसे मन्दिरकी परिक्रमा भी करने लगे, और तुलसीदल-मिश्रित चरणामृत भी लेने लगे।

और देखिए--द्विजोंके चोटी रखने एवं उपनयन-सूत्र पहननेका सनातन-धर्मियोंने कभी विरोध नहीं किया; उसके फलस्वरूप सुधारकमण्डली तथा उनके नेता श्रीगांधीजीने भी चोटी-जनेऊ छोड़ दिये। सनातनधर्मी स्त्री-शूद्रोंके उपनयनका ही विरोध करते हैं; आर्यसमाजियोंका भी स्त्री-शूद्रों को ही उपनयन-सूत्र पहनानेमें अधिक ध्यान है।

धार्मिक-लोग मद्य-मांसके प्रचारका विरोध करते हैं, वह बढ़ता ही जाता है। हिन्दु गोवधका विरोध करते हैं, मुसलमान तथा कांग्रेसी उधर ही अधिक ध्यान देते हैं। इसलिए सिद्ध हुआ कि--किसी व्यवहारके प्रचलनमात्रसे उसकी वैदिकता नहीं हो जाती; न इससे उसके प्रचालकोंका ही अतिशय-प्रभाव कारण कहा जा सकता है। अन्य कारण यह है कि--इस शब्दको अंग्रेजी विद्वान् वकील आदि तथा अन्य सरकारी सर्वेण्टोंने जिनसे जनताको प्रति समय काम रहता है--अपना लिया। उनका साधारण जनतापर बहुत प्रभाव हो जाता है। उन्हीं सुधारकोंका जनतापर प्रभाव पड़ा कि--उसने उनकी भांति चोटी-जनेऊ भी हटा दिये। खड़े होकर पेशाब करना भी सीख लिया। हैट-कोट-पेण्ट आदि पहनने भी सीख लिये। 'नमस्ते' भी सीख लिया।

(१७) कइयोंका विचार है कि--'नमस्ते' कहनेसे ईसाई-

मुसलमान डर जाते हैं; और जाति-संघटन तथा परस्पर प्रेम भी रहता है, यह सब हेत्वाभास हैं। 'करः खलु निवार्यते प्रहरतो न वक्तुर्मुखम्' चोट कर रहे हुए का हाथ तो रोका जा सकता है; पर बोलने वालेके मुंह पर ताला कैसे पड़े? 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी'।

यदि 'नमस्ते'से ही भय होता; तो ईसाई-मुसलमान कभीके गुम होगये होते। कई स्थान हिन्दु-मुसलमानोंके दंगे होते रहते हैं; वहां 'नमस्ते' कहकर उन्हें क्यों नहीं डरा दिया जाता? बल्कि जिस समयसे 'नमस्ते' का प्रचार हुआ, विविध कलह भी जारी हुए। 'नमस्ते' प्रचारक आर्यसमाजमें भी घास-पार्टी, मांसपार्टी, गुरुकुलपार्टी, कालेजपार्टी, बाबूपार्टी, पण्डित-पार्टी आदि बहुत पार्टियां बनीं; उनके परस्पर विवाद हुए। इससे स्पष्ट है कि--'नमस्ते' शिष्टाचार नहीं; किन्तु एक साम्प्रदायिक-शब्द है; तथा 'हठवाद'का पर्यायवाचक है। इसके प्रचारसे बहुत-सी अशुद्धियां उपस्थित होती हैं, बड़ोंकी अप्रतिष्ठा होती है। अतः इसका प्रचार हटाकर 'नमो-नमः' अथवा 'नमस्कार' तथा 'स्वस्ति' इनका यथायोग्य प्रचार करना चाहिए।

'नमस्ते'-विषयक मुख्य तर्कोंका समाधान कर दिया गया। यदि पाठकोंने कई उसकी सिद्धिमें अन्य सबल युक्तियां सुनी हों; या इस विषयके कई अच्छी वा नई युक्तियों वाले ट्रैक्ट देखे हों; उन्हें हमारे पास भेजें; अग्रिम पुष्पोंमें उनपर विचार किया जावेगा। अब श्री सन्तराम बी. ए. लिखित

'नमस्ते-प्रचार' ट्रैक्टकी आलोचना तथा एक अन्य निबन्ध देकर यह विषय समाप्त किया जायगा।

(१२) 'नमस्ते-प्रचार'-समीक्षा

पाठक 'नमस्ते और हठवाद' आदि निबन्ध पढ़ चुके। अब श्रीसन्तराम बी० ए० वेदरत्न-लिखित 'नमस्ते-प्रचार' की समीक्षा दी जायगी। हम उनका प्रायः 'वादी' नाम से निर्देश करेंगे। इसकी पृष्ठ संख्या 'नमस्ते-प्रचार' की प्रथमावृत्तिसे दी गई है।

पृ. १ पंक्ति १—'महर्षि-दयानन्दके उपदेशानुसार अन्य विषयों से बहुत अधिक प्रचार सामाजिक और असामाजिक लोगोंमें आपसमें 'नमस्ते' कहकर सत्कार करनेका हो चुका है।'

समीक्षा—इससे प्रतीत हुआ कि—स्वा.द.से पहले कभी भी 'नमस्ते'-प्रचार नहीं रहा, यह स्वामीके ही दिमागकी उपज है। और स्वामी जीके अन्य विषयोंका जो बहुत अधिक प्रचार नहीं हुआ, शायद वे अन्य विषय अवैदिक हों। शेष 'नमस्ते' के अधिक प्रचारका कारण हम 'नमस्ते अथवा हठ-वाद' में कर चुके हैं, वास्तविक कारण वही है।

पृ. १ पं. ५—'पर कहीं-कहीं सत्यविद्रोही स्वार्थी लोग कई प्रकारके झूठे दोष गढ़कर संस्कृत भाषा और लौकिक व्यवहार से हीन लोगोंको......नमस्तेपर सन्देह पैदा करनेका यत्न कर रहे हैं।'

समीक्षा—यह बात गलत है। नमस्तेका खंडन करनेवाले सत्यविद्रोही तथा स्वार्थी नहीं हैं। सत्यविद्रोही वादी ही हैं; जो युष्मद्-शब्दके एक-वचनको अन्य सभी स्थानोंमें अमान्य मानते हुए भी केवल 'नमस्ते' में उत्तम मानते हैं। यह साम्प्रदायिक-दृष्टिकोण होनेसे सर्वथा स्वार्थ है।

पृ. १ पं. १३—'नमस्ते कहना न केवल शास्त्र-सम्मत है किन्तु वेदोक्त होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ भी है'।

स०—इसकी समीक्षा हम गत-निबन्धमें कर चुके हैं।

पृ. १ पं. १६—'छोटे बड़े, नीच ऊंच...में नमस्ते करना लोक वा शास्त्र सिद्ध है'।

स०—इसकी समीक्षा पूर्व निबन्धोंमें हो चुकी है।

पृ. २ पं. १—'नमस्तेकी पुष्टिमें इससे पूर्व भी कई लेख तथा पुस्तक आर्य-विद्वानोंकी ओरसे निकल चुके हैं, पर यह पुस्तक सबसे बड़ा और अधिक-पुष्ट प्रमाणोंसे भरा हुआ है।'

इससे स्पष्ट प्रतीत हुआकि—अन्य आर्यसमाजी पण्डितोंके प्रमाण त्रुटि-युक्त तथा शिथिल हैं। अब आपका खण्डन हो जानेसे सबका मटियामेट हो जायगा।

पृ. ३ पं. ८—'नमस्ते' यह शब्द नमस् और 'ते' के योगसे बना है'।

परन्तु सभी आर्यसमाजी इसको एक ही पद मानते हैं, तभी तो बहु-वचनमें अथवा अन्य सर्वनामोंकी आवश्यकतामें भी इसीका प्रयोग करते हैं। इस कारण शेष-आर्यसमाजियोंके मतमें वादीका पक्ष अशुद्ध सिद्ध हुआ।

... पं. ९—'नमस् अव्यय तथा धातुपाठमें आये 'णम् प्रह्वत्वे

शब्दे च' धातुसे 'अत्यविचमितमिएमि' (उणादि. ३-११७) इत्यादि सूत्रोंसे नमस् पद सिद्ध होता है।

समीक्षा—यहां पर वादीने 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' यही न्याय सिद्ध किया है। यहांपर 'अत्यविचमितमिएमि' इस सूत्र को 'नमम्'की सिद्धिमें देकर वादीने अपनी व्याकरण-शून्यताका परिचय दिया है। उक्त उणादिसूत्रसे तो 'नमसः' इस अकारान्त पदकी सिद्धि होती है, हलन्त 'नमस्' अव्ययकी नहीं। यहां पर तो 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' (उणादि० ४-१८६) इस सूत्रसे ही 'नमस्'की सिद्धि होती है, वादीके लिखे सूत्रसे नहीं। और जब कि—धातुपाठमें णम् धातुका अर्थ प्रह्वत्व लिखा है—यह वादी मानते हैं, तब उसका पक्ष खण्डित हो गया। प्रह्वत्व कहते हैं कि—नीचे होना। सो बड़ेके सामने ही नीचे होना हो सकता है, छोटेके आगे नहीं। इस कारण वादीका 'नमः' प्रयोग सर्वत्र सिद्ध न हो सका। इसी कारण अमरकोषमें 'नमो नतौ' (३।४।१८) इस प्रकार 'नमः' शब्द झुकने अर्थ में लिखा है। 'नमस् पूजायाम्'का भी यही अर्थ विवक्षित है।

अब वादी 'ते' शब्दकी सिद्धि करता है।

पृ. ४ पं. १—"तेमयावेकवचनस्य' इत्यादि पाणिनीय-सूत्रोंसे तथा 'एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः, एकतिङ् वाक्यम्' आदि कात्यायन-मुनिकी वार्तिकायों (?)से नमस्ते शब्द पूजार्थमें सिद्ध होता है।

समीक्षा—जबकि-वाक्यका लक्षण वादीने एकतिङ् माना

है, तब क्या 'नमस्ते' में एकतिङ् है? यदि नहीं, तब तो एकतिङ् के न होनेसे उन्हींके अनुसार 'नमस्ते' अशुद्ध सिद्ध हुआ। यदि वादी कहें कि 'अस्तु'का अध्याहार हो जावेगा, तो 'माऽस्तु, का भी अध्याहार हो सकता है। तब फिर पूजाका भी खंडन हो गया। अब वादीको चाहिए कि 'नमस्तेऽस्तु'का प्रचार आरम्भ करें।

आगे लिखते हैं कि—'इनसे नमस्ते-शब्द पूजार्थ सिद्ध होता है'। यहां वादी धोखा देता है, 'नमस्ते' शब्द तो पूजार्थ सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि 'नमस्ते' एक शब्द नहीं, यहां वादीको लिखना चाहिए कि 'नमस्, शब्द पूजा-अर्थमें सिद्ध सिद्ध होता है,' इसमें हमारा भी कोई विरोध नहीं। जब वादी भी 'नमस्ते'को एक शब्द मानते हैं, तब उसका पूर्व-पक्ष स्वयं वादीके ही उत्तर—पक्षसे खंडित हो गया। अन्यथा वह नमस्ते शब्दको पूजार्थक न मानता; क्योंकि यह एक शब्द नहीं।

पृ. ४ पं. ६ 'कई व्याकरण-शून्य 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' से 'नमस्ते' को अनुदात्त बताते हैं, पर यह उनकी भूल है। क्योंकि नमस्-शब्द असच् प्रत्ययके कारण 'चित्' है इसलिए यहां 'चितोऽन्त उदात्त'से मकार उदात्त हुआ। पुनः 'ते' आगे अनुदात्त है, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, इससे स्वरित हुआ और मकारमें उदात्त स्वर हुआ है।

समीक्षा—वादीने इससे दूसरोंको व्याकरण-शून्य नहीं

बतलाया, बल्कि अपना ही व्याकरण-शून्य होना सिद्ध कर दिया है। हम बतला चुके हैं कि नमस् में असुन् प्रत्यय है, असच् नहीं। असच्-प्रत्ययमें तो 'नमसः' यह अकारान्त प्रयोग बनता है, परन्तु वादीके स्वामीको तो नमस् हलन्त अभीष्ट है। सो इसमें असुन् प्रत्यय है। 'नित्, होनेसे 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्,' से आद्युदात्त हुआ। शेष मकारस्थ अकारको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस स्वरपरिभाषा-सूत्रसे अनुदात्त हुआ। मकारको उदात्त स्वर लिखना भी वादीकी व्याकरण-शून्यताका परिचायक है, क्योंकि उदात्तादि-स्वर अच्को होता है, हल्को नहीं।

अस्तु। जब 'न'में अकार 'उदात्त' हुआ और 'म'में अकार अनुदात्त हुआ, तब 'उदात्तादनुदात्तस्य' इस सूत्रसे मकार-स्थित अकारके अनुदात्तको 'स्वरित' हुआ। वैसा ही वेदमें देखा गया है। उसके बाद 'ते'में जो अनुदात्त है, उसको 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्रसे प्रचय हो जावेगा। प्रचय का कोई चिन्ह नहीं होता। यदि उसके आगे कहीं उदात्त वा स्वरित हो तो समान-वाक्यमें उस अनुदात्तको 'अनुदात्ततर' हो जायेगा। यह वादी-जैसा व्याकरणशून्य भला क्या समझे? इनको तो दूसरोंसे सुन-सुनाकर लिखनेके समय नाम अपना ही कर देना है।

पं. १३–जो 'नमस्ते'को 'न–मस्ते' अर्थ करके पढ़ते हैं, वे न केवल विवक्षा न जान छल-कपट आदिसे साहित्य-हत्या करते हैं'।

स० ? न–मस्ते कहकर अर्थ करना तो आप लोगों पर

उपहास है कि आप लोग शून्य-मस्तक रहते हैं। यदि कोई कहे कि 'लाला जी नमस्ते, चलो पाखानेके रस्ते' जैसा कि आर्यसमाजी छोटे-बच्चे कहा करते हैं, तब वादी क्या इसका यही अर्थ समझ लेंगे? यह उपहास तो एक-दूसरों पर हुआ करते हैं। आपके भाई सनातन-धर्मियोंको 'सड़ातन-धर्मी' कहते हैं, तब आप लोग 'वे न केवल विवक्षा न जानकर छल-कपट आदिसे साहित्य-हत्या करते हैं,' इस अपने वाक्यको क्यों भूल जाते हैं? यहां पर वादी अपने स्वामीजीका वाक्य सदा याद रखें—"परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं, जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरोंके दोष देखनेमें अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्यायकी बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख-निकालके पश्चात् दूसरेके दोषोंमें दृष्टि देके निकालें, (सत्यार्थ-प्रकाश १२ समुल्लासकी अनुभूमिकामें पृ. २५५)।

पं. १८ आगे वादि-महाशय इस उपहाससे इतना चिढ़े कि 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्" इन सनातनधर्मी-वचनोंको भी प्रमाण मानने लग गये। इससे वृत्रासुरका होना तथा इन्द्रसे उसका मारा जाना तथा मन्त्रोंकी सामर्थ्य इत्यादि पौराणिक कही जाती हुई बातें सिद्ध हो गई।

पृ. ५की अंतिम पंक्तिमें वादी सिद्धांतकौमुदीके 'शालीनां ते ओदनं दास्यामि' आदि उदाहरणोंसे गद्यमें भी 'नमस्ते' सिद्ध करते हैं। परन्तु यदि वादी सिद्धांत-कौमुदी पर चलते हैं, तो 'नमस्तेऽस्तु' यही वाक्य उनको रखना पड़ेगा। क्योंकि वहां

पर वाक्यमें ही 'ते' आदेश लिखा है। वाक्यका लक्षण वहां 'एकतिङ् वाक्यम्' दिया है, जैसे आपने भी उधृत करके स्वीकृत किया है। वहां पर सभी तिङ्युक्त ही उदाहरण हैं। परन्तु आपके 'नमस्ते'में 'तिङ्' नहीं है। इस कारण आपके उदाहरणमें साम्य सिद्ध न होनेसे आपका पक्ष खण्डित हुआ।

पृ. ६ पं. ११ में आपने 'टि' में प्लुतोदात्तविधिकी शंका का उत्तर लिखा है, पर यह स्पष्ट है कि—आपसे ठीक उत्तर नहीं बन पड़ा, क्योंकि—आपको व्याकरणका अन्तरङ्ग ज्ञान सर्वथा नहीं। यह उत्तर भी आपने किसी अधकचड़े व्याकरण-के जानने वालेसे पूछकर लिखा है। वास्तवमें 'नमस्ते' प्रत्यभिवाद-वाक्य ही नहीं। सनातनधर्मी इसे प्रत्यभिवाद-वाक्य मानते ही नहीं। शेष वह जो इस पर प्रश्न करते हैं, वह तो दुर्जन-तोषन्याय से समझना चाहिए।

पृ. ६ की अन्तिम पंक्तिमें वादीने 'नमस्ते'के 'स्' को 'त्' क्यों न हो, इस प्रश्नका उत्तर दिया है; वह व्यर्थ है। ऐसा प्रश्न कभी किसी भी ओरसे नहीं किया गया। 'रामस्य' प्रयोगमें इस विषयका शंका-समाधान सनातन-धर्मी विद्वान् जानते ही हैं। और वादीने जो 'नमस्कार' शब्दपर वही बात घटाई है, इससे मालूम होता है कि—वादी शायद 'नमस्कार' शब्दको अवैदिक मानते हैं। यदि ऐसा है तो स्पष्ट है कि—उसने वेद भी कभी नहीं देखा। वेदमें 'नमस्कार' शब्द भी आया है। इसमें गत-निबन्ध देखें।

पृ. ७ पं. १० 'नमस्तेके अर्थ'।

यह शीर्षक ही ग़लत है। यहां पर 'नमस्‌के अर्थ' यह शीर्षक तो लिखा जा सकता है, 'नमस्तेके अर्थ' शीर्षक ठीक नहीं, क्योंकि—यह दो भिन्न-पद हैं, एक नहीं। वैदिक वा लौकिक कोषोंमें 'नमस्ते' शब्द कहीं नहीं मिलेगा। यह हमारा चेलेञ्ज है। 'नमस्' शब्द ही मिलेगा, 'नमस्ते' शब्द नहीं। सनातन-धर्मको 'नमः' से प्रणाम-अर्थमें कोई विरोध नहीं।

पृ. ८ पं. १० में—'नमस्ते-नमस् और ते के योगसे बना है। 'ते'के अर्थ तो निर्विवाद सब लोग तुझे या तेरे लिए ही करते हैं, भेद केवल 'नमस्'के अर्थोंमें है।'

समीक्षा—भला हो वादीका, उसने तो 'नमस्ते'की बनी-बनाई दीवारको सदाके लिए तोड़-फोड़ दिया। सनातनधर्मी प्रायः इसीलिए तो इसका विरोध करते हैं कि—इसमें 'ते' शब्द है। वे 'नमस्'का तो स्वयं नमस्कारार्थमें प्रयोग करते ही हैं। शेष वे बड़ेके लिए 'ते' शब्दका कभी प्रयोग नहीं करते क्योंकि—वे जानते हैं कि—'ते'का अर्थ 'तुझे वा तेरे लिए' है। जब वादी भी इसका यही अर्थ मानते हैं, तब तो इसका खण्डन स्वयं उनने ही कर दिया। क्योंकि—वर्तमानमें बड़ेको कोई किसी भी भाषामें 'तुझे' नहीं कहता। वादी भी बड़ेके लिए 'तू तुझे' आदि शब्दका प्रयोग क्या उचित समझते हैं? वा और कोई प्रतिष्ठित-व्यक्ति अपने लिए 'तूं-तड़ाक'का प्रयोग स्वीकृत कर सकता है? अथवा वादीने अपनी किसी पुस्तकमें किसी प्रतिष्ठित-पात्रको छोटेके द्वारा 'तूं-तड़ाक' कराई है? जबकि—'ते'का अर्थ 'तुम्हारे लिए' भी नहीं, किन्तु 'तेरे लिए' है,

तब 'आपके लिए' यह उसका अर्थ कैसे हो सकता है?

पं. १२—वैदिक लोग तो 'नमस्'के सत्कार एवं अन्न, वज्र, पूजन आदि नानार्थ प्रसंगके अनुसार करते हैं, और अवैदिक लोग केवल झुकना वा पाऊं पड़ना ही करते हैं।

समीक्षा—वादी बतावें कि—इसका अर्थ झुकना है वा नहीं ?। यदि वे कहें कि—नहीं, और ऐसा अर्थ करने वाले उनके मतमें अवैदिक हैं, तब तो वादीने अपने मूलभूत श्रीपाणिनि-मुनिको भी, जिसने कि—'णम प्रह्वत्वे' लिखा है, जिसका कि वादीने भी पृ० ३ में बड़े गौरवसे उद्धरण दिया है—अवैदिक सिद्ध कर दिया!

पं. १६—वैदिक-कोष निघण्टुमें 'नमस्'के अर्थ अन्न और वज्र हैं।

स०—इससे सिद्ध हुआ कि—लौकिक—कोषमें जिसकी हमें सदा व्यवहारमें आवश्यकता रहती है, अन्न और वज्र अर्थ नहीं। हमने लौकिक-व्यवहार लोक-प्रसिद्ध अर्थ वाले शब्दसे चलाना होता है। नहीं तो वैदिक-निघण्टुके अनुसार सुवर्णको क्या वादी 'लोह' (१।२) कहते हैं? क्या रात्रिको 'पयः' (१।७) और जलको 'पुरीषम्' (१।१२) कहते हैं? क्या बादलको 'अहिः, वा चमस (१।१०), घोड़ेको 'वह्नि' (१।१४), और सन्तानको 'शेषः' (२।२) कहते हैं? क्या वे मनुष्यको हरि (२।३), अंगुलिको 'स्वसा' (२।५), अन्नको 'पितुः', अथवा वयः (२।७) धनको 'इन्द्रिय वा ब्रह्म' (२।१०), संग्रामको खल वा सद्म (२।१७) सुखको 'भेषज' (३।११) कहते हैं?

यदि नहीं; तब 'नमः' का 'अन्न' वज्र' अर्थ वैदिक-निघण्टु तथा वेदमें ही रहेंगे, लोकमें नहीं। तब लोक-व्यवहृत 'नमः' का अर्थ नमस्कार ही रहेगा, अन्न-वज्रादि नहीं।

अमरकोषमें जो 'नमस्' शब्द था, उसको वादीने छिपा दिया, क्योंकि—उससे केवल झुकना अर्थ पाया जाता है। देखिए—'नमो नतौ' (३ काण्ड अव्यय-वर्ग १८ श्लोक)। इसीका नाम होता है 'सत्यकी हत्या'। शेष वादीने जो उसी कोषके प्रमाणसे ८वें पृष्ठकी अन्तिम पंक्तियोंमें पूजन अर्थ किया है, तो पूजन बड़ेका ही होता है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें लिखा है—'पूजा वर्णा-ज्यायसां कार्या १।१३।२ "वृद्धतराणाञ्च" (१।१३।३)। इससे छोटेके लिए 'नमस्' शब्द खण्डित हो गया। इसी प्रकार 'आपटे-कोष'में भी समझ लें। वहां 'नमः' का आशीर्वाद अर्थ कहीं नहीं आया। आपने यथायोग्य-सत्कार वा सम्मान' अर्थ जो लिखा है, यहां पर 'यथायोग्य' शब्द वादीका स्वकपोल-कल्पित है। कहीं भी ऐसा नहीं लिखा। इसीका नाम होता है 'आंखोंमें धूल झोंकना'। इसी प्रकार जब 'शब्दार्थ-चिन्तामणि' तथा 'पद्मचन्द्रकोषकारने भी 'नमस्' का अर्थ अभिवादन माना है; तब इसका आशीर्वाद-अर्थमें प्रयोग वादीके दिए प्रमाणोंसे ही खण्डित हो गया।

ऐसा होनेपर भी वादीने अपढ़-जनताको ठगा है। यह अर्थ 'नमः'के हैं; पर उसने यह 'नमस्ते'के बताये हैं 'नमस्ते' एक पद नहीं—यह हम पहले बता चुके हैं। वादीने जितने प्रमाण दिये हैं उनमें 'नमस्' शब्द है, 'नमस्ते' नहीं। हमारा

विवाद 'नमस्ते'में है 'नमः'में नहीं। 'नमः'का प्रयोग सनातन-धर्मी अभिवादनमें करते ही हैं। शेष 'नमस्‌का अर्थ यथायोग्य सत्कार है,' इसपर वादी किसी भी कोषकार वा प्रामाणिक-ग्रन्थकी सम्मति नहीं दिखा सके। इसलिए उसका यह अर्थ कपोल-कल्पित सिद्ध हुआ।

'आगे वादीने जड़-पदार्थोंमें भी 'नमः'का प्रयोग माना है। जड़ोंको नमन करनेसे वादीने उनका सुखदायक होना माना है। तब वादी स्पष्ट मूर्त्तिपूजक हुए, क्योंकि—स्वामी—दयानन्दजी ने लिखा है—'क्या यह मूर्तिपूजा नहीं है, किसी जड़-पदार्थके सामने शिर झुकाना वा उसकी पूजा करना सब मूर्तिपूजा है' (स. प्र. ११ समु. पृष्ठ २३०)। वादीने 'नमस्'का अर्थ पूजा-सत्कार सिद्ध करते हुए मूर्तिपूजाको भी मान लिया। 'चौबे गये थे छब्बे बनने दुब्बे बनकर आये।'

पृ. १२ पं. २ में 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' यह मन्त्र दिया है। पर इस मन्त्रमें छोटे-बड़े मनुष्योंको किसीका नमस्कार नहीं, किन्तु मनुष्यका देवताओंको नमस्कार है। क्योंकि—इस मन्त्रके देवता 'विश्वेदेवाः' है। इसलिए ही वादी ने इसका उत्तरार्ध छिपा लिया, तभी तो नहीं लिखा। उसमें 'देवाः' पद स्पष्ट है। विशेष-समाधान गत-निबन्धमें देखें।

इसका यह उत्तर भी हो सकता है कि—कोई पुरुष किसी ऐसी श्रेणीको नमस्कार कर रहा हो जो स्वयम् उन सबसे छोटा हो और जिस श्रेणीको वह नमस्कार कर रहा है, उसमें परस्पर कोई बड़ा कोई छोटा हो।

इस मन्त्र पर स्वा. द. जीका भाष्य भी देखें—'हम लोग पूर्ण विद्या-युक्त विद्वानोंके लिए सत्कार-अन्न करें और दें। थोड़े गुणवाले विद्यार्थियोंके तृप्ति, युवावस्था से जो बलवाले विद्वान् हैं, उनके लिए सत्कार, समस्त विद्याओंमें व्याप्त जो बुड्ढे विद्वान् हैं, उनके लिए (नमः) सेवापूर्वक देते हुए, जो सामर्थ्यके अनुकूल विचारमें समर्थ हों, तो विद्या आदि उत्तम गुणोंसे प्रशंसनीय विद्वानों (?)को अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण करें।' (ऋग्वेद-भाष्य पृ. ५५८) यद्यपि यह अर्थ चिन्तनीय है, तथापि इसमें स्वामीने सबके लिए 'नमस्ते' शब्दका विधान नहीं माना। यहां पर वादीने नमस्कारका यथायोग्य सत्कार अर्थ बिना किसी प्रमाणके दिया है। यहां पर 'नमस्ते' पद कहनेकी आज्ञा नहीं। अतएव उसका समूलोन्मूलन हो गया।

पृ. १२ पं. ६ में 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय' यह मन्त्र दिया है। पर इस मन्त्रका देवता रुद्र है, न कि मनुष्य। '(वही परमेश्वर) दुष्टोंको दण्ड देके रुलाने वाला होनेसे रुद्र'। (स. प्र. १ पृ. ३) इस कारण वादीका पक्ष सिद्ध न हुआ। और इस मन्त्रमें 'नमस्ते' शब्द कहनेकी आज्ञा भी नहीं दी गई। इस कारण 'नमस्ते-प्रचार'का मूल ही कट गया। विशेष-समाधान गत निबन्धमें देखना चाहिए।

इस मन्त्रका यह भाव भी हो सकता है कि—कोई पुरुष किन्हीं ऐसे पुरुषोंको नमस्कार कर रहा हो, जिनमें एक बड़ा भाई हो, और एक छोटा भाई हो, परन्तु नमस्कार करने

वाला दोनोंसे छोटा हो। तब इससे वादीका पक्ष सिद्ध न हुआ।

इस मतके आदि-प्रवर्तक स्वा. द. जीने कनिष्ठके आगे नमस्कार करनेमें अनुपपत्ति मानकर यह अर्थ किया है—'तुम लोग अत्यन्त वृद्धोंका सत्कार, और अतिबालकोंका अन्न, तथा ज्येष्ठ भ्राता वा ब्राह्मणका सत्कार और छोटे भाई वा नीचका अन्न,......नीच कर्मकर्ता शूद्र वा म्लेच्छ-पुरुषका अन्नादिसे सत्कार करो' (यजु. १६।३२) इस अर्थको करके स्वामीने वादीका पक्ष ही काट दिया है। बड़ोंका सत्कार करना माना है, छोटेको अन्न देना कहा है। उनकी पूजा नहीं मानी। इस मन्त्रमें 'नमस्ते' न होनेपर भी इसके 'भावार्थमें' जो 'नमस्ते'का प्रयोग सूचित किया है, यह स्पष्ट प्रक्षिप्त है।

इस प्रकार नमस्कार करना जो अभिवादन-वाचक अभीष्ट है, छोटेके लिए वह स्वामीके मतानुसार भी वेदसे सिद्ध न हुआ। यदि कहीं स्वामी वैसा कह भी दें, तो वह साध्य-पक्ष होनेसे माननीय नहीं हो सकता।

पृ. १२ पं. ६ में 'नमो-ह्रस्वाय च' यह मन्त्र दिया है, इसका भी समाधान पूर्व-निबन्धमें देखें। वादीने इसके अर्थ में भारी धोखा दिया है। लिखा है—'आकारसे छोटे वा क्षीण शरीर......वालेके लिए भी नमस्ते ही करनी चाहिए'। जब मूलमें शब्द 'नमः' है, तो 'उसे नमस्ते करनी चाहिए' यह कहां से निकल पड़ा?

वादीके अनुसार नमस्ते-प्रचारक स्वा. द. जीने यहां वादी

का अभीष्ट अर्थ नहीं माना। देखिए—'बालक और प्रशंसित ज्ञानी तथा मध्यम विद्वान्को अन्न देते हैं।...' यहां पर भी स्वा० द० जीने नमस्कार अर्थ नहीं माना। 'बड़े और विद्यामें अतिवृद्ध विद्यार्थीका सत्कार, अवस्थामें अधिक अपने समानोंके साथ बढ़नेवाले तथा सब मित्रका सत्कार' यहां भी स्वामीने अवस्था वा विद्यामें वृद्धोंका ही नमस्कारसे सत्कार स्वीकृत किया है, छोटोंका नमस्कारसे सत्कार न मानकर अन्नादि-देनेसे सत्कार माना है—यह तो भिन्न बात हो गई। इससे वादीका मूलपक्ष ही खण्डित हो गया। यदि छोटोंको उन्हें 'नमः' करनी इष्ट होती; तब वहां 'नमः'का अर्थ वे केवल सत्कार करते, 'अन्नादिसे सत्कार' अर्थ न करते। अतः उन्हें अन्न देनेमें हमारा भी निषेध नहीं, उन्हें नमस्कार करना तो दोनों पक्षोंमें असिद्ध सिद्ध हुआ।

इस प्रकार अगले 'नमो मन्त्रिणे पशूनां पतये' आदि मन्त्रोंमें रुद्र-देवता होनेसे कोई भी दोष नहीं। वादीका इष्ट 'नमस्ते' यह शब्द है; वह इन मन्त्रोंमें सर्वथा नहीं, इसलिए वादीको अपनी पुस्तकका नाम अब 'नमस्ते-प्रचार' हटाकर 'नमः-प्रचार' कर देना चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि-वादी-ने प्रस्तुत-पुस्तकके टाइटिल-पेजपर भी जो मन्त्र गौरवके साथ तीन वेदोंके लिख डाले हैं, उनमें भी 'नमस्ते' पद नहीं है।

पृ. १३में [illegible] भ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः, 'नमः स्वपद्भ्यो [illegible] नमः' इत्यादि वेदमन्त्र भी वेदरत्न-जीने [illegible] क्योंकि इनसे 'नमस्ते'का खण्डन होता है।

इसको यों समझिये कि—आर्यसमाजी हर हालतमें 'नमस्ते' से भिन्न पद नहीं कहते, पर यहां पर वेदने बहुवचनमें 'नमस्ते' न कहकर 'नमो वः कहा है। तो फिर 'नमस्ते' मात्र की अपरिवर्त्तनीयताका समूलोन्मूलन हो गया'।

तब जोकि उक्त-मन्त्र देकर आर्यसमाजी-श्रीशेरसिंहने अपनी 'नमस्तेकी प्राचीनता' में 'वेदोंमें परस्पर नमस्तेका प्रयोग' यह शीर्षक दिया है, यह जनताको धोखा देनेके लिए ही है, क्योंकि—यहां तो 'नमो वः' है, 'नमस्ते' नहीं; और न ही यहां उसका परस्पर-प्रयोग ही आदिष्ट किया गया है। तब वह असत्यवक्ता भी सिद्ध हो गये।

यहां वादी श्री सं, रा. जीसे प्रष्टव्य है कि—'नमस्ते' यह पद सदा, सब अवस्थाओंमें बहुवचनादिमें वा अन्य सर्व-नामोंकी अपेक्षामें इसी रूपमें रहता है; अथवा उस समय 'नमो वः, नमस्तस्मै' इत्यादि-रूपोंमें बदल जाता है? यदि इसी रूपमें रहता है; तो वेदने 'नमो वः, नमः, नमोऽस्मै' आदि रूपमें कहकर वादियोंके मुंहपर चपत जड़ी है। यदि बदलता रहता है, तो 'नमस्ते' खण्डित हो गया; और फिर इससे वादियोंने ममता क्यों बांध रखी है?

'नमस्ते' मात्रके आग्रही व्यक्ति अपने स्वामीके इस कथनको याद रखें—'(प्र.) तुम्हारा मत क्या है (उ.) वेद अर्थात् जो-जो वेदमें करने और छोड़नेकी शिक्षा की है उस-उसका हम यथा-वत् करना-छोड़ना मानते हैं। जिस लिए वेद हमको मान्य है; इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब

मनुष्योंको विशेषकर आर्योंको ऐकमत्य होकर रहना चाहिए'। (स. प्र. ३ पृ. ४२) अब वादियोंसे पूछना है कि—वेदने जिसे करनेके लिए लिखा है, क्या आप उसे करते है? जिसे छोड़नेके लिए लिखा है; क्या उसे छोड़ते हैं? यदि ऐसा है; तो वेदने विधिरूप से यह कहां लिखा है कि—प्रणाम, आशीः आदि सब अवसरोंमें 'नमस्ते' ही कहो; और नमः, नमो—नमः, वन्दे आदि न कहो। यदि कहीं 'नमस्ते'की विशेष-विधि नहीं कही; और नमः, वन्दे, नमस्कार, स्वस्ति, शम् आदियोंका प्रणाम—आशीःमें निषेध नहीं किया, प्रत्युत वेदने स्वयं ही भिन्न-भिन्न अवसरोंमें भिन्न-भिन्न पद प्रयुक्त किये हैं; तब 'नमस्ते' में आग्रह करना क्या वेद-विरुद्ध नहीं?

जब वादी लोग स्वयं ही वेद-विरुद्ध चलते हैं; तब 'इसलिए वेद परमेश्वरोक्त हैं, इन्हींके अनुसार सब लोगोंको चलना चाहिए। और जो कोई किसीसे पूछे कि—तुम्हारा क्या मत है; तो यही उत्तर देना कि—हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है; हम उसको मानते हैं'। (स. प्र. ७म समु.के अन्तमें पृ. १२७) अपने स्वामीके इस वचनपर हरताल फेरें। क्या वेदमें कहीं लिखा है कि—बहुवचनमें भी 'नमस्ते'का प्रयोग करो, और आशीःमें भी 'नमस्ते'का प्रयोग करो, अन्य पदोंका नहीं? यदि ऐसा कहीं नहीं लिखा, तब क्या 'नमस्ते और हठवाद' यह दो पर्याय-वाचक सिद्ध न हुए?।

इसी प्रकार 'नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः' इत्यादि में समझना चाहिए। यहां पर भी 'नमः' वा 'नमो वः' है। क्या आर्यसमाज कहीं 'नमो वः' का प्रयोग भी करती है? यदि नहीं, तब वह स्पष्ट वेद-विरुद्ध सिद्ध हुई। नहीं तो फिर उन्हें 'नमस्ते' छोड़कर 'नमः'का प्रचार करना चाहिये।

इधर वेदने 'नमस्ते'का खंडन करके वादीके पक्षका खंडन किया है, उधर स्वामीजी भी वादीके पक्षको खंडित करते हैं। उन्होंने इस मन्त्रमें 'नमः'का अर्थ 'अभिवादनार्थक-नमस्कार' नहीं माना, क्योंकि—वे जानते थे कि—अभिवादनार्थक-नमस्कार उच्चको की जाती है, नीचको नहीं। तभी तो स्वामीने यह अर्थ किया है—पदार्थोंको सूक्ष्म क्रियासे बनाने हारे तुमको अन्न देते, और बहुतसे विमानादि यानोंको बनाने हारे तुम लोगोंको परिश्रमादिका धन देके सत्कार करते हैं। 'कुलालेभ्यः' अन्नादि पदार्थ देते। 'निषादेभ्यः' अन्नादि देते'। इस कारण स्वा. द. के भाष्यसे भी यह सिद्ध न हुआ कि—वेद नीचोंका भी अभिवादन मानता है। यदि कहीं स्वामीने लिखा भी हो, तो वह साध्य-पक्ष ही होगा, न कि सिद्ध।

इन सब (वादीसे उद्धृत) स्थानों पर उनके स्वामीने नीचोंको अन्न देना माना है, उनको अभिवादनार्थक नमस्कार-करना नहीं माना, सारा दारोमदार वा झगड़ा अभिवादनार्थक नमस्कार करनेमें है। सनातन-धर्मी उच्च-वर्णका नीच-वर्णके प्रति 'नमस्कार' सहन नहीं कर सकते। स्वामीजीने भी वैसा ही माना है। उनके वेदभाष्यसे भी नीचोंको अभिवादन सिद्ध न

हो सका, और न ही उनको 'नमस्ते' पद कहनेकी इन मन्त्रोंमें कहीं आज्ञा दी गई है। तब आर्यसमाजका पक्ष गिर गया; उनको अन्न भले ही देते रहो, सनातनधर्म कब इस बातका निषेध करता है? वह तो कहता है कि—छोटेको नमस्कार नहीं की जा सकती, किन्तु आशीर्वाद ही दी जा सकती है।

'नमः श्वभ्यः' १६।२८—यहांपर भी स्वामीने अपने भाष्य-में कुत्तोंको तथा उसके पालने वालोंको अन्न देना ही माना है, उनको नमस्कार करना नहीं माना। कुत्तेके पालने वालेकी वादी क्या पूजा करेंगे कि—'आइये कुत्त पालने वाले साहब, आप बहुत ही अच्छा करते हैं'। उस वक्त क्या उसके पैर चूमेंगे, वा उसके आगे अपना सिर झुकाएंगे? वास्तवमें यह रुद्राध्याय है, यहां सभी रुद्रके विशेषण हैं। रुद्रको बहुवचन पूजामें अथवा 'माहाभाग्याद् देवतायाः, एक आत्मा बहुधा स्तूयते' (निरुक्त ७।४।८) इसके अनुसार दिया गया है। तो फिर परमात्माके लिए 'ते'का प्रयोग हो सकता है, पर यहां तो 'नमस्ते' ही नहीं। विशेष हमारे पूर्व निबन्धमें देखो।

इसी प्रकार 'नमो वन्याय च कक्ष्याय च' आदि वादीके दिये हुए मन्त्रोंमें भी समझें। इनमें भी 'नमस्ते' नहीं। 'नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमः' (४६) यहां पर आर्य-समाज से विरुद्ध 'नमो वः' है क्योंकि—हमारा विश्वास है कि आर्यसमाजियोंने आज तक भी इसका प्रयोग न किया होगा।

पृ. १४ पं. १०—'नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे'

(यजुः १७।११) 'शीतहारी पवित्रस्वरूप तेजस्वीके लिए नमस्ते हो' शोक !!! यहां पर कैसा गहरा धोखा दिया गया है। यहां पर वादीने 'नमस्ते'को एक पद मानकर लिखा है, क्या यह अज्ञता है, अथवा प्रतारकता है, यह वे ही जानें। इस मन्त्रमें तो यह कहा गया है 'हे अग्ने! तेरे तेजको नमस्कार हो'। इस मंत्रका देवता अग्नि है। इससे हमारा कुछ भी पक्ष नहीं गिरा। यहां 'ते' का अर्थ 'तेरा' है, 'तुभ्यं' अर्थ वाला 'ते' यहां पर नहीं, जो वादीका अभीष्ट है, फिर वादीने अपनी हिन्दीमें 'नमस्ते' कैसे लिखा?। अग्नि वा परमात्माके तेजको सनातनधर्मी नमस्कार करते ही हैं, यह मूर्ति-पूजा है। उसमें 'ते'का प्रयोग भी हो सकता है।

पृ. १४ पं.१२–'शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु। मा मा हिँ सीः'। (यजुः ३।६३) यहां पर क्षुर (छुरे) को वादीने नमस्कार माना है। यह तो वेदमें स्पष्ट मूर्तिपूजा सिद्ध हो गई! आर्यसमाज जो मूर्तिका सत्कार नहीं मानता, वह इस वेदमन्त्रसे वादीके कथनानुसार अवैदिक सिद्ध हो गया। बाकी रहा 'ते'का प्रयोग; यह परमात्मा वा उसके पद को पहुँचे हुये देवता, ऋषि, मुनि तथा जड़ोंको अथवा जड़ोंके अधिष्ठातृदेवको किया जा सकता है। परन्तु वार्तमानिक-व्यवहारमें नहीं हो सकता। इसके लिए हमारा पूर्व-निबन्ध देखें। और फिर यहां पर 'नमस्ते'के प्रत्युत्तरमें 'नमस्ते' नहीं कहा गया।

पं० १४–'पिता नोऽसि' (यजुः ३७।२०) यह मन्त्र महावीर नामक प्रजापतिकी मृन्मयी-मूर्ति वा परमात्माके लिए है इसमें कोई विवाद नहीं।

पृ. १५ पं. १ 'देव घर्म! नमस्ते अस्तु' यहां पर 'अग्नि' के लिए 'ते' है। इसलिए हमारे पक्षकी हानि नहीं। अग्निकी पूजा सनातनधर्म मानता ही है, उसे तो आर्यसमाज 'मूर्तिपूजा'के डरसे नहीं मानता। अतः वादीके ही कहनेसे वह (आर्यसमाज) वेदविरुद्ध सिद्ध हुआ।

पं. ७ 'नमोस्तु सर्पेभ्यो' (यजुः १३।६) इस मन्त्रमें 'नमस्ते' नहीं है, 'नमोस्तु' है। यहां पर वादी सर्प–अर्थका निराकरण करते हैं, इसका कारण मालूम नहीं। यदि इस मन्त्रका सर्प अर्थ नहीं है तो इससे क्या सर्पोंको नमस्कार करना अर्थ हट गया? नहीं, ऐसा नहीं। इससे अग्रिम 'ये वाऽवटेषु शेरते, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः' (यजुः १३।७) इस मन्त्रमें तो सर्पोंको नमस्कार अर्थ विद्यमान है, तब वादी सर्पपूजासे बच न सके। बाकी रहा 'सूर्यादि' लोकका अर्थ; वे तो वादीके मतसे जड़ हैं, यह तो मूर्तिपूजा हो गई। यहां पर हमारे किसी सिद्धान्तकी क्षति नहीं।

पं. १० 'इस मन्त्रमें......लोक-वासी लोगोंको 'नमस्ते' करनेकी आज्ञा है'' शोककी बात यह है कि–मन्त्रमें 'नमस्ते' का नाम निशान नहीं, और वादीने उसके अर्थमें 'नमस्ते' घुसेड़ दिया। क्या यह साम्प्रदायिक-चश्मेकी कृपा है?। इसी प्रकार 'लोगों' शब्द भी अपनी ओर से घुसेड़ दिया।

पं. १४ 'नमस्ते अग्ने' यहां पर अग्निका वर्णन होनेसे हमारे पक्षमें कोई क्षति नहीं है। 'ते' यहां 'तव' वाचक है, जो 'ओजसे' से सम्बद्ध है। वादीका अभीष्ट 'तुभ्यं' स्थानापन्न 'ते' नहीं।

पं. १५ 'नमः सखिभ्यः' इस मन्त्रमें 'नमस्ते' शब्द ही नहीं। तब इस मन्त्रमें 'नमस्ते' कहनेकी शिक्षा कैसे हुई? कई सखा अपनी अपेक्षा बड़ी आयुवाले वा बड़ी योग्यतावाले होते हैं; वहां नमस्कार ठीक ही है; तभी तो मन्त्रमें कहा है—'नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यः' 'पूर्वसद्भ्यः'का अर्थ है—जो इस संसारमें हमसे पहले स्थित हैं—अर्थात् बड़े हैं। वस्तुतः इस मन्त्रमें अग्नि आदि देवताओंका वर्णन है। इस मन्त्रका देवता अग्नि है। इसीलिए सायण-भाष्यमें कहा है—'पूर्वसद्भ्यः' —ये यज्ञे प्रारम्भात् पूर्वं सीदन्ति-तिष्ठन्तीति पूर्वसदः, तेभ्यः सखिभ्यः—समानख्यानेभ्यः सखिवन्मित्रभूतेभ्यो देवेभ्यो नमः—वयं नमस्कारं कुर्मः' (सामवेद सं. २०१६) इस तृचमें देवताओंका वर्णन है। तभी इसके तीसरे मन्त्रमें—'देवा ओकांसि चक्रिरे'में 'देवाः' शब्द स्पष्ट है।

पृ १६ पं. १ 'नमस्ते राजन्! वरुणाऽस्तु मन्यवे' (अ.) इसमें जलोंके राजा वरुणके क्रोधको नमस्कार किया गया है। यह तो आर्यसमाजके मतमें मूर्तिपूजा हुई और सनातनधर्मके मतमें देवपूजा हुई। देवताओंको वा जड़ोंको 'ते' कहा ही जाता है। 'श्रेष्ठ राजा' अर्थ करना वादीका साहस है; वरुण एक देवता है, कोई मनुष्य-राजा नहीं।

पं० ३ 'नमस्ते अस्तु विद्युते, स्तनयित्नवे, अश्मने' इत्यादि-मन्त्रोंमें जड़वस्तु बिजली, मेघ, पत्थर वगैरहके अधिष्ठातृ देवोंको नमस्कार किया गया है। इसलिए मूर्तिपूजा हुई। इसमें 'ते' का दोष नहीं। वादियोंके मतमें यह जड़ हैं, हमारे मतमें इसके अधिष्ठातृ-देवोंके लिए युष्मद्का एकवचन अदुष्ट होता है—यह गत-निबन्धमें देखें। वादीने इनमें नानाशक्तियोंको 'नमस्ते' माना है, तो शक्तियोंके जड़ होनेसे हमारे पक्षमें कोई क्षति नहीं पड़ती।

पं. १० 'नमः शीताय तक्मने' इस मन्त्रमें वादीने ज्वर-विशेषको 'नमस्ते' माना है, इस मन्त्रमें नमस्ते शब्द ही नहीं, फिर 'ज्वर-विशेषको नमस्ते' शीर्षक रखना धोखा देना है। ज्वरको नमस्कार करना उसके अधिष्ठातृ-देवकी पूजा होनेसे सनातनधर्मिता है, न मालूम वादीकी इधर नजर क्यों नहीं गई? इसके अनुसार स. ध. में शीतलाका जिसे वादी लोग रोग मानते हैं—का पूजन भी अधिष्ठात्री देवताकी पूजा होनेसे वैदिक सिद्ध हुआ।

पृ. १६-१७ 'ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सरोभ्योऽकरं नमः' इस मन्त्रमें वादीने 'स्त्रियोंको नमस्ते' माना है। परन्तु इसमें 'नमस्ते' शब्द ही नहीं, किन्तु 'नमः' है। तो फिर 'स्त्रियोंको नमस्ते' शीर्षक रखना क्या धोखा देना नहीं? नमस्कार सर्वसाधारण स्त्रियोंको नहीं, किन्तु देवयोनि वाले गन्धर्वोंकी स्त्रियों-अप्सराओंको मनुष्य-योनिकी अपेक्षा उत्तम-योनि होने से नमस्कार किया गया है, जिन्हें आर्यसमाज मानता नहीं।

इससे हमारे पक्षको कोई ठेस नहीं लगती। 'स्त्रियोंको नमस्ते' इस प्रकार बहुवचनमें 'नमस्ते' रखना वेदविरुद्ध साम्प्रदायिक-हठ है।

पृ. १७ पं. ३ 'नमस्ते लांगलेभ्यः' इस मन्त्रका उत्तर हमारे पूर्व-निबन्धोंमें आ चुका है।

पं. ४ 'नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो, 'नमः क्षेत्रस्य पतये' इनमें 'नमस्ते' नहीं लिखा। तब इसकी टिप्पणीमें वादीने यह क्यों लिखा कि-'इसमें भी नाना-अवस्था वाले प्राणियोंको ही नमस्ते करना लिखा है'। यह स्पष्ट छल है।

पं. ८ 'नमो देववधेभ्यो' इसमें भी 'नमस्ते नहीं। इसमें तो मृत्युको नमस्कार किया गया है। इसी प्रकार 'सुमत्यै मृत्यो!' इस मन्त्रमें भी मृत्युको नमस्कार है। मृत्यु आर्य-समाजके मतमें जड़ है, तब ऐसा करना मूर्ति-पूजा है।

पं. १२ 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' यहां पर भी मृत्युके ही यातुधानोंको नमस्कार है-इसका सम्यक् उत्तर पूर्व-निबन्धमें देखें। 'ब्राह्मणेभ्यः इदं नमः' यहां पर 'नमस्ते' शब्द ही नहीं। तब 'ब्राह्मणोंको भी नमस्ते करना लिखा है' यह वादीका छल है।

पृ० १७।१८ में वादी वैदिक प्रमाणोंका उपसंहार करता हुआ लिखता है-

प्र.-कई लोग कहा करते हैं कि-वेदोंमें ईश्वरको 'नमस्ते' है, मनुष्योंको नहीं, यह उनका भ्रम है। इन मन्त्रोंमें ईश्वर

की अनुवृत्ति नहीं आती, न कोई इन मन्त्रोंमें ईश्वर-वाची शब्द है।

स.-इस अध्यायका देवता रुद्र है। मंत्रका अर्थ उसके देवताके अनुसार होता है। रुद्र ईश्वरको कहते हैं, (देखिये स. प्र. का १ समुल्लास।) उसकी अनुवृत्ति यहां प्राप्त है। अन्य मन्त्रोंमें जड़ोंके अधिष्ठातृ-देवताओंका वर्णन है-वादियों के मतमें मूर्तिपूजा वैदिक हो जायेगी। इस कारण वादीकी बात कट गई।

पृ. १८ पं. २ ईश्वर एक है, यहां पर प्रायः बहुतोंका वर्णन है।

समीक्षा-रुद्रके वर्णनमें बहुवचन भी है, जैसा कि-'असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (यजुः १६।५४।) 'रुद्रा देवा देवता भवन्ति' (गोपथ १।४।८) शेष उत्तर पूर्व दिया जा चुका है। आदरार्थ भी बहुवचन होता है।

पं. ३ ईश्वर एक रस रहता है, वह किसीसे छोटा बड़ा या मध्यम नहीं बन सकता।

समीक्षा-इसका उत्तर गत निबन्धोंमें देखें। आत्मा भी तो अजन्मा होनेसे किसीसे छोटा-बड़ा नहीं हो सकता। यदि उसे व्यवहारके लिए वैसा कहा जाता है, वैसे परमात्माको भी। वास्तवमें यहां पर स्थूल-सूक्ष्म ईश्वरके ऐश्वर्योंका वर्णन हैं। वह सबसे बड़ा है, यह वादी भी मानते ही हैं। सबसे सूक्ष्म है-इसलिए छोटा भी हुआ। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' (श्वेताश्व. ३।२०) इत्यादि स्वयं समझें।

पं. ४ वह जन्म-रहित है, इनमें जन्मवालोंका वर्णन है।

समीक्षा—वेदमें परमात्माके लिए लिखा है—'अजायमानो बहुधा विजायते' (यजुः ३१।१६।) 'सुजन्मा' (अ. ४।१।१) जब उसका अवतार रूपसे वर्णन होता है तो जन्म-वालों जैसा वर्णन भी होता है।

पं. ५ इनमें चोर ठग कुत्ता और चोरोंके पति आदिके बोधक शब्द हैं, जो ईश्वरके विशेषण बनाना पाप है।

समीक्षा—यह सभी परमात्माके ही बनाए हुए जगत्के अन्तर्गत होनेसे उसके अंश हैं, इसीलिए उसीकी विभूति-रूपसे वर्णित किये गये। परमात्मा संसारके सभी जीवोंका पति-रक्षक है, केवल पुण्यात्माओंका नहीं, नहीं तो वह पक्षपाती हो जाय। यहां श्रीमहीधराचार्यका भाष्य देखिए-'रुद्रो लीलया चोरादिरूपं धत्ते' यद्वा—रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चोरादयो रुद्रा एव ध्येयाः। यद्वा—स्तेनादिशरीरे जीवेश्वररूपेण रुद्रो द्विधा तिष्ठति, तत्र जीवरूपं स्तेनादिशब्दवाच्यं तदीयेश्वर-रुद्ररूपं लक्षयति, यथा—शाखाग्रं चन्द्रस्य लक्षकम्। किं बहुना-लक्ष्यार्थ-विवक्षया मन्त्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः'। इससे उक्त शंका निरस्त हो गई। अथवा—इस सूक्तमें वैसे रुद्रके गणोंका वा किरातरूपधारी रुद्रके वैसे गणोंका वर्णन है—इसकी स्पष्टता गत निबन्धमें देखिये। 'मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः' (ऋ. १।१०४।८) मन्त्रके अर्थमें आर्याभिविनयमें स्वा. द. जीने भी परमात्माको चोर लिखा है—तब यहां कोई भी शङ्का नहीं रहती।

पं. ७ इनमें लकड़ी लोहा आदिका कर्म करना जो लिखा है, सो ईश्वरमें नहीं होता।

समीक्षा—ईश्वर व्यापक है, लोहा आदि उसमें व्याप्य हैं, तो उसमें यह सभी काम हो रहे हैं।

पं. ८-६ ऐसा किसी शास्त्रका कोई वचन भी नहीं, जिसमें लिखा हो कि नमस्ते ईश्वर बिना किसीको न कहो।

समीक्षा—यह भी किसी शास्त्रमें नहीं लिखा कि सभीको 'नमस्ते' कहा करो। युष्मदशब्दके एक-वचनका व्यवहार सभी भाषाओंमें परमात्माके लिए आता है, या ऋषि-मुनियों के लिए। परन्तु आजकल की किसी भी भाषामें योग्य व्यक्ति को युष्मद्शब्दका एक-वचन नहीं दिया जाता है। क्या वादी अपने लिए यह कहा जाना पसन्द करेंगे कि, 'ऐ सन्तराम! तूं ने इस पुस्तकमें बहुत स्थानों पर अपने सिद्धांतोंका विरोध भी नहीं देखा। तुझे संस्कृतका ज्ञान तो बहुत साधारण है। तूने अपनी बनी किसी भी पुस्तकमें छोटे पात्रके मुखसे बड़े पात्रको तूं तूने तेरे लिए इत्यादि शब्द नहीं कहलवाये—' इत्यादि।

पं. १४-१५ वादी लिखते हैं—यही मानकर संतोष कर लिया करो कि, ये सब ईश्वरके रूप हैं, ईश्वरको ही नमस्ते कर रहे हैं।

समीक्षा—अद्वैत-सिद्धान्त क्या आपका है, जो सबको ईश्वर समझवाते हैं? यदि नहीं, तो आपका यह कहना व्यर्थ है। बाकी यह समझ लें कि, अद्वैतवाद परमार्थिक होता हुआ भी

व्यावहारिक नहीं। इस विषयमें पूर्व-निबन्ध देखें। बात व्यवहारकी चल रही है। यदि वादीके अनुसार सभी एक दूसरेको ईश्वर मान भी लें, तब तो 'नमस्ते' ही व्यर्थ है, फिर कौन छोटा, कौन बड़ा? तब वहां 'नमस्ते'का प्रवेश ही कैसा? 'नमस्ते'—समानोंके लिए भी नहीं होता।

पृ. १८ पं. १७ 'ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदोंमें 'नमस्ते'। इस शीर्षकमें वादी लिखता है कि 'वेद वाक्योंसे हम छोटे-बड़े नीच-ऊंच स्त्री-पुरुष आदिको नमस्कार करना सिद्ध कर चुके'।

समीक्षा—पर यह बात अभी सिद्ध न हो सकी, यह हम दिखला चुके हैं। अब आगे वे ब्राह्मण-भागादिके प्रमाण देते हैं—

पृ. १९ पं. २ 'स होवाच-नमो ब्रह्मिष्ठाय कुर्मः'।

समीक्षा—इस शतपथके प्रमाणमें 'नमस्ते' नहीं कहा गया। यहां पर वादीने 'याग्यवल्क्य' शब्द लिखकर अपने संस्कृत-ज्ञानका नमूना दिखलाया है।

पं. ६ 'सा होवाच—नमस्ते याग्य (?) वल्क्य'।

स.—प्राचीन-युगमें युष्मद्-शब्दके एकवचन देनेके विषयमें उत्तर यह है कि-पुराणादिमें युष्मद्-शब्दकी सभी विभक्तियों के एकवचन आये हैं, केवल चतुर्थी विभक्तिका एकवचन नहीं। तो आप लोग भी मान्यके लिए सभी युष्मद्-शब्दके एकवचनों का प्रयोग क्यों नहीं देते? यदि मान्यको 'त्वं, त्वां, त्वया, तुभ्यं ते, त्वत्, तव, त्वयि' इत्यादि प्रयोग अपमान समझकर नहीं लिखते, तब 'नमस्ते,में भी 'ते' शब्द अपमान—जनक माना

जावेगा।

परमात्माको, देवताओंको तथा ऋषि-मुनियोंको युष्मद्-शब्दके एकवचन इसलिए दिये जा सकते हैं कि वे बाह्य लौकिक-व्यवहारसे दूर होते हैं। और जो सर्व-साधारण लोगोंके लिए भी पुराणोंमें युष्मद्-शब्दका एकवचन प्रयुक्त हुआ है—उसके दो कारण हैं। पुराने जमानेमें बाह्य लौकिक सभ्यता इतनी उन्नत न हुई थी, जैसे कि अब है। सृष्टिके आदिमें व्यावहारिक बाह्य सभ्यताके अनुन्नत होनेके कारण युष्मद्-शब्दके एकवचन प्रचलित थे। परन्तु पीछे यह सब विधि-विरुद्ध होनेके कारण हट जानेसे असभ्यताजनक माने जाते हैं। दूसरा कारण इस विषयमें गत निबन्धमें देखें।

पृ. १९ पं. १६ 'नमस्तेस्तु ब्रह्मन्! स्वस्ति मेऽस्तु' (कठ. १।९।) महर्षि यम अपने शिष्य नचिकेताको "नमस्ते" कहते हैं।

समीक्षा—यम कोई महर्षि नहीं; किन्तु मृत्यु-देवताविशेष हैं; अतः कठोपनिषद्में उसे 'मृत्यो!' (१।१।१३) अन्तक (२६) आदि शब्दोंसे संबोधित किया गया है। नचिकेता जब यमके पास आये; तब उनका कोई गुरु-शिष्य-सम्बन्ध नहीं था। पिताने गुस्सेसे नचिकेताको यमके पास भेज दिया। यम बाहर गये थे, जब आये तो पता लगा कि—एक ब्राह्मण-अतिथि तीन दिनसे भूखा है। तब उसने आकर नमस्कार किया। वर्ण-विचारसे यम सूर्यवंशी होनेसे क्षत्रिय हैं और नचिकेता ब्राह्मण-कुमार था। अतः उसे 'ब्रह्मन्!' कहा गया

है। तब क्षत्रियका ब्राह्मण-कुमारको नमस्कार करना उचित ही था। आपस्तम्बधर्मसूत्रमें लिखा है—'दशवर्षश्च ब्राह्मणः शतवर्षश्च क्षत्रियः। पिता-पुत्रौ स्म तौ विद्धि तयोस्तु ब्राह्मणः पिता' (१।१४।२२) इसी प्रकार मनुस्मृति (२।१३५) महाभारत अनुशासन-पर्व (८।२१) तथा आदिपर्व (५६।१२)में भी कहा है।

शेष रहा 'ते'का कहना, सो उसका उत्तर यह है कि—वह ब्राह्मण-कुमार उच्च-वर्ण होने पर भी यमकी अपेक्षा आयु और अनुभवमें हीन था, इसलिए उसे 'ते' कहना अनुपपन्न नहीं। फिर उस ब्राह्मण-कुमारने 'नमः'के उत्तरमें यमको 'नमस्ते' नहीं कहा, बल्कि—यमने भी उससे 'स्वस्ति मेऽस्तु' इस प्रकार स्वस्ति (कल्याण)का आशीर्वाद मांगा। उससे 'नमः' नहीं चाही। अतः वादीका पक्ष कट गया।

पृ.१६, पं. १८-१६-२० नाटकोंमें नमस्ते। उत्तररामचरित्र में सीताने अष्टावक्रको 'नमस्ते' कहा। इसका उत्तर पूर्व निबन्ध में देखें। इसी प्रकार 'ऋषे! नमस्ते' में भी समझें।

पृ. २० पं. ६ 'तं प्रतीतं स्वधर्मेण' 'अर्चयिष्यामो भवन्तं' इनमें 'नमस्ते, नहीं; यह तो पूजनका उस समयके लिए खास विधान है, सदाके लिए नहीं।

पं. १३ परस्पर नमस्ते। 'मनुमेकाग्रमासीनम्,।

समीक्षा—इत्यादि श्लोकोंमें 'नमस्ते, शब्द नहीं, तथापि ऋषि सर्वज्ञ थे, तथा मनु सर्वज्ञ तथा वयोवृद्ध थे। अतः मनु-

द्वारा उनका पूजन हुआ। यह उन ऋषियोंका 'श्रूयताम्' इस वचनमात्रसे अर्चन हुआ। यदि समान-पूजन होता; तो दोनों स्थान समान शब्द 'प्रतिपूज्य' होता; परन्तु दूसरे स्थान 'अर्च्य' शब्द है, जिससे भिन्न-भिन्न व्यवहार सूचित होता है। नहीं तो समान-व्यवहारमें शब्द-भेद होने पर भग्न-प्रक्रम दोष उपस्थित हो जाता है।

पृ. २१ पं. ४ 'विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजार्हं रघुनंदनम्' यहां पर भी 'नमस्ते' शब्द नहीं। दूसरा—राम परमात्माके अवतार थे। यह अपवाद-शास्त्र है; तब छोटी आयु होने पर भी दोष नहीं। ब्राह्मण भी रामको नमस्कार करते हैं; परन्तु उसकी क्षत्रियताको मानकर नहीं; किन्तु उसे 'परमात्माका अवतार' मानकर। इस प्रकार विश्वामित्रने उसे छोटी आयुसे पूजित नहीं किया, किन्तु विष्णुका अवतार होनेसे।

पं. ७ 'सर्वथा च महाप्राज्ञ! पूजार्हेण सुपूजितः' (१।५२।१७) इस रामायणके वाक्यमें 'नमस्ते' नहीं। और न ही 'नमस्ते' शब्दसे पूजन बताया है, किन्तु 'फलमूलेन भगवन्··· पाद्येनाचमनीयेन भगवद्दर्शनेन च' (१।५२।१६) 'पूजितः' यह अग्रिम-पद्यसे सम्बन्ध है। तब पाद्यादिसे पूजन और होता है, और 'नमस्कार'से पूजन अन्य होता है। इससे वादीकी इष्ट-सिद्धि नहीं।

पं. १२ नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि' यहां विश्वामित्रने वसिष्ठको नमस्कार किया, सो उचित ही था। शेष 'ते'के विषयमें उत्तर यह है कि—पहले युष्मद्के सभी एकवचन प्रचलित थे,

वस्तुतः वे विधिशास्त्रसे विरुद्ध होनेसे अब सम्माननीयके प्रति प्रयुक्त नहीं। इसमें आप लोगोंके-मान्यको संस्कृतमें भेजे हुए युष्मद्के एकवचनके प्रयोगसे रहित पत्र ही प्रमाण हैं।

पं. १५ 'नमस्तेस्तु महावृक्ष' (२।५५।२५) इसमें वृक्षको नमस्ते लिखी है।

समीक्षा—इसमें वादीने अपने पक्षका खण्डन किया वा हमारे पक्षका? हम 'ते' शब्दका लौकिक वर्तमान-व्यवहारमें ही निषेध करते हैं, सो वृक्षके लिए कोई भी युष्मद्-शब्दके एक-वचनका निषेध नहीं करता। बाकी रहा—वृक्षको 'नमः' कहना, यह तो मूर्तिपूजा है, जो वादीने भी मान ली। यहां पर वृक्षाभिमानी-देवसे सीताने अपने पतिव्रत-धर्मके अक्षुण्ण रखनेकी प्रार्थना की है।

पं. १७ 'नमस्ते राक्षसोत्तम!' राक्षसयोनि देव-दैत्यादिकी अपेक्षा निन्दित होने पर भी मनुष्य-योनिसे उच्च मानी गई है, क्योंकि—उसे देवग्रहके अन्तर्गत माना जाता है। जैसे कि सुश्रुत-सं.में-'देवास्तथा शत्रुगणा (दैत्या) श्च तेषां, गन्धर्वयक्षाः पितरो भुजङ्गाः। रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टको देवगणग्रहाख्यः' (उत्तरतन्त्र ६०।७) लोकोत्तर होनेसे उसे 'नमः' कहा गया है, मानुषिक-व्यवहारसे दूर होनेके कारण युष्मद् शब्दका एकवचन दिया गया है।

पृ. २२ पं. ३ 'देवदेव! नमस्तेऽस्तु' (अध्यात्म) यहां पर कौशल्याने अपने पुत्र श्रीरामको परमात्मा जानकर ही नमस्कार की है, तभी तो उसे 'देवदेव!' कहा है। परमात्मा

मानुषिक-व्यवहारमें नहीं, इसलिए उसे 'ते' कहा जाता है। फिर 'नमस्ते'के उत्तरमें 'नमस्ते' नहीं कहा गया।

पं. ५ 'ननाम राघवो ऽहल्यां' यहां पर 'नमस्ते' नहीं। अहल्या मुनि-पत्नी थी, और श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम थे, अतः मर्यादा-पुरुष क्षत्रिय श्रीरामने उसे नमस्कार करनी ही थी।

पं. ६-७ 'संपूज्य विधिवद् रामं······दण्डवत् प्रणिपत्य सा' यहां वही 'दण्डवत्' शब्द है, जिसे पृ. ३७ में वादी घृणित बतलायेंगे। फिर उसीका प्रमाण यहां देकर वादी अपने पक्ष का खण्डन करते हैं वा मण्डन—यह तो वे ही जानें। यहां भी 'नमस्ते' शब्द नहीं। यह है 'नमस्ते-प्रचार'!!! श्रीरामने मानुषिक-व्यवहारमें मुनिपत्नी होनेसे उसे नमस्कार किया, परन्तु उसने परमात्मा-रूपसे उसकी पूजा की।

पं. ८ 'नमोऽस्तु ते राम!' यहां पर परमात्माके अवतार रामको कहा गया है। कभी वादियोंने भी 'नमोऽस्तु ते' कहा-है? यदि नहीं; तब उनका यह प्रमाण विफल है। इसी प्रकार पं. ९ में अग्रिम-श्लोक 'नमस्ते पुरुषाध्यक्ष! नमस्ते भक्त वत्सल' आदि श्लोकोंमें भी समझें। भगवान्‌को सभी भाषाएं युष्मद्का एकवचन देती हैं। इसके आगे जितने श्लोक वादीने दिये हैं, उनमें 'नमस्ते' शब्द ही नहीं।

पृ. २३ पं. ९ 'नमोस्तु ते देव विशालबुद्धे!' यहां पर 'नमस्ते' शब्द नहीं। क्या आर्यसमाज 'नमोऽस्तु ते'को ठीक मानता है? यदि ऐसा है तो तदनुयायी इसका प्रयोग क्यों

नहीं करते ? शुकदेव बाह्यलौकिक व्यवहारमें नहीं थे, अतः वहां 'ते'का प्रयोग है ।

पं. ११ 'नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये' यहां श्रीकृष्णको नमस्ते नहीं कहा गया । यहां पर 'ते'का अर्थ 'तव' है । तब यह अर्थ हुआ कि—'तेरे चरणोंको नमः हो ।' श्रीकृष्ण परमात्माके अवतार हैं । इसी प्रकार पं. १३ 'नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः' में भी समझें ; और फिर इत्यादि स्थलोंमें 'नमस्ते'के उत्तरमें 'नमस्ते' नहीं कहा गया, अतः वादियोंका पक्ष कट गया । यहां पर वादीने 'सहस्रकृत्वा' यह आकारान्त अशुद्ध लिखा है, यह उनकी संस्कृतज्ञताका नमूना है । उक्त पदमें 'कृत्वसुच्' प्रत्यय है 'क्त्वा' नहीं ।

पृ. २४ पं. १ 'काकेभ्यो नमः, श्वभ्यो नमः' यह श्राद्धादिके समय की जाती हुई एक खास विधि है । वादीके अनुसार तो यहां अन्न अर्थ हो सकता है । 'नमः'का यथायोग्य सत्कार अर्थ किसी भी कोषमें नहीं लिखा । यहां पर भी 'नमस्ते' शब्द नहीं ।

आगे वादीने पं. ६ में बौद्ध-सिक्खोंमें 'नमस्ते' दिखलाया है । उनका उत्तर देनेको हम बाध्य नहीं । तथापि वादीने जो उद्धरण दिये हैं, उनमें 'नमः' है 'नमस्ते' नहीं । तब उसका नमस्ते कट गया ।

पृ. २५ पं. १ आगे 'स्त्रीको नमस्ते' शीर्षक लिखकर वादीने विषयान्तर घुसेड़ दिया है । यद्यपि उसके उत्तर की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी कुछ लिखते हैं—

पृ. २५ पं. २ 'कई लोग कहा करते हैं—स्त्रीका आदर करना धर्म-विरुद्ध है, इसकी ताड़ना ही उचित है, जैसा कि—तुलसीदास कहते हैं—'ढोल गंवार मूढ अरु नारी । ये सब ताड़नके अधिकारी' ॥

समीक्षा—वादी यहां पर गो. तुलसीदासका भाव नहीं समझते । इसका भाव यह है कि—स्त्रीको अपने वशमें रखना चाहिए । यदि उन्हें सिर पर चढ़ाया जायगा, तो आगे बहुत हानि होनेकी सम्भावना होती है, जैसा कि—सुधारकोंकी कृपा से वैसा परिणाम आज घर-घर दीख रहा है । तुलसीदासजी वा कोई भी शास्त्र पूजनीय माता वा भगिनी आदिको ताड़नाके लिए नहीं कहता । ताड़ना सभी अपनी नारीके लिए लिखते हैं । स्वा.द. जीने स. प्र. २ समु. में चाणक्यके प्रमाणसे शिष्यको ताड़न बतलाया है, तब क्या वादी चाणक्य तथा दयानन्दको निन्दनीय मानेंगे ? वस्तुतः ताड़नाका फल मीठा होता है, ताड़ना केवल लाठीसे नहीं होती, किन्तु आंखोंके इशारेसे वा वाणीके द्वारा भी हो जाती है । यदि यह ताड़ना न हो, तो प्रजा-राजाके, पत्नी-पतिके, शिष्य-गुरुके, भृत्य-स्वामीके अधीन कभी रह भी न सकें, तब सांसारिक-व्यवहार भी नष्ट हो जावे । इस विषयमें 'आलोक' छठे-पुष्पमें ६वां निबन्ध देखें ।

पृ. २६ पं. २ में—अथर्व २।१।२ में गन्धर्वपत्नी-अप्सराओं तकको नमस्कार करनी लिखी है ।

समीक्षा—वादीको मालूम हो कि—गन्धर्वयोनि एक देवयोनि है । उच्च-योनिकी स्त्रियों वा अपनेसे अवस्था आदि

में बड़ी स्त्रियोंको नमस्कार हम भी मना नहीं करते। परन्तु अपनी स्त्रीको नमस्कार नहीं हो सकता। सनातनधर्मी अपनी माता-भगिनीको नमस्कार करते ही हैं—इससे वादीकी कुछ भी अभीष्ट-सिद्धि नहीं।

आगे वादी पं. ८ में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' यह मनुका प्रमाण लिखते हैं। पर वहां उनकी पूजा यह नहीं लिखी कि—उनको 'नमस्ते' किया करो। प्रत्युत यह लिखा है—"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः। भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषुच" (३।५९) अर्थात् इनको उत्सवादिमें गहने तथा वस्त्र पहिरने तथा विशिष्ट खानेको देना-यही अपनी स्त्रियोंका आदर है। इसीलिए—'प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः। स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु' (९।२६) यहां पर 'पूजार्हाः'का अर्थ श्रीकुल्लूकभट्टने—'वस्त्रालङ्कारादिदानेन संमानार्हाः, यह किया है। स्वा. द.ने भी इसके अर्थमें लिखा है—'मनुष्योंको योग्य है कि—सत्कार और उत्सवोंके समयोंमें भूषण, वस्त्र और भोजनादिसे स्त्रियोंका नित्यप्रति सत्कार करें। यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए कि—'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार है' (स. प्र. पृ. ५८) इस प्रकारका सत्कार श्रेष्ठ स्वामी अपने भृत्योंका किया करते हैं। इससे वादीकी कोई बात सिद्ध नहीं होती। इस पद्यमें मनुजीने स्त्रियोंको 'नमस्ते' करना कहीं नहीं लिखा। इससे इसके आगे 'दिन-रातमें जब-जब (स्त्री-पुरुष) प्रथम मिलें; वा पृथक् हों, तब-तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक-दूसरेसे करें' यह कहते हुए

स्वा. द. जीका भी खण्डन हो गया, क्योंकि—उक्त-पद्यमें इस का संकेत भी नहीं है, न ही स. प्र. में वैसा कोई प्रकरण है। अतः यह स्वा. द. का पाठ मालूम नहीं होता; किन्तु इसकी प्रक्षिप्तताका ही अनुमान है। अन्य बड़ी त्रुटि यह है कि—'नमस्ते'को यहां एक-पदकी भांति व्यवहृत किया गया है; परन्तु यह दो पद हैं—यह हम पहले सिद्ध कर ही चुके हैं।

जिस मनुजीका प्रमाण वादीने बड़े गौरवसे दिया है, वही मनु स्त्रियोंके लिए क्या कहते हैं सुनिये—'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' (९।३)। इनका ताड़न जो तुलसीदासजीने संकेतित किया है, उसका कारण मनुजी लिखते हैं—'नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः। सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते, (९।१४) पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैः-स्नेह्याच्च स्वभावतः। रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते (१५) एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम्। परमं यत्नमातिष्ठेत् पुरुषो रक्षणं प्रति' (१६) चाणक्यने भी कहा है—'विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च'।

इनमें कोई भी प्रमाण वादीने ऐसा नहीं दिया जिसमें अपनी पत्नीको नमस्ते कहा गया हो।

पृ. २८ पं. १७ में जो लिखा है कि—'रामने गौतम-नारी अहल्याको तथा अत्रिकी स्त्री अनुसूयाको नमस्कार किया है' तो उच्चयोनि वाली तथा उच्चवर्ण वाली एवं माता भगिनी-

आदि बड़ी स्त्रियोंको सनातनधर्म भी नमस्कार मानता ही है अपनी स्त्रीको नहीं। फिर आगे जो लिखा है कि अनसूयाको सब लोग ही नमस्कार करते थे, पर यह कहीं नहीं लिखा कि—उसके पति तथा उसके श्वशुर आदि भी उसे नमस्कार करते थे। जब ऐसा नहीं, तो वादीका सिद्धान्त सिद्ध न हुआ। विषयान्तर होनेसे अग्रिम प्रमाण व्यर्थ हैं, इसलिए उनपर विचार करना भी व्यर्थ है।

पृ. ३१ पं. १ 'क्या नमस्ते अनादर करता है' ?

समीक्षा—इसमें 'नमः' शब्द तो अनादरवाचक नहीं, हां 'ते' अवश्य बड़ेके लिए अनादर-सूचक है। बड़ा छोटेको 'ते' कहे, तो कोई अनादर नहीं। परन्तु छोटा यदि बड़ेको 'ते' कहे, तो मानुषिक-व्यवहारमें अवश्य अनादर है।

पृ. ३१ वादी लिखता है—'पुराने संस्कृत-ग्रन्थोंमें माननीय-गुरुजनोंको एक-वचनसे ही संबोधन किया है'। इस पर हमारा प्रश्न यह है कि—स्वा. द. जीने स. प्र. तथा संस्कारविधि तथा अपनी अन्य-पुस्तकोंके अन्तमें अपने गुरुको बहुवचन क्यों दिया है, एकवचन क्यों नहीं दिया ? यदि कहा जावे, प्राचीन-प्रणालीमें एकवचन दिया जाता था, क्योंकि उस वक्त बाह्य लोकव्यवहार उन्नत नहीं था, परन्तु अब तो बड़ेको बहुवचन दिया जाता है, तो हमारा उत्तर भी वही समझ लें। बल्कि वेद में भी एक को बहुवचन देखा गया है, देखिये—'यूयं हि सोम ! पितरो मम स्थन' (ऋ. ६।६६।५) यहां पर एक भी सोम-को बहुवचन दिया गया है, शेष-प्रमाण पूर्व-निबन्धोंमें देखें।

आप लोग किसी बड़ेको 'त्वं त्वया' आदिसे आहूत नहीं करते। वादी ही अपनी हिन्दी-पुस्तकोंमें छोटे-पात्रके द्वारा बड़ेको 'आप' ही कहलवाते हैं; 'तू-तू'नें' नहीं; तो स्पष्ट ही सिद्ध हुआ कि—छोटा बड़ेको 'तू' आदि से कहे, तो उसका अनादर होता है। तभी तो स्वा. द.ने ऋ. भा. भू.में श्री पाणिनि तथा भट्टमोक्षमूलर आदियोंको संस्कृतमें बहुवचन दिया है, हिन्दीमें तो सभी जगह ऐसा किया ही है।

पृ. ३१ पं. १३ 'सूत ! जानासि भद्रं ते' यहां पर ऋषियों-ने सूतको जो 'ते' कहा है, इसका कारण आप लोगोंके अनुसार सूतका उनकी अपेक्षा छोटी जातिवाला होना है। तभी तो उन्होंने उसे 'भद्रं ते' यह आशीः दी है। अग्रिम-प्रमाणों-पर यह जानें कि—दशरथने विश्वामित्रको ऋषि होनेसे, परशु-रामने रामको देवावतार होनेसे 'त्वं' कहा है; उसका कारण गत निबन्धोंमें कह चुके हैं। 'त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम' यहां तो निर्भर्त्सना वा तिरस्कारमें ही 'त्वं' प्रयुक्त हुआ है। इसमें हमारे पक्षकी पुष्टि है।

पं. १८ रामने जटायुको जो 'त्वं' कहा—उसका कारण जटायु पक्षी था, तथा योग्यतादि तथा योनिमें छोटा था। छोटेको तो 'त्वं, ते' आदि कहा ही जाता है, हां उसे 'नमः' नहीं कह सकते। बाकी रहा देवता तथा मुनियोंको 'ते' आदि कहना, उसके लिए गत-निबन्धमें उत्तर देखें।

आगे पृ. ३२ पं. ४ में वादीने 'स्वा. द. अपने पत्रोंमें नमस्ते लिखते थे' इस विषयमें कई प्रमाण दिये हैं, पर वे व्यर्थ

हैं, क्योंकि—पृ. ३४ पं. ८ में उन्होंने स्वयं ही लिखा है—हां ! पत्रोंमें प्रायः 'आनन्दित रहो'—और कभी-कभी नमस्ते भी लिखा करते थे।' तो 'नमस्ते'के कभी कभी लिखनेसे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि—वे इसे हरएक जगह लिखना ठीक न समझते थे।, 'प्रायः' वाली बात व्यवहारिक होती है, 'कभी-कभी' वाली बात व्यवाहारिक तथा सैद्धान्तिक नहीं होती। आशीर्वाद देने-के समय वे जब कि 'आनन्दित रहो' लिखते थे, तब वादीका सब जगह 'नमस्ते' मानना वा प्रयुक्त करना गलत सिद्ध हो गया। अपने नौकरोंको पृ. ३५ पं. १० के अनुसार जब 'आनन्दित रहो' लिखते थे, तब नीचको उनके अनुसार भी नमस्कार निषिद्ध सिद्ध हुआ। बाकी जो पृ. ३४-३५ में इस विषयकी साक्षियां दी हैं, वे प्रायः आर्यसमाजियों की हैं, अतएव वे व्यर्थ हैं। अथ च स्वामी यदि किसीको 'नमस्ते' कह लिख भी दें, तो वह 'साध्य-पक्ष' ही होगा, सिद्ध नहीं। परस्पर यदि वे 'नमस्ते' करते थे, तो यह सम्भव है कि वे अपने साम्प्रदायिक-ट्रेडमार्कको चलाना चाहते हों, पर इसमें वास्तविकता तथा शास्त्रीयता नहीं।

पृ. ३३ में जो टिप्पणी वादीने स्वामीजीकी 'नमस्ते' की दी है, उससे 'नमस्ते' वन्दन-अभिवादनके लिए ही सूचित होता है, आशीर्वादके लिए नहीं। हमारा बड़ेके अभिवादनमें 'नमः' शब्दसे कोई विरोध नहीं, हां 'ते'से अवश्य है। बाकी प्रमाण साध्य होनेसे उत्तरणीय नहीं।

पृ. ३६ आगे वादी बतलाते हैं कि—सब सम्प्रदायोंमें

आपसमें बोलनेका एक ही शब्द है, जैसे—राम-राम, राधेश्याम, जयश्रीकृष्ण, जयहरि, वन्दे-मातरम् आदि।' इस पर हमारा उत्तर यह है कि—यह शब्द इष्टदेव-स्मरणवाचक हैं, प्रणाम-आशीर्वादवाचक नहीं। जैसेकि—वादीकी पुस्तकके अन्तमें मास्टर रौनकरामने लिखा है—'राम-राम अरु जयहिन्द, इष्टस्मृतिजान' तब वादीका यह लिखना व्यर्थ है, क्योंकि सारा झगड़ा तो इसी बात पर है। इसके अतिरिक्त परस्पर 'नमस्ते' व्यवहार "जो-जो वेदमें करने छोड़नेकी शिक्षा की है, हम उसका यथा-वत् करना-छोड़ना मानते हैं' (स. प्र. ३ पृ. ४२) के अनुसार वेद-प्रोक्त विधि न होनेसे अमान्य सिद्ध हुआ। 'बड़े-छोटेसे यथायोग्य व्यवहार करनेका उपदेश करें' (स. प्र. ३ पृ. २३) इसके अनुसार भी सर्वत्र 'नमस्ते'का खण्डन हो गया, क्योंकि छोटे-बड़ेको 'नमस्ते' कहना समान-व्यवहार है, यथायोग्य-व्यवहार नहीं। छोटा बड़ेको नमस्कार ही करता है, आशी-र्वाद नहीं देता। बड़ा छोटेको आशीर्वाद ही देता है, नमस्कार नहीं करता। 'नमः' शब्द अभिवादनमें प्रणामार्थक ही प्रयुक्त होता है, छोटा बड़ेको 'नमः' कह सकता है, वह छोटा बड़ेको 'ते' नहीं कह सकता। बड़ा छोटेको 'ते' तो कह सकता है, परन्तु प्रणामवाचक होनेसे नमः' नहीं कह सकता। इसलिए 'नमस्ते' दोनों हालतोंमें ठीक नहीं।

हां, जो परस्परका वाक्य प्रणामाशीर्वादार्थक न हो, किन्तु उसका लक्ष्य इष्टदेव-स्मरण वा परस्पर कुशलादि पूछना हो, तो वहां समान-वाक्य हो सकता है; पर नमस्कार-

आशीर्वाद-विवक्षामें समान वाक्य नहीं हो सकता, क्योंकि 'नमः'का अर्थ 'नमस्कार' है, 'आशीर्वाद' नहीं।

वादीके इस उत्तरसे प्रतीत होता है कि—वह 'नमस्ते'को भी साम्प्रदायिक-शब्द सिद्ध करना चाहता है। यदि ऐसी बात है, तब हमारी बात ठीक हो गई कि—'नमस्ते' आर्यसमाजका 'लिङ्ग' है; फिर हमें उसमें झगड़नेकी जरूरत नहीं; क्योंकि—दूसरेके साम्प्रदायिक-व्यवहारसे—चाहे वह शुद्ध हो वा अशुद्ध, हमारा क्या मतलब? न हमारी बात फिर उन्होंने सुननी ही है। हमारा विवाद तो इसी बात पर है कि—वे इसे साम्प्रदायिक-शब्द नहीं मानते, किन्तु वैदिक-शिष्टाचार मानते हैं। परन्तु वैसा वस्तुतः न होनेसे उसमें हमारा विरोध ठीक है।

पृ. ३७ में जो वादी 'नमस्ते'को वेदोक्त होनेसे ईश्वरीय-वाक्य कहते हैं, तो 'नमः, नमोस्तु, वन्दे' आदि भी वेदोक्त होनेसे ईश्वरीय-वाक्य हैं, इस विषयमें हमारा पूर्व निबन्ध पढ़ें। तब फिर 'नमस्ते' शब्दमें पक्षपात क्यों, जिसमें शतशः दोष हैं?

जो वादीने ब्राह्मणोंमें परस्पर 'नमस्कार' 'प्रणाम' आदि बतलाया है, यह भी अवस्था वा योग्यतामें बड़ेके लिए ही कहा जाता है। योग्यता वा अवस्थामें छोटेके लिए इसका प्रयोग नहीं किया जाता। 'दंडवत्' आदिका भाव भी झुकना ही है; जैसेकि पहले वादीने वाल्मीकिका पद्य उद्धृत किया है। बाकी बात रही 'नमस्ते'के अधिक-प्रचारकी। अधिक प्रचार तो मद्य-मांस, धर्मविरुद्ध आचरणों तथा झूठे-मुकदमों का भी हो गया है, तो अधिक-प्रचारसे इनका भी क्या युक्तत्व

मान लेंगे? यदि नहीं, तब अधिक-प्रचारका कारण वादीने व्यर्थ ही रखा है। इस प्रचारमें जो अन्ध-परम्परा हो रही है, वह वादीको भी मालूम होगी। बहुत पुरुषोंको भी 'नमस्ते' कह दिया जाता है। जहां अभिमुख करनेकी आवश्यकता न हो, वहां भी 'ते' शब्द घुसेड़ दिया जाता है।

हमारा विरोध इसी 'ते'में है। यदि 'ते' हटा दिया जावे, और 'नमः'का ही केवल प्रयोग किया जावे, वह भी बड़ेके प्रणाममें, तो सनातन-धर्मका इसमें विरोध नहीं होगा, क्योंकि—वह बड़ोंको नमस्कारकी आज्ञा देता ही है। शेष आशीर्वादार्थ में 'नमस्ते'के प्रयोगका वह सदा विरोध करेगा। क्योंकि—आशीर्वादार्थमें इसका प्रयोग शास्त्रीय नहीं। और किसी प्रामाणिक पुस्तकमें यह लिखा हुआ भी नहीं कि—प्रणामाशीर्वाद-में 'नमस्ते'का ही प्रयोग किया जावे। इस कारण 'नमस्ते-प्रचार' केवल दुराग्रहको बतलाता है, सत्यताको नहीं।

जो कि—'नमस्ते-प्रदीप' (१३ पृष्ठमें) स्वा. रामेश्वरानन्द-जीने लिखा है—'हाथ जोड़कर नमस्ते करनेका विधान' इस शीर्षकको सिद्ध करनेके लिए 'नमस्ते रुद्र! मन्यव उतोत इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः' (यजुः १६।१) यह मन्त्र दिया है, और उसका अर्थ यह दिया है—'रुद्र!—हे दुष्टोंको रुलाने वाले राजन्! बाहुभ्यां—दोनों हाथोंसे (ते) तेरे लिए (नमस्ते) यह सत्कार-वाचक शब्द हो'। यहां कितना दुःसाहस किया गया है। यहां तो अर्थ है—हे रुद्र!—परमेश्वर, ते—तेरे मन्यवे-क्रोधको नमस्कार हो, उत-और इषवे-बाणको

नमस्कार हो ! उत-और ते बाहुभ्यां-तेरे भुजाओंको नमः नमस्कार हो। यहां 'नमः'के योगमें (बाहुभ्यां)को चतुर्थी है ; पर यहां 'बाहुभ्यां'का पंचमी वा तृतीयाका अर्थ करना तो साहस है, क्योंकि-यहां अपादान वा करण नहीं है। रुद्रसे यहां महादेवका बोध है, यह राजाका नाम नहीं। यहां पर 'ते नमस्ते' नहीं है, किन्तु 'ते'का सम्बन्ध 'बाहुभ्यां'से है, इसमें सम्बन्धमें षष्ठी है, 'नमस्ते'में भी 'ते'का अर्थ 'तव' है, उसका सम्बन्ध 'मन्यवे'से है, 'ते-तव मन्यवे नमः'। दूसरे 'ते'का अर्थ भी षष्ठीका 'तव' है, उसका सम्बन्ध बाहुसे है—'ते-तव बाहुभ्यां नमः'। उसमें 'ते नमस्ते' स्थित 'ते'का चतुर्थीका अर्थ करना श्रीरामे. जीका दुःसाहस है वा अज्ञान ; क्योंकि-'नमः'के योगमें चतुर्थी 'नमः स्वस्ति'से सिद्ध है ; पर 'नमस्ते'के योगमें चतुर्थी वेदाङ्गके किसी सूत्रसे सिद्ध नहीं। क्योंकि—न तो 'नमस्ते' एकपद कहीं है, और न कहीं उसके योगमें किसी विभक्तिका विधान है। पहले 'नमः'के योगमें चतुर्थी 'मन्यवे'को है, दूसरे 'नमः'के योगमें चतुर्थी 'इषवे'को है, तीसरे 'नमः'के योगमें चतुर्थी 'बाहुभ्याम्'को है। दोनों स्थानके 'ते' शब्द सम्बन्ध-षष्ठी वाचक है ; पहले 'ते'का सम्बन्धी रुद्रका 'मन्यु' है, दूसरेका 'बाहु'।

इसी प्रकार 'उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने' (यजुः १६।१४) यहां भी 'ते-तव बाहुभ्यां नमः' यहां भी 'बाहुभ्यां'में 'नमः'के योगमें चतुर्थी है, पञ्चमी नहीं. तब उसका 'तेरे लिए दोनों हाथोंसे नमस्ते' यह सत्कार-वाचक

शब्द हो' (पृ. १४) वह स्वा. रामेश्वरानन्दजीका अर्थ निराकृत हो गया है।

इस पुष्पमें—स्वा. रामेश्वरानन्दजीके 'नमस्ते-प्रदीप', स्वा. देवानन्दजीके 'नमस्ते-विधान', श्री शेरसिंहजीकी 'नमस्ते-की प्राचीनता', श्रीसुखदेवविद्यावाचस्पतिजीकी 'नमस्तेकी व्याख्या' श्री सन्तरामजीका 'नमस्ते-प्रचार', श्रीराजेन्द्रजीकी 'भारतीय-संस्कृति' एवं दूसरोंके भी 'नमस्ते'-विषयक विचारों पर आलोचना आ गई है। इसमें प्रायः 'नमस्ते'-विषयक सभी तर्कों पर विचार आ गया है। यदि कोई अन्य नये विचार-वाले ट्रैक्ट पाठकोंको उपलब्ध हों, पाठक उन्हें हमारे पास भेज दें, हम उनका प्रत्युत्तर अन्य-पुष्पोंमें प्रकाशित करेंगे, क्योंकि—इसका मूल कीट-खात है ; अतः उसके कटते कोई देरी नहीं लगेगी। अब उपसंहारात्मक एक निबन्ध और देकर हम पुस्तकको समाप्त करेंगे।

(१३) 'नमस्ते'का प्रचार युक्त वा अयुक्त ?

(१) इस विश्वमें ब्रह्मासे बनाई सृष्टि एक-दूसरेसे विलक्षण दीखती है, उसमें उच्चता-निम्नता दीखनेसे न वह समान हो सकती है, न उसमें समान-व्यवहार ही हो सकता है। समान-योनि, समान-जाति, समान-व्यक्तिमें भी कुछ न कुछ भेद दीखता ही है, इस भेदको बदला नहीं जा सकता।

छोटी-आयुमें लड़केको 'रामा' बुलाया जाता है, मध्यम-आयुमें 'राम' तथा यौवनमें 'श्रीरामचन्द्र' नामसे, उसके बाद

विद्यावयोवृद्ध होनेपर 'श्रीमान् रामचन्द्रजी महोदय, कहा जाता है। बचपनमें उसे अपराधमें ताड़ना और दूसरे समयमें आशीर्वाद, यौवनमें अपराधमें तर्जना, अन्य समयमें कुछ सत्कार बड़े हो जानेपर अपराधमें संकेतमात्र, और दूसरे समयमें नमस्कार प्राप्त होती है।

इस व्यहार-भेदको प्रकृति भी एक हाथकी पांचों अंगुलियों में असमानता रखकर उदाहृत करती है। दूसरे हाथकी समान भी अंगुलियोंमें परस्पर स्थूलता-कृशताका कुछ अन्तर रहता ही है। इस प्रकारकी सार्वत्रिकता तथा प्राकृतिकताको अनुभूत करके भी यदि वादी लोग सभीसे तुल्य व्यवहार करने की चेष्टा करें; तो यह प्रकृतिविरुद्धता होगी, मट्टीसे घी निकालना होगा।

(२) ब्रह्माजीने उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज तथा जरायुजों को बनाकर भी सन्तुष्ट न होकर मनुष्य-जाति बनाई। पशु-जातिमें अवान्तर जातियोंको भिन्न-भिन्न बनाकर भी मनुष्य-जातिमें ब्राह्मणादि-अवान्तर-जातियोंका आपसमें विशेष आकार-का भेद नहीं बनाया। यही मनुष्यजन्मका महत्त्व हैं; ज्ञान-प्रधानता होनेसे इस जातिमें आकृति-समानतामें भी व्यवहार-भिन्नता हुआ ही करती है। मनुष्यजातिमें अन्त्यज आदिकी अपेक्षा शूद्र-जाति शस्य है, उससे भी वैश्य-जाति प्रशस्य है। उनसे भी क्षत्रिय-जाति प्रशंसनीय है, और ब्राह्मण-जाति सभी जातियोंसे श्रेष्ठ है। ब्राह्मणोंमें भी पढ़े-लिखे अच्छे हैं; उनमें भी कर्मकाण्डी बड़े है। उनमें भी वेदोंके विद्वान्

बड़े हैं। उनमें भी कर्म-कर्त्ता बड़े हैं। सबसे बड़े ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही हैं। यही मनुजीने कहा है-'भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिषु कर्तारः, कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः' (१।९६-९७)

(३) ऐसी भिन्नता होनेसे व्यवहारभेद भी अनिवार्य ही है। छोटी जातिवाले ऊंची जातिमें उत्पन्नको आयु, विद्या आदिसे अधिक होनेपर भी नमस्कार करें, और उच्च वा बड़े छोटोंको आशीर्वाद दें-इस शास्त्रीय-व्यवहारभेदवश शूद्र-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको और अपनेसे बड़े शूद्रको नमस्कार करता है। और वे ब्राह्मणादि उसको आशीष देनेके अधिकारी हैं। इस प्रकार वैश्य ब्राह्मण-क्षत्रियको तथा अपनेसे बड़े वैश्यको वन्दना करता है, और वे उसे आशीः देते हैं। इसी तरह क्षत्रिय अपनेसे छोटी आयुवाले भी ब्राह्मणको तथा अपनेसे बड़े क्षत्रियको नमस्कार करता है; और वे उसे आशीः देते हैं। वीरमित्रोदयके 'उपनयनसंस्कार-प्रकाश' (पृ. ४६३)में शातातपका यह प्रमाण लिखा है-'अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा वन्द्य एव च। ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा। नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन। ज्ञानकर्मगुणोपेतता यद्यप्येते बहुश्रुताः। ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः। सवर्णेस्तु सवर्णानां [उत्कृष्टानां] कार्यमेवाभिवादनम्'। यहां पर कहा गया है-ब्राह्मण क्षत्रि-यादिको 'स्वस्ति' कहे, नमस्कार न कहे; क्योंकि-'वैशेष्यात्

प्रकृतिश्रैष्ठ्याद् नियमस्य च धारणात्। संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः' (मनु. १०।३) यहां ब्राह्मणको सब वर्णोंसे श्रेष्ठ बताया गया है। 'ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्। पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता' (२।१३५) यहां क्षत्रियसे आयु आदिमें छोटे भी ब्राह्मणको बड़ा बताया गया है।

(४) ब्राह्मणोंमें परस्पर-बड़प्पन विद्यासे, क्षत्रियोंमें बलसे, वैश्योंमें धनसे, शूद्रोंमें आयुसे बड़प्पन होता है। (मनु. २।१५५) यह मुख्य बड़प्पन होता है, गौणतासे आयुका बड़प्पन भी होता है। बड़ेको नमस्कार किया जावे, तथा छोटेको आशीष दी जावे-यह शास्त्रसम्मत-नियम है। 'मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरान् ऋत्विजो गुरून्। असावहमिति ब्रूयात् प्रत्युत्थाय यवीयसः' (२।१३०) इस मनुके पद्यमें बताया गया है कि-'मामा, चाचा, ससुर, ऋत्विक् तथा गुरु छोटी आयुके भी हों; फिर भी उनके सामने खड़ा हो जावे, और उन्हें नमस्कार करे'। इससे सिद्ध होता है कि-इनसे भिन्न छोटोंके आगे न तो खड़ा होवे, और न उन्हें नमस्कार करे।

पर कई दुराग्रही अर्वाचीन वादी इस नियमको हटवाना चाहते हैं। वे कहते हैं, 'छोटा-बड़ा सब एक-दूसरेको 'नमस्ते' कहें'। यदि इन महाशयोंका यह वचन सभी व्यवहारोंमें सफल हो जावे; तो यदि गुरु शिष्यको ताड़ना करे; तो शिष्यका भी गुरुको ताड़ना करना कर्तव्य हो जायगा। यदि पिता कारणवश-पुत्रको डांटे; तो पुत्रका भी पिताको डांटना

कर्तव्य हो जायगा। यदि पति स्त्रीको निर्भर्त्सना दे, तो स्त्रीका भी पतिको निर्भर्त्सित करना आवश्यक हो जावेगा। फिर तो सर्वत्र व्यवहारकी समानतावश राजा-प्रजाका शासक-शिष्य सम्बन्ध भी हट जावेगा। तब तो सभी सम्बन्ध हट जावेंगे; पर ऐसा व्यवहार शास्त्र-विरुद्ध तथा लोक-विरुद्ध है।

(५) इस प्रकारके प्रचारकोंमें स्वा.द.मतानुयायियोंकी विशेष गणना है, जो पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य आदि सभीको परस्पर 'नमस्ते' करनेका आदेश देते हैं; पर यह ठीक नहीं। 'नमस्ते'में 'नमस्' सकारान्त अव्यय है, 'ते' युष्मद् शब्दकी चतुर्थी-विभक्तिके एकवचन 'तुभ्यं'का आदेश (पा. ८।१।२२) है। इस प्रकार यह दो पद हैं। पर वे लोग इसे एक पद समझते हैं; और वैसे ही व्यवहृत करते हैं, तभी कहते हैं-'मेरी आपको नमस्ते हो, मेरी उसे नमस्ते हो, आश्रमके विद्यार्थियोंको मेरी नमस्ते हो, मान्याः श्रीगुरवः! नमस्ते' इस प्रकार वे व्यवहृत करते हैं। 'ते'के 'तुभ्यं' स्थानी होने पर भी 'नमस्ते'को एक-पद समझकर 'आपको' पृथक् कहने लग जाते हैं, 'तस्मै (उसे)'में 'ते'की आवश्यकता न होने पर भी 'तस्मै नमस्ते' लिखने लग जाते हैं; और 'ते'के एकवचन होने पर भी एक-पदकी भ्रान्तिसे बहुवचनमें भी 'नमस्ते भवद्भ्यः' कहने लग जाते हैं, यह सब शास्त्र-विरुद्ध है। जान-बूझकर वैसे प्रयुक्त करने वालोंका यह हठ है। यदि अज्ञान या भ्रमसे ऐसा व्यवहार होता है; तो इस दोषापादक

प्रयोगका व्यवहार ही बहिष्कार्य है। जो इसे रूढ-शब्द मानते हैं, यह संस्कृत-व्याकरणके विरुद्ध है, यह हम गत-निबन्धोंमें स्पष्ट कर चुके हैं।

(६) बड़ेके लिए युष्मद्के एकवचनका प्रयोग आजकल कोई भी किसी भी भाषामें प्रयुक्त नहीं करता। 'नमस्ते'-वादी भी जब गुरु वा पिता आदिको पत्र लिखते हैं; तो 'नमस्ते'के अतिरिक्त वे कहीं भी युष्मद्के एकवचनका प्रयोग नहीं करते; इस कारण उनके मतमें भी युष्मद्का एकवचन अनादरावह है; तब 'नमस्ते'में भी 'ते' अनादर-सूचक ही सिद्ध हुआ; अतः इसका प्रयोग युक्त नहीं। कई अज्ञानी 'नमस्ते'के 'ते'को 'तद्' शब्दके प्रथमाका बहुवचन बताते हैं; पर यह तो सर्वथा ही असङ्गत है; 'नमः'के योगमें प्रथमा कैसी; और 'तद्' शब्दकी वहां क्या सङ्गति? इससे स्पष्ट है कि—वे 'नमस्ते'को अपना ट्रेडमार्क रखना चाहते है। आदरके-लिए युष्मद्का एकवचन नहीं, किन्तु 'श्रीमत्' शब्द वा 'भवत्'-शब्द आदिका ही प्रयोग होता है। मनुस्मृतिमें कहा है—'अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्। भो भवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्। (२।१२८) यहां यह कहा है कि—यज्ञमें दीक्षा लिया हुआ व्यक्ति यदि अपनेसे छोटी आयुका भी हो; तथापि उसे नामसे न बुलावे, किन्तु आदरवाचक 'भवत्' शब्दसे बुलावे क्योंकि—यज्ञ-दीक्षितको बड़ा माना जाता है। उसी मनुस्मृतिमें 'त्वङ्कारञ्च गरीयसः' (११।२०४) बड़ेके लिए 'त्वं' आदि युष्मद्के एक-वचनका प्रयोग निषिद्ध किया

गया है। तब 'नमस्ते'का प्रयोग भी विधि-शास्त्रसे विरुद्ध है। इस विषयमें स्पष्टता पूर्व-निबन्धोंमें की ही जा चुकी है।

(७) कहा जाता है कि—यदि 'नमस्ते' दोनों ओर ठीक नहीं, तो 'जय-रामजीकी' आदि दोनों ओर कैसे ठीक हैं?' इसपर भी गत-निबन्धोंमें प्रकाश डाला जा चुका है कि—यह प्रणामाशीर्वाद-वाचक शब्द नहीं; किन्तु इष्टदेववाचक हैं। ऐसे शब्द वा कुशलप्रश्नवाचक शब्द, जैसेकि—गुड मानिंग सर, सलामालिकुम आदि-शब्द दोनों ओरसे कहे जा सकते हैं। जो कि कहा जाता है कि—'जय-श्रीकृष्ण' आदिसे शैव प्रसन्न नहीं होंगे, 'जयशिव' आदिसे वैष्णव प्रसन्न नहीं होंगे, इसलिए 'नमस्ते' शब्दका प्रचालन ही ठीक है—यह भी ठीक नहीं। 'नमस्ते'-शब्दसे सनातनधर्मी भी प्रसन्न नहीं होते, वैयाकरण भी प्रसन्न नहीं होते, युष्मद्के एकवचनसे अपनी अप्रतिष्ठा मानने वाले भी प्रसन्न नहीं होते, ईसाई-मुसलमान आदि भी प्रसन्न नहीं होते। सबका प्रसन्न करना तो असम्भव होता है। चाहे आप प्रसन्न होवें, या न होवें. मुसलमान 'सलाम' शब्द ही कहेंगे। इस प्रकार जो अपने 'जयश्रीकृष्ण' आदि शब्द पर दृढ है; तो दूसरा यदि उस शब्दको न भी बोले, फिर भी उन्हें कोई क्रोध नहीं होगा। सभी जानेंगे कि—यह अपने मतमें दृढ है। 'नमस्ते' यदि साम्प्रदायिक-शब्द माना जावे; तब तो उसकी शुद्धि-अशुद्धिका विचार छोड़ा जा सकता है; यदि यह शिष्टाचार माना जावे जैसे कि—आर्यसमाजी आदि मानते हैं, तो उसमें बड़ी त्रुटियाँ आती हैं, जिनका हम

गत १२ निबन्धोंमें विवरण कर चुके हैं।

ईसाई-मुसलमानोंकी देखा-देखी यदि वादियोंका दोनों ओर समान शब्द रखनेका आग्रह हो और 'जयराम जी'की आदि शब्द उन्हें साम्प्रदायिक प्रतीत होते हों तो वे 'नमस्' शब्दके मोहको छोड़कर—क्योंकि— वह प्रणामवाचक होनेसे दोनों ओर नहीं जुड़ सकता—कोई कुशलसूचक एक शब्द बनावें, इस में हमारा भी कोई विरोध नहीं होगा। पर अभिवादन-प्रत्यभिवादनमें भिन्न-भिन्न शब्द अपेक्षित होनेसे वहां अभिवादनवाचक-शब्द 'नमः'का, तथा छोटेके लिए प्रयुज्यमान 'ते'का दोनों स्थल प्रयोग अयुक्त है।

(८) कई व्यक्ति ब्राह्मणोंमें परस्पर प्रयुक्त किये जाते हुए 'जय' शब्द पर भी आक्षेप करते हैं; उसी दृष्टान्तसे 'नमस्ते'को भी ठीक बताते हैं, पर यदि आजके ब्राह्मण कोई भूल करें; तो क्या दूसरे भी अवश्य ही भूल करें—यह भी क्या आवश्यक नियम हैं? वस्तुतः 'जय' शब्द दो प्रकारका होता है, एक का अर्थ है सर्वोत्कृष्ट। इस अर्थमें वक्ता अपने-आपको सम्बोध्यमानसे छोटा बनाकर अपनेको नम्र करता हैं। अपना नम्रीभाव होना ही तो नमस्कार होता है। इसी कारण 'भारती कवेर्जयति'काव्यप्रकाशके मङ्गलाचरणके इस पदके 'जयति' पदकी वृत्तिमें भट्ट-मम्मटने कहा है—'जयतीत्यर्थेन च नमस्कार आक्षिप्यते, इति तां प्रति अस्मि प्रणत इति लभ्यते' यहां पर 'जय' शब्दको 'नमस्कार' वाचक माना है।

यहां श्रीनागेशभट्टने 'उद्योत' में लिखा है—'जयत्यर्थ

उत्कर्षः। स च विशेषानुपादानात् सर्वप्रतियोगिको लभ्यते, इति भारत्यां (तथाविधे अन्यस्मिन् अभिवाद्ये शिष्टे) सर्वोत्कृष्टत्वज्ञाने तुल्यवित्तिवेद्यत्वन्यायेन प्रकारान्तरेण वा भारत्यपेक्षया सर्वस्य अपकृष्टत्वज्ञाने सर्वान्तःपातिनि स्वस्मिन्नपि आराध्या-(अभिवाद्या—) ऽपेक्षया अपकृष्टत्वज्ञानं व्यञ्जनया वृत्तमेव—इति भावः'। प्रदीपमें श्रीगोविन्दठक्कुरने भी लिखा है—'स्तुतिनिबन्धे तु अर्थाद् नतिरपि निबद्धैव; यतो जयत्यर्थेन वक्तुर्विषयस्य च वैशिष्ट्याद् नमस्कार आक्षिप्यते, तेन तां प्रति अस्मि प्रणतः—इति लभ्यते'।

विषय स्वच्छ हो गया। इसका निष्कर्ष यह है कि—जिसे 'जय' कहा जाता है, उसे सबसे बड़ा बनाया जाता है; क्योंकि-जयका अर्थ सर्वोत्कर्ष होता है; उसमें अपने आपको अपकृष्ट करना पड़ता है; तब अपने-आपको व्यञ्जनासे झुकानेसे नमस्कार प्रतिफलित हो जाता है। दूसरा 'जय' शब्द आशीर्वाद-अर्थवाला लोकमें प्रसिद्ध है ही। इसलिए धातुपाठमें 'जि जये, जि अभिभवे' यह दो अर्थ लिखे गये हैं। यदि केवल आशीर्वाद-अर्थ ही 'जय'का माना जाय, नमस्कार नहीं; तब 'जय जगदीश हरे!' इस आर्यसमाजसे भी सम्मत आरतीमें 'जय' शब्दका आशीर्वाद-अर्थ हो जावेगा। तब क्या वादी परमात्माको 'जय' शब्दसे आशीर्वाद देते हैं? यदि नहीं; तब 'जय'का नमस्कार अर्थ भी सिद्ध हो गया। तब छोटा बड़ेको 'जय' शब्दसे नमस्कार करता है, और बड़ा छोटेको

'जय हो' कहकर आशीर्वाद देता है, और फिर इसमें 'ते' (तुभ्यं) भी नहीं; अतएव इसमें 'नमस्ते' वाले दोष भी नहीं।

फलतः इन निबन्धोंसे 'आलोक'-पाठकोंने समझ लिया होगा कि-'नमस्ते'का प्रचार किसी भी दशामें ठीक नहीं। छोटा बड़ेको 'ते' (तुभ्यं) कहे, तो यह एक असभ्यता है, उसके साथ कहा जाता हुआ युक्त भी 'नमः' शब्द व्यर्थ हो जाता है। बड़ा छोटेको 'ते' कहे—यह तो युक्त है; पर बड़ा छोटेको 'नमः' कहे; तो यह अनुचित है। समानोंको भी 'नमः' का प्रयोग नहीं हो सकता; क्योंकि-उसमें परस्पर-आलिङ्गन कुशल-प्रश्नादि होता है-नमः (झुकना) नहीं; अतएव इस

संशोधन —कई प्रूफकी अशुद्धियाँ रह गई हैं; उनमें विशेष—अशुद्धियोंका शोधन पृष्ठ-पङ्क्तिके अनुसार लिखा जा रहा है:—पृ. २२ पृ. १४ 'मान्य-संरक्षकके लिए'। ३६-२ 'निपातानुक्रमणिका'। ६०-२१ 'विशेष्य'। ६०-१३ 'अथवा'। ११७-६में 'पर' ११८-१में 'हि' नहीं चाहिए। १२१-१८ 'वर्णस्य'। १२३-२ 'स्थलोंमें'। १२४-१६ 'नमस्कार्यः'। १३५-६ 'वादि-प्रतिवादिमान्य-मनुस्मृतिमें'। १४२-२२ 'विवक्षिम'। १४४-१६ 'परिवर्तनीय'। १५०-१५ 'भी'। १६१-१७ 'क्रमशः'। १७७-१२ 'भगवन्'। १७६-१४-'एक-वचनान्त"। पृ. १८३-८ 'ऐसी'। २००-१३ 'ब्राह्मणाना'। पं. १६- 'ब्राह्मणाः'। २०२-२० 'वर्णज्यैष्ठ्य-'। पृ. २०३-५ 'वन्द्य'। पं. ६ 'श्रीकामैः'। २०४-१६ प्रयोक्ता। २११-४ 'तक्षा'। २३३-१५ 'जावे'। २१७-५,११,१२' अन्त्यजोंको नमस्कार'। २४६-२० सृष्टिके...कालका'। २६६-१५ 'ते'। २८७-६ 'कुत्ता'। २६६-४ 'आर्च्यं'। ३१४-६ 'व्यवहार'। ३१५-२० गुणोपेता'। सामान्य अशुद्धियां नहीं लिखी गईं।

का प्रयोग अयुक्त ही है, विद्वानोंको इसका प्रचार हटवाना चाहिए।

यह ग्रन्थ किसीका दिल दुखानेके लिए नहीं है, किन्तु वस्तुस्थितिके ज्ञापनार्थ, तथा इससे जो शास्त्रानुसार अशुद्धियां वा अयुक्तताएं, वा असभ्यतायें फ़ैली हैं, वे दूर हो जायें-इसलिए यह प्रयत्न है। इस ग्रन्थसे यदि सन्देह वा अज्ञानके झूलेमें झूल रहे हुए व्यक्तियोंका लाभ हो जाय; तो हमारा यह प्रयत्न सफल हो जावे। तथास्तु।

इति पूज्य-श्रीपं०शीतललालशर्म-श्रीगौरीदेवी-तनुजनुषा, मुलतानस्थ-स.ध. संस्कृत-कालेजभूतपूर्वाध्यक्षेण, देहलीस्थ-संस्कृतमहाविद्यालयाध्यक्षेण विद्यावागीश, विद्याभूषण-श्रीदीनानाथशर्मशास्त्रि-सारस्वत-विद्यानिधिना प्रणीतस्य 'श्रीसनातनधर्मालोक'—संस्कृत-महाग्रन्थस्य हिन्दीग्रन्थमालायां प्रथम-द्वितीय-सुमनोविकासः सम्पूर्णः।*

———

इसके आगेके चार पुष्प मंगाकर अपना सेट पूरा कर लीजिए।

'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाका परिचय

इस ग्रंथमालाको १०००) देने वाले इसके संरक्षक माने जाते हैं, उनका चित्र छपता है, प्रत्येक-प्रकाशनमें उनका नाम छपता है। ५००) प्रदाता इसके सम्मान्य-सहायक, २५०) दाता मान्य-सहायक और १००) देने वाले साधारण-सहायक माने जाते हैं। इसके प्रकाशित पुष्पोंका परिचय दिया जा रहा है। पाठकगण इसका जनतामें प्रचार करें।

स्थायी-ग्राहकों को सुविधा।

जो महोदय स्थायि-ग्राहकता का शुल्क ५) पांच रुपये पूर्व जमा करायेंगे, उन्हें सब पुष्प पौने मूल्यमें दिये जाएंगे। अब कागज का भाव बहुत चढ़ गया है, और फिर मिलता भी कठिनतासे है; अतएव हमें सब पुष्पोंका मूल्य बढ़ाना पड़ गया है। अब पिछला मूल्य न मानकर इसमें दिया हुआ मूल्य ही ठीक समझा जावेगा।

प्रथम-द्वितीय पुष्प-(परिवर्धित-द्वितीयावृत्ति) आजकल 'नमस्ते' शब्दका प्रचार संस्कृतानभिज्ञ-जनतामें बहुत हो गया है; और इसके प्रचारक इसका वैदिक होनेका दावा करते हैं। बहुतसे विद्वानोंका इधर ध्यान गया, और उन्होंने हमें प्रेरणा की कि-'आलोक' ग्रंथमालाके किसी पुष्पमें इस पर भी विचार दिया जाय। हमने प्रथम-द्वितीय पुष्पमें इस पर थोड़ा सा विचार दिया भी था; पर बहुत महोदयोंने कहा कि-इस पर विस्तीर्ण विचार दिया जाय। इधर उन दो पुष्पोंकी प्रथमावृत्ति समाप्त भी हो गई थी। तब प्रथम दो-पुष्पोंको इकट्ठा करके हमने इसमें 'नमस्ते' विषय पर विस्तीर्ण विचार दिया है। 'नमस्ते' विषयक-ट्रैक्ट हमें जितने मिल सके, उन पर आलोचना भी कर दी है। यह दो पुष्प सुन्दर-कागज तथा सुवाच्य-टाइपमें छपवाये गए हैं। आरम्भ में 'श्रीसनातनधर्मालोक' महाग्रन्थकी संपूर्ण-विषय-सूची

तथा उसपर विद्वानोंके भाव भी दिये गये हैं। साढ़े तीन सौ पृष्ठोंकी सजिल्द इस पुस्तकका मूल्य चार रुपये है, पाठक शीघ्र मंगावें। मूल्य ४)

तृतीय पुष्प—इसमें स्त्री-शूद्रोंके वेदाधिकार पर विचार करते हुए 'यथेमां वाचं कल्याणीं' मन्त्रके वर्तमान-प्रचलित अर्थ की आलोचना करके उसका वास्तविक अर्थ, हारीतकी ब्रह्मवादिनी, 'गोभिलसूत्र'के 'यज्ञोपवीतिनीं' पदका रहस्य, 'दुहिता मे पण्डिता जायेत', 'वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत्', 'ब्रह्मचर्येण कन्या, पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्' आदि बहुतसे प्रमाणोंके वास्तविक अर्थ बताकर, ऐतरेय-महिदास, कवष-ऐलूष, कक्षीवान्, गौतम-जाबाल, सूत, वाल्मीकि, शबरी आदि शूद्र थे वा अशूद्र-इस पर विचार किया गया है। इसकी प्रथमावृत्ति समाप्तप्राय है। इसे अभी-अभी मंगा लें, द्वितीयावृत्ति छपना प्रारम्भ होने पर इसका मूल्य बढ जायगा। शीघ्र मिल भी नहीं सकेगी।

सजिल्द मूल्य ३॥)

चतुर्थ पुष्प—इसमें हिन्दु-शब्दकी वैदिकता, वेद-विषयमें भारी भूल, महाभाष्यकारके मतमें वेदका परिमाण कितना है, वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्मसे है, वा जन्मसे, डा० भगवान्दासके मतपर विचार, मृतकश्राद्ध तथा ब्राह्मण-भोजन वैदिक है वा अवैदिक, मूर्तिपूजा एवं अवतारवादका रहस्य, क्या विद्वान् मनुष्य ही देव हैं, नवग्रहोंके प्रचलित मन्त्रोंका ग्रहोंसे सम्बन्ध कैसे है, ग्रहण और उसका सूतक—इत्यादि अनेकों विषयों पर बड़ा सुन्दर विचार किया गया है। पाठक इसे शीघ्र मंगावें। ५०० पृष्ठसे अधिक-पृष्ठकी सजिल्द सुन्दर पुस्तकका मूल्य ६) है।

पंचम पुष्प—यह बहुत ही सुन्दर-कागज तथा सुन्दर-टाइपमें

६०० से अधिक पृष्ठोंमें छपा है। इसमें हिन्दुधर्मके मुख्य-विषय चोटी-जनेऊ, १६ संस्कार, सन्ध्याके सभी अङ्गों पर विचार, मालाकी मणियोंकी १०८ संख्या क्यों ?, यज्ञका वैज्ञानिक महत्त्व-क्या है—इत्यादि अनेकों विषयों पर विचार करके प्रातःसे रात्रि-शयन तकके आचारोंकी वैज्ञानिकता बताई गई है। इसके बाद दीपमाला, होली आदि वर्षके प्रसिद्ध पर्वोंके वैज्ञानिक-रहस्य बताकर, श्रीगणेशका वैदिक देवत्व तथा श्रीमहीधरके 'गणानां त्वा' मन्त्रके भाष्य पर—जिसपर प्रतिपक्षियोंकी ओरसे घोर-शोर मचाया जाता है—विचार करके, ओङ्कारका महत्त्व बताया गया है। इसमें १२५ विषयों पर सुन्दर विचार दिये गए हैं। इस सुन्दर एवं सजिल्द पुस्तकका मूल्य— १०)

षष्ठ पुष्प—यह सुन्दर पुस्तक ८०० से अधिक पृष्ठोंमें अभी-अभी छपी है। इसमें हिन्दुधर्मके विविध-विषय युक्ति-प्रमाण-द्वारा साधित किये गये हैं? इसमें सनातन-धर्मका स्वरूप बताकर वेदका स्वरूप दिखलाते हुए ब्राह्मणभागके अवेदत्व पर किये जाने वाले तर्कों पर युक्ति-प्रमाण द्वारा विचार करके, वेदाधिकारिविचार, देव-मन्दिरोंमें अन्त्यज-प्रवेश पर वैदिक-दृष्टि' दिखलाकर 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी' मानसकी इस प्रसिद्ध चौपाईके विविध अर्थ तथा उनकी आलोचना की गई है। फिर 'क्या प्राचीन-भारतमें गोवध होता था, इस विषय पर दिये जाते हुए वेद-पुराणोंके प्रमाणोंपर १६ विषयोंमें विचार किया गया है। इसके बाद 'क्या पुराणोंमें वेद-विरुद्ध अंश है ?' इस पर विचारते हुए वृन्दाका पतिव्रतभङ्ग, चन्द्रमाका गुरुपत्नीगमन, अगस्त्यऋषिका समुद्रपान, स्त्रीसे पुरुष, पुरुषसे स्त्री' आदि बहुतसे विषयों पर विचार कर श्रीकृष्णके बाल्यचरित्र एवं राधा-कृष्णके परस्पर-सम्बन्ध तथा कुब्जा आदिके विषयमें पूर्ण-मीमांसा की

गई है, और पुराणोंकी शङ्कित कथाओं पर प्रत्यक्ष अखबारी घटनाएं दी गई हैं। इसके बाद सैद्धान्तिक-चर्चामें वर्ण-व्यवस्था-के विषयमें 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' के अर्थ पर किये जाते हुए तर्कों पर विचार करते हुए 'ब्राह्मणादि क्या वर्ण नहीं हैं'—इस पर विचार करके पुस्तक समाप्त कर दी गई है। यह पुस्तक विद्वानों तथा जिज्ञासुओंके लिए अत्यन्त उपकारक सिद्ध होगी। इसको वादी—प्रतिवादी दोनोंको ही शीघ्र मंगाना चाहिए। सजिल्द मूल्य ६), ५० पैसा।

अग्रिम-पुष्पमें वेद-स्वरूपपर विचार तथा क्या वेदके शब्द यौगिक हैं;—वेदार्थविधानके साधन वेदमन्त्रार्थहृद्या-इन विषयोंपर विचार करके, वर्ण-व्यवस्था-विषयमें दिये जाते हुए प्रमाणों पर विचार तथा अन्य भी अनेक उपयोगी विषय, नियोग और मैथुन, पराशर-मत्स्यगन्धा समागम, विधवा-विवाह-विषयपर विचार, सीताकी विवाहावस्था, द्रौपदीका एक पति या पांच' आदि विविध-विषयों पर विचार होगा। सहायक शीघ्र अपनी सहायता भिजवावें, तथा ग्राहक शीघ्र इन पुष्पोंका प्रचार करें, जिससे अग्रिम पुष्प शीघ्र विकसित हो सकें।

—०—